सुलभ साहित्य-माला

# शरत्-साहित्य

( अठारहवाँ भाग )

## दत्ता

अनुवादकर्त्ता
सुन्दरलाल त्रिपाठी
हेमचन्द्र मोदी

हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई

प्रकाशक—

नाथूराम प्रेमी,
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय,
हीराबाग, बम्बई नं० ४.

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिन्टिंग प्रेस,
गिरगाँव, बम्बई

# निवेदन

शरत्साहित्यका यह १८ वाँ भाग भी हम पाठकोंके समक्ष उपस्थित कर रहे हैं। इसकी पृष्ठसंख्या १७० के लगभग हो गई है और कागज भी लगभग डेढ़ गुना महँगा हो गया है, रैपरके कागज़ और कार्ड-बोर्डका दाम तो ढाई तीन गुनेके लगभग है, फिर भी हम इस पुस्तक-मालाकी सुलभता कायम रखनेके लिए, पहलेका ही मूल्य रख रहे हैं। अवश्य ही आठ आनेवाला संस्करण हमने इस बार भी नहीं निकाला।

—प्रकाशक

# दत्ता

## १

उस समय हुगली ब्राह्म स्कूलके हेडमास्टर साहब जिन तीन लड़कोंको विद्यालयके रत्न बताते थे वे तीनों अलग अलग गाँवोंसे रोज एक कोसका रास्ता पैदल चलकर पढ़ने आते थे। तीनोंमें बहुत अधिक प्रेम था। ऐसा एक भी दिन नहीं जाता था जिस दिन ये तीनों मित्र स्कूलके रास्तेमें एक बरगदके ठूँठके नीचे इकट्ठे न होते हों और वहाँसे साथ साथ न जाते हों। तीनोंके मकान हुगलीके पश्चिममें थे। जगदीश सरस्वतीका पुल पार करके दिघड़ा गाँवसे आता था और बनमाली और रासबिहारी आते थे पास-पासके गाँव कृष्णपुर और राधापुरसे। जगदीश जैसा सबसे अधिक मेधावी था वैसा ही सबसे ज़्यादा गरीब भी था। उसके पिता एक ब्राह्मण पण्डित थे। यजमानी करके, ब्याह जनेऊ करवा कर ही गृहस्थी चलाते थे। बनमाली धनी घरका था। उसके पिताको लोग कृष्णपुरका जमींदार कहते थे। रासबिहारी भी अच्छे खाते-पीते गृहस्थ थे। जमीन जायदाद, खेती-पाती, तालाब-बगीचा वगैरह गँवई गाँवमें जिनके होनेपर गृहस्थीका निर्वाह सुन्दरतासे हो सकता है वह सब उनके था। यह सब होते हुए भी लड़कोंने क्यों शहरमें मकान किराये नहीं ले लिया और क्यों आँधी पानी, शीत-घाम सिरपर सहकर इतना रास्ता पैदल चलकर रोज घरसे विद्यालय आते-जाते रहे, इसका कारण यह था कि उन दिनों पिता-माता कल्पना भी नहीं कर पाते थे कि लड़कोंके लिए यह भी कोई कष्ट है, बल्कि वे समझते थे, इतना दुख उठाये बिना सरस्वती देवी पकड़ाई नहीं दे सकतीं। सो, कारण जो भी हो, तीनों लड़कोंने इसी तरह एण्ट्रेन्स पास की। बरगदके नीचे बैठकर बरगदके ठूँठको गवाह बनाकर तीनों मित्र रोज प्रतिज्ञा करते थे कि जिन्दगीमें हम कभी अलग नहीं होंगे, कभी

विवाह नहीं करेंगे, वकील बनकर तीनों एक मकानमें रहेंगे; रुपए कमाकर सब रुपए एक सन्दूकमे जमा करेंगे और उसे देशके काममें लगा देंगे।

यह तो हुई लड़कपनकी कल्पना। लेकिन जो कल्पना नहीं है, सच है, वह आखिरको किस रूपमें सामने आया, वही संक्षेपमें कहता हूँ।

मित्रताकी गाँठ पहले बी० ए० कक्षामें ही ढीली पड़ गई। उस समय कलकत्तेमे केशव सेनका प्रचण्ड प्रताप था। व्याख्यानोंकी धूम थी। उसे गँवई गाँवके ये तीनो लड़के सहसा सँभाल न सके—तीनों बह गये। बह जरूर गये लेकिन बनमाली और रासबिहारी जिस प्रकार खुल्लमखुल्ला दीक्षा लेकर ब्राह्म समाजमें शामिल हो गये, जगदीश वैसा न कर सका,—असमञ्जसमे पड़ गया, वह तीनोंमें सबसे अधिक मेधावी अवश्य था, लेकिन बड़े ही कमजोर मनका था। तिसपर, उसके ब्राह्मण पण्डित पिता उस समय तक जीवित थे जब कि यह बला शेष दोनोंके सिरपर नहीं थी। कुछ समय पहले पिताके परलोक चले जानेके कारण बनमाली तब कृष्णपुरका जमींदार हो गया था और रासबिहारी अपने राधापुरकी सारी जमीन जायदादका एकछत्र सम्राट्। इसलिए थोड़े दिन बाद ही ये दोनों मित्र ब्राह्म-परिवारोंमें विवाह करके और विदुषी पत्नियाँ लेकर घर लौट आये। लेकिन दरिद्र जगदीशको यह सुभीता नहीं हो सका। उसे ठीक समयपर कानून पास करना पड़ा और एक गृहस्थ ब्राह्मणकी ग्यारह वर्षकी कन्यासे विवाह करके रुपए कमानेके लिए इलाहाबाद चले जाना पड़ा। लेकिन, बाकी दोनोंको जो काम कलकत्तेमें बिलकुल सहज जान पड़ा था गाँवमें लौटने पर वही सबसे कठिन हो गया। बहुएँ ससुरालमें आकर घूँघट नहीं काढ़तीं, जूते-मोजे पहन कर रास्तेमें बाहर निकलती हैं,—यह तमाशा देखनेके लिए गाँवोंके लोग आ आकर भीड़ करने लगे और गाँव-भरमें ऐसी भद्दी हैं हैं हूँ हूँ शुरू हो गई कि एकदम निरुपाय हुए बगैर कोई भी वहाँ स्त्रीको लेकर वास न कर सकता। बनमालीके पास उपाय था, इसलिए वह गाँव छोड़कर कलकत्तेमें आकर रहने लगा और केवल जमींदारीके भरोसे न रह कर उसने रोज़गार भी आरम्भ कर दिया। लेकिन रासबिहारीकी आय थी थोड़ी, इस लिए वह× एक सूपा अपनी पीठपर और एक विदुषी पत्नीको पीठपर लादकर किसी प्रकार अपने

× बंगलाका एक प्रयोग—'काने दिएछि तूलो, पीठे दिएछि कूलो (कानोंमें रुई लगा ली, पीठपर सूप रख लिया)। अर्थात्, उपाय न होनेके कारण विवाद किये बिना कष्ट सहनेको तत्पर हो गया।

गाँवमें ही समाजसे बहिष्कृत 'एक घर' होकर रहने लगा।

अतएव इन तीनों मित्रोंमेंसे एकके इलाहाबादमें, एकके राधापुरमें और एकके कलकत्तेमें रहने लगनेके कारण जिन्दगी-भर कॅारे रहकर एक मकानमें निवास करने और एक सन्दूकमें रुपए जमा करके देशोद्धार करनेकी प्रतिज्ञा अब तक स्थगित रही और जो सूखा बरगदका वृक्ष इसका गवाह था, वह शायद किसीके विरुद्ध कोई अपराध लगाये बिना चुपचाप मन ही मन हँसता रहा। इसी प्रकार बहुत दिन बीत गये। इस बीच इन तीनों मित्रोंमें शायद ही कभी भेंट हुई हो, लेकिन, फिर भी बचपनका प्रेम एकदम लुप्त नहीं हुआ। जगदीशके जब लड़का हुआ तब उसने वनमालीको सुसवाद देते हुए इलाहाबादसे लिखा—'तुम्हारे अगर लड़की हो तो उसे बहू बनाकर लड़कपनमें जो पाप किया है, उसका कुछ प्रायश्चित्त करूँगा। तुम्हारी दयासे ही वकील बनकर सुखसे हूँ, यह बात मैं किसी दिन नहीं भूला हूँ।'

बनमालीने उसके उत्तरमें लिखा,—'बहुत अच्छा। मेरी कामना है कि तुम्हारा लड़का दीर्घायु हो। लेकिन, मेरे लड़की होनेकी कोई आशा नहीं। तो भी, यदि किसी दिन मङ्गलमयके आशीर्वादसे सन्तान हुई, तो तुम्हें दूँगा।' चिट्ठी लिखकर वनमाली मन ही मन हँसा, क्योंकि, दो वर्ष पहले उसके दूसरे मित्र रासबिहारीके जब लड़का हुआ था, तब उसने भी ठीक यही प्रार्थना की थी। व्यापारकी कृपासे अब वह बहुत बड़ा धनी हो गया है। इसलिए उसकी कन्याको सभी अपनी बहू बनाना चाहते हैं।

## २

दो-चार छः महीनेकी बात नहीं है, पचीस वर्ष बादकी कहानी लिख रहा हूँ। बनमाली बूढ़े हो गये हैं। कई वर्षोंसे रोग भोगते भोगते वे चारपाई-पर पड़ गये हैं और उन्हे मालूम हो रहा है कि अब शायद उठना नहीं हो सकेगा। हमेशासे ही वे भगवत्परायण और धर्मभीरु हैं। मौतसे उन्हें डर नहीं था। केवल यह सोच कर ही कुछ दुखी थे कि वे अपनी एकमात्र कन्या विजयाका विवाह कर जानेका मौका नहीं पा सके। उस दिन तीसरे प्रहर अचानक विजयाका हाथ अपने हाथमें लेकर वे बोले, "मेरे लड़का नहीं है, इसका मैं जरा भी दुख नहीं करता। तू मेरी सब कुछ है। यद्यपि अभी तक तेरे अठारह वर्ष भी पूरे नहीं हुए हैं, किन्तु तेरे सिरपर अपनी इतनी बड़ी सम्पत्तिका बोझ रख जानेमें मुझे रत्तीभर भी

भय नहीं हो रहा है। तेरे मा नहीं है, भाई नहीं है, कोई बूढ़ा काका-दादा तक नहीं है। तो भी मैं खूब जानता हूँ, मेरा सब सुरक्षित रहेगा। केवल एक अनुरोध किये जाता हूँ बेटी, जगदीश जो भी करे, और चाहे जैसा हो, वह मेरे लड़कपनका मित्र है। ऋणके बदले उसका घर-द्वार कभी मत लेना। उसके एक लड़का है। उसे मैंने आँखोंसे नहीं देखा, लेकिन सुना है, वह बहुत अच्छा लड़का है। बापके अपराधसे उसे निराश्रय मत करना बेटी, यही मेरा अन्तिम अनुरोध है।"

विजयाने आँसुओंसे रुँधे गलेसे कहा, "बापू, तुम्हारा आदेश मैं किसी दिन नहीं टालूँगी। जगदीश बाबू जितने दिन जियेंगे, उन्हें तुम्हारे समान ही मानूँगी, लेकिन उनके न रहनेपर सब सम्पत्ति उनके लड़केके लिए यों ही व्यर्थ क्यों छोड़ दूँगी? उसे तुमने भी आँखोंसे नहीं देखा, मैंने भी नहीं देखा। और यदि सचमुच ही वे लिखना-पढ़ना सीखे होंगे तब तो सहज ही अपने पिताका ऋण चुका दे सकेंगे।"

बनमालीने कन्याके मुँहकी ओर आँखें उठाकर कहा, "ऋण भी तो कुछ कम नहीं है बेटी। लड़का ठहरा, वह यदि न चुका सके तो?"

कन्याने उत्तर दिया, "जो नहीं चुका सकता वह कुसन्तान है बापू, उसे सहारा देना उचित नहीं।"

बनमाली अपनी सुशिक्षिता तेजस्विनी कन्याको पहचानते थे। इसलिए उन्होंने अधिक तर्क-वितर्क नहीं किया; और केवल एक लम्बी साँस लेकर कहा, "सारे काम-काजोंमें भगवानको सिर-माथेपर रखकर जो कर्तव्य हो, वही करना बेटी! मैं तुमसे कोई विशेष अनुरोध करके तुम्हें बाँध कर नहीं जाना चाहता।"

यह कहकर क्षण-भर चुप रहकर उन्होंने फिर एक साँस ली और कहा, "जानती है बेटी विजया, यह जगदीश जब एक मनुष्य कहे जानेके योग्य मनुष्य था, तब उसने तेरे पैदा होनेके पहले ही तुझे अपने इस लड़केके नामपर माँग लिया था। मैंने भी बेटी, बात दे दी थी।" यह कहकर उन्होंने उत्सुक दृष्टिसे देखा।

बनमालीकी यह कन्या बचपनमें ही मासे बिछुड़ गई थी। उन्होंने ही उसके पिता-माता दोनोंका स्थान पूरा किया था। इसीलिए विजयाने पितासे माका लाड़ करनेमें कभी सङ्कोच नहीं किया; उसने कहा "बापू, तुमने उन्हें केवल मुँहकी बात ही दी थी, अपने मनकी बात नहीं।"

" क्यों बेटी ? "

" दी होती तो क्या एक बार उन्हें अपनी आँखोंसे भी देखना न चाहते ? "

बनमालीने कहा, " रासबिहारीसे जब मैंने सुना, लड़का शायद अपनी माके समान ही दुबला है, डाक्टर लोग उसके दीर्घ जीवनकी आशा नहीं करते, तब मैंने उसे नज़दीक पाकर भी कभी बुला कर नहीं देखना चाहा। इसी कलकत्ते शहरमें ही किसी एक बासेमें रहकर वह उस समय बी० ए० पढ़ता था। उसके बाद अपनी बीमारी-परेशानीके कारण वह बात फिर मैंने सोची ही नहीं। लेकिन अब देखता हूँ, वह मेरी भारी भूल हो गई बेटी। तो भी, तुझसे सच कह रहा हूँ विजया, उस समय जगदीशको तेरे सम्बन्धमें मैंने अपने मनसे ही वचन दिया था।" कुछ क्षण ठहर कर उन्होंने कहा, " आज तो सब ही जानते हैं कि जगदीश एक अकर्मण्य, जुआरी, अपदार्थ, नशेबाज़ है। लेकिन यह जगदीश ही एक दिन हम सबमें सबसे अच्छा लड़का था। विद्या-बुद्धिके लिए नहीं कहता बेटी, वह तो बहुत लोगोंमें होती है, लेकिन इस तरह प्राण देकर प्रेम करते मैंने और किसीको नहीं देखा, और यह प्रेम ही उसका काल हुआ। उसके अनेक दोष मैं जानता हूँ, किन्तु, जब याद आता है कि स्त्रीकी मृत्युके कारण वह शोकसे पागल हो गया, तब तेरी माकी बात स्मरण करके मैं तो बेटी, उसे मन ही मन श्रद्धा किये बिना नहीं रह सका। उसकी स्त्री सती-लक्ष्मी थी। उसने मरनेके समय नरेन्द्रको पास बुलाकर केवल इतना ही कहा था—बेटा, केवल यही आशीर्वाद दिये जाती हूँ कि भगवान्‌पर तुम्हारा अचल विश्वास रहे। सुना है कि शायद माका अन्तिम आशीर्वाद निष्फल नहीं हुआ। नरेन्द्रने इतनी वयसमें ही भगवान्‌को अपनी माके समान ही प्रेम करना सीख लिया है। और जो यह कर सका है, संसारमें उसके लिए और क्या बाकी रहा बेटी ? "

विजयाने प्रश्न किया, " यही क्या ससारमें सबसे बड़ा पाना है बापू ? "

मरणोन्मुख बूढ़ेकी सूखी आँखें सजल हो उठीं। सहसा दोनों हाथ बढ़ाकर कन्याको हृदयपर खींचकर उन्होंने कहा, " हाँ, यही सबसे बड़ा पाना है बेटी ! संसारके भीतर, संसारके बाहर,—विश्वब्रह्माण्डमें इतना बड़ा पाना और कुछ नहीं है विजया। तुम खुद किसी दिन पा सको या न पा सको बेटी, पर जो पा सका है, तुम उसके पैरोंमें मस्तक रख सको,—मैं मरते समय तुम्हें यही आशीर्वाद दिये जाता हूँ। "

उस दिन पिताकी छातीपर औंधी पड़ी हुई विजयाके मनमें आया, कोई मानो बहुत मधुर, बहुत उज्ज्वल दृष्टिसे उसके पिताके हृदयके भीतरसे उसके निजके हृदयके गहरे अन्तस्तल तक प्रेमपूर्वक एकटक देख रहा है। इस अभूतपूर्व परम आश्चर्यप्रद अनुभूतिने उस दिन क्षण-भरके लिए उसे घेर लिया। बनमालीने कहा, "लड़केका नाम नरेन्द्र है, उसके बापके मुँहसे सुना है, वह डाक्टर हो गया है लेकिन डाक्टरी नहीं करता। इस समय यदि इस देशमें वह होता तो इसी समय एक बार उसे बुलाकर आँखे भर कर देख लेता।"

विजयाने प्रश्न किया, "इस समय वे कहाँ हैं?"

बनमालीने कहा, "अपने मामाके पास बर्मामें। इस समय मुझमें जगदीशकी सब बातें सिलसिलेसे कहनेकी शक्ति नहीं है, तो भी उसके मुँहकी दो-एक उतराती हुई बातोंसे मालूम होता है, मानो उस लड़केने अपनी माके सारे ही सद्गुण पाये हैं। भगवान् करें, जहाँ जिस तरह भी हो, वह जिए-जागे।"

शाम हो गई थी। नौकर दिया-बत्ती करने आकर विलास बाबूके आनेकी खबर देकर चला गया। बनमालीने कहा, "तो तुम अब नीचे जाओ बेटी, मैं थोड़ा विश्राम करूँ।"

विजया जब पिताके सिरहानेकी तकिया सँभालकर, शालको पैरोंपर यथास्थान खींच देकर, प्रकाशको आँखोंके ऊपरसे आड़में करके, नीचे चली गई तब पिताकी जीर्ण छातीको भेदकर केवल एक लम्बी साँस निकल गई। उस दिन विलासके आनेकी खबरसे कन्याके मुँहपर जो आरक्त आभा दिखाई पड़ी थी, वृद्धको उसने व्यथा ही पहुँचाई थी।

विलासबिहारी रासबिहारीका लड़का है। वह इसी कलकत्ता शहरमें रहकर बहुत दिनोंसे पहले एफ० ए० में पढ़ता रहा, अब बी० ए० में पढ़ रहा है। बनमाली समाज त्याग करनेके समयसे अधिकतर देश नहीं जाते थे। यद्यपि रोज़गारकी उन्नतिके साथ साथ देशमें भी उन्होंने बहुत-सी जमींदारी बढ़ा ली थी, लेकिन, उस सबकी देख-भालका भार उनके बाल्यबन्धु रासबिहारीपर ही था। उसी सिलसिलेमें विलासका इस घरमें आना-जाना आरम्भ होकर कुछ समयके बाद जिस कारणसे बन्द हो गया, उसका पता बादको लगेगा।

## ३

दो महीने हुए, बनमालीकी मृत्यु हो गई है। उनके कलकत्तेके इतने बड़े घरमें विजया इस समय अकेली है। उसकी देशकी मिल्कियतकी देख-भाल रासबिहारी करने लगे और इसी सूत्रसे उसके एक प्रकारसे अभिभावक बन बैठे। लेकिन वे खुद गाँवमें रहते हैं, इसीलिए उनके लड़के विलास-बिहारीपर ही विजयाकी सारी खबरदारीका भार आ पड़ा है। वही उसका वास्तविक अभिभावक बन गया है।

उन दिनों प्रत्येक ब्राह्म परिवारमें 'सत्य,' 'सुनीति,' 'सुरुचि' शब्द बहुत बड़े बनाकर सिखाये जाते थे। क्योंकि, विदेशमें पढ़ने जाकर हिन्दू युवक-गण जब पिता माताके विरुद्ध, देव-देवियोंके विरुद्ध, प्रतिष्ठित समाजके विरुद्ध विद्रोह करके इस समाजके बँधे हुए रजिस्टरमें नाम लिखा बैठते थे, तब ये शब्द ही टेक लगाकर उनके कच्चे मस्तकको गर्दनपर सीधा रख सकते थे,—झुक कर और टूट कर गिरने नहीं देते थे। वे कहते थे, जो सच समझेंगे, वही करेंगे। चाहे माका अश्रुजल हो, और चाहे पिताका दीर्घ-श्वास हो, उन्हें कुछ भी देखने-सुननेकी जरूरत नहीं है। ये सब दुर्बलताएँ सब प्रयत्नोंसे मिटायेंगे, नहीं तो प्रकाशका पता नहीं पा सकेंगे। ये सब बातें विजयाने भी सीख ली थीं।

आज गाँवसे विलास बाबू बूढ़े नशैल जगदीशका मृत्यु-सवाद लेकर आये थे। वे विजयाके पिताके मित्र अवश्य थे, लेकिन विलास बाबू जब कहने लगे कि किस प्रकार जगदीश शराब पीकर बेहोश होकर छतपरसे गिरकर मर गये, तब ब्राह्म-धर्मकी 'सुनीति' स्मरण करके विजयाने पिताके इस दुर्भाग्य-सखाके विरुद्ध घृणासे ओंठ विकृत करनेमें रत्ती-भर भी सङ्कोच अनुभव नहीं किया। विलास कहने लगा "जगदीश मुखुर्जे* मेरे पिताजीका भी छुटपनका मित्र था, लेकिन वे उसका मुँह तक नहीं देखते। वह दो बार रुपये उधार माँगने आया, और पिताजीने दोनों ही बार उसे नौकरसे फाटकके बाहर निकलवा दिया। वे सदा कहते हैं, इन सब अनाचारियोंको आश्रय देना मङ्गलमय भगवान्के श्रीचरणोंमें अपराध करना है।"

विजयाने सम्मति देते हुए कहा, "बिलकुल सच बात है।"

---

* 'मुखोपाध्याय' के अपभ्रंश 'मुखर्जी' शब्दका अधिक प्रचलित प्रयोग।

विलास उत्साहित होकर व्याख्यानके ढंगसे कहने लगा, "मित्र हो, या कोई भी हो, दुर्बलताके कारण किसी भी तरह ब्राह्म-समाजके चरम आदर्शको गिराना उचित नहीं है। न्यायसे अब जगदीशकी सारी सम्पत्ति हमारी है। उसका लड़का पिताका ऋण चुका सके तो अच्छा है, न चुका सके तो कानूनके अनुसार इसी क्षण हमें सब हाथमें ले लेना चाहिए। असलमें, छोड़ देनेका हमें कोई अधिकार भी नहीं है। क्योंकि, इन रुपयोंसे हम अनेक सत्कार्य कर सकते हैं। समाजके किसी लड़केको विलायत तक भेज सकते हैं, धर्म-प्रचारमें खर्च कर सकते हैं, और न जाने कितने काम कर सकते हैं। क्यों यह न करें, बताइए? इसके सिवा जगदीशबाबू या उनका लड़का हमारे समाजके नहीं हैं जो उनपर किसी प्रकारकी दया करना आवश्यक हो। पिताजीने आज मुझे आपके पास यह कहकर भेजा है कि आपकी सम्मति पाते ही वे सब ठीक ठाक कर डालेंगे।"

विजया मृत पिताकी अन्तिम बातें स्मरण करके सोचने लगी,—सहसा जवाब नहीं दे सकी। उसको इस तरह सङ्कोच करते देखकर विलास जोर देकर दृढ़ स्वरसे कह उठा, "नहीं नहीं, आपको मैं किसी प्रकार टालटूल नहीं करने दूँगा। द्विधा, दुर्बलता पाप है। केवल पाप ही क्यों, महापाप है। मैंने मन ही मन सङ्कल्प किया है कि उसका घर आपके नाम लिखवाकर जो कहीं नहीं है,—कहीं हुआ भी नहीं मैं वही करूँगा। गाँवई गाँवमें ब्राह्म-मन्दिरकी प्रतिष्ठा करके देशके अभागे मूर्ख लोगोंको धर्मकी शिक्षा दूँगा।—आप एक बार सोचिए तो सही, देखिए, इन लोगोंकी मूर्खताकी ज्वालासे विरक्त होकर ही आपके स्वर्गीय पितृदेवने देश छोड़ा था कि नहीं? उनकी कन्या होकर क्या आपको उचित नहीं है कि यह निष्कलङ्क बदला लेकर उनका ही चरम उपकार करें? बोलिए, आप ही इस बातका उत्तर दीजिए।"

विजया विचलित हो उठी। विलास दृप्त स्वरसे कहने लगा, "सारे देशमें कितना बड़ा नाम होगा, कैसी धूम मच जायेगी, सोचकर तो देखिए! हिन्दुओंको स्वीकार करना ही होगा और यह करानेका भार मेरे ऊपर है कि ब्राह्म समाजमें मनुष्य हैं, हृदय है, स्वार्थत्याग है। जिसको उन्होंने निर्यातन करके देशसे विदा कर दिया था उसी महात्माकी महीयसी कन्याने उनके ही मङ्गलके लिए यह विपुल स्वार्थत्याग किया है। सारे भारतवर्षमें कितना विराट् मारल एफेक्ट होगा, बताइए तो!" यह कहकर विलासबिहारीने सामनेकी टेबुलपर जोरसे हाथ पटका सुनते सुनते विजया मुग्ध हो गई। सचमुच ही इतने बड़े नामका लोभ संवरण

करना अठारह वर्षकी लड़कीके लिए सम्भव नहीं है। उसने पूरी सम्मति देकर कहा, "उनके लड़केका नाम, सुना है, नरेन्द्र है। अब वह कहाँ हैं, जानते हैं?"

"जानता हूँ। अभागे पिताकी मृत्युके बाद वह घर आकर उसका श्राद्ध करके वहीं रहने लगा है।"

"आपसे, जान पड़ता है, बातचीत है?"

"बातचीत? छिः! आप मुझे क्या समझती हैं, बताइए तो?" यह कहकर विजयाको एकदम अप्रतिभ करके विलासबाबू कुछ हँसकर बोले, "मैं तो सोच ही नहीं सकता कि जगदीश मुखुर्जेके लड़केसे बात करनी चाहिए। तो भी, उस दिन रास्तेमें सहसा पागलके समान एक नया आदमी देखकर मैं चकित हो गया। सुना, वही नरेन्द्र मुखुर्जे है।"

विजयाने कुतूहलमें पड़कर कहा, "पागलके समान? सुना है, वे तो शायद डाक्टर हैं?"

विलासबाबूने घृणासे सारे अङ्गोंको सिकोड़कर कहा, "ठीक पागलके समान। —डाक्टर! मैं विश्वास नहीं करता। मस्तकपर बड़े बड़े बाल,—जैसा लम्बा वैसा ही रोगी-सा। हृदयका प्रत्येक पञ्जर मैं समझता हूँ दूरसे गिना जा सकता है,—यही तो रूप है! मानो ताड़-पत्तेका सिपाही हो! छिः—"

वास्तवमें, रूप लेकर गर्व करनेका अधिकार विलासको था। क्योंकि, वह ठिंगना, मोटा और भारी जवान था। उसके छातीके पञ्जर बम मारकर भी दिखाये नहीं जा सकते थे। वह और भी कुछ कहने जा रहा था, पर विजयाने बाधा देकर पूछा, "अच्छा विलासबाबू, जगदीशबाबूका घर यदि हम सचमुच ही दखल कर लें, तो गाँवमें क्या एक भद्दा अपवाद न उठ खड़ा होगा?"

विलास जोर देकर कह उठा, "बिलकुल नहीं। आप पाँच-सात गाँवोंमें ऐसा एक भी आदमी नहीं पायेंगी जिसकी इस नशेलपर बूँद-भर भी सहानुभूति रही हो। 'आहा' कहे, ऐसा कोई भी आदमी उस परगनेमें नहीं है।" फिर कुछ हँसकर कहा, "किन्तु, यदि ऐसा न भी हो, तो भी मेरे जीवित रहते वह चिन्ता आपको मनमें भी नहीं लानी चाहिए।—लेकिन, मैं कहता हूँ, थोड़े दिनके लिए एक बार देश जाना आपका भी कर्तव्य है।"

विजयाने आश्चर्यमें पड़कर पूछा, "क्यों? मैं कभी तो वहाँ गई नहीं!"

विलास उद्दीप्त स्वरसे कह उठा, "इसीलिए तो कहता हूँ, आपको जाना ही चाहिए। प्रजागणको एक बार उनकी महारानीको देखने दीजिए। मुझे तो

निश्चय ही ऐसा लगता है कि इस सौभाग्यसे उन्हें वञ्चित करना महापाप है।"

लज्जासे विजयाका सारा मुँह आरक्त हो उठा। उसके नीचा मुँह करके कोई एक बात कहनेकी चेष्टा करते ही विलास बाधा डालकर बोल उठा, "इसमें इधर उधर करनेकी बात ही कुछ नहीं है। एक बार सोचकर तो देखिए, कितना काम वहाँ आपको करनेका है। यह बात आज आपके मुँहके ऊपर ही मैं कह सकता हूँ, कि, आपके पिता इतनी बड़ी जमींदारीके मालिक होकर भी जो कुछ पागल कुत्तोंके डरसे कभी गाँवमें वापस नहीं गये, यह उन्होंने कोई अच्छा काम नहीं किया। यह क्या हमारे ब्राह्म समाजका आदर्श है? यह तो किसी समाजका आदर्श नहीं है।"

विजयाने क्षणभर चुप रहकर कहा, "लेकिन, बापूके मुँहसे सुना है, अपना देशका घर तो रहनेके योग्य नहीं है?"

विलास बोला, "आप हुक्म दीजिए, एक बार बोलिए कि वहाँ जाइएगा, मैं दस दिनके भीतर ही उसे रहनेके योग्य बना दूँगा। मुझपर निर्भर कीजिए, मैं प्राणप्रणसे इसका बदोबस्त कर दूँगा कि वह मकान आपकी मर्यादाको सोलह आने सँभाल सके। देखिए, यह बात बहुत दिनसे बार बार मेरे मनमें आती है कि आपको सामने रखकर मैं जो कुछ कर सकता हूँ, मैं समझता हूँ, उसकी सीमा नहीं है।"

विजयाको राजी करके विलास चला गया, वह उसी स्थानपर चुप चाप बैठी रही। जो उसका गाँव है,—देश है, उसमें वह जन्मसे आज तक यद्यपि कभी नहीं गई, लेकिन बीच बीचमे पिताके मुँहसे उसका कितना वर्णन उसने नहीं सुना है! देशकी बातें करनेमें उनके उत्साह और आनन्दका ठिकाना नहीं रहता था। लेकिन तब वे सब कहानियाँ उसका मन जरा भी आकर्षित नहीं कर पाती थीं; ज्यों ही सुनती थी, त्यों ही भूल जाती थी। लेकिन, आज कहींसे अकस्मात् लौट आकर वे सब भूली बातें आकार धारण करके उसकी आँखोंके सामने झूल गईं। उसे लगने लगा, उसके गाँवका घर जरूर कलकत्तेकी इस अट्टालिकाके समान बड़ा और शानदार नहीं है, लेकिन वही तो उसके सात पुरखोंकी देहरी है। वहाँ बाबा-आजी, परबाबा-परआजी, उनके भी पिता-माता,—इस प्रकार न जाने कितने पुरखोंके सुख-दुखमें उत्सव-कष्टमें यदि दिन बीत गये तो उसके ही दिन आखिर क्यों नहीं कटेंगे?

गलीके सामने हाजराओंके तिमजिले मकानकी आड़में सूर्य छिप गये, यह विषय

लेकर पिताके साथ उसकी न जाने कितनी बातें हो चुकी हैं। उसे याद आया, कितनी सन्ध्याओंमें वे उस इज़ी-चेअरपर बैठकर लम्बी साँस छोड़कर बोले हैं, "विजया, मैंने यह दुःख अपने देशके घरमें कभी नहीं पाया। वहाँ कभी किसी हाजराकी तिमजिली छत हमारे इस शेष सूर्यास्तको इस प्रकार छिपाकर खड़ी नहीं हुई। तू तो जानती नहीं बेटी, लेकिन मेरी जो दोनों आँखें इस हृदयके भीतरसे उझककर एकटक देखती हैं वे साफ देखती रही हैं कि अपनी फुलवारीके किनारे छोटी नदी इस समय सोनेके जलसे झलमल झलमल कर उठी है, और उसके उस पार जितनी दूर नजर जाती है, मैदानके बाद मैदानके अन्तमें इस समय भी सूर्य भगवान् जाते जाते भी गाँवकी माया काट कर जा नहीं सके हैं। बेटी, गलीके मोड़पर तू देख रही है कि दिनका काम पूरा करके घरोंकी ओर मनुष्योंका स्रोत बहा जा रहा है, लेकिन, इस दस-बारह हाथ ज़मीनको छोड़कर उनके साथ जानेका जरा-सा भी तो रास्ता नहीं है। इस सन्ध्या-बेलामें वहाँ भी तो मनुष्योंका उलटा स्रोत घरकी ओर बह कर जाता हुआ दिखता है, किन्तु मुझे उनके प्रत्येक गोरू-बछड़ेकी थान तकका परिचय रहता था, बेटी।" इस प्रकार कहकर वे अकस्मात् एक अत्यन्त गहरी साँस हृदयसे निकाल कर चुप हो जाते थे। एक दिन वे जिस गाँवको छोड़ आये थे, उसके ही लिए इतने सुख-ऐश्वर्यमें भी उनका हृदय रोता रहता है, इस बातको विजया जब-तब जान लेती थी। तथापि, एक दिन भी उसने इसका कारण सोच कर नहीं देखा, लेकिन आज विलासबाबूके उस ओर उसकी दृष्टि आकर्षित करके चले जानेपर, परलोकगत पितृदेवकी बातें स्मरण करते करते उनकी सारी छिपी वेदनाका कारण अकस्मात् एक मुहूर्तमें उसके मनपर प्रकाशित हो उठा। कलकत्तेकी इस विपुल भीड़भाड़में भी वे किस प्रकार एकाकी जीवन बिता गये हैं, आज उसे आँखोंके आगे देख पाकर वह एकदम डर गई और आश्चर्य यह है कि जिस गाँव, जिस देहरीसे उसका जन्मसे लेकर अब तक परिचय नहीं है, वही आज उसे दुर्निवार शक्तिसे खींचने लगी।

## ४

बहुत दिनोंसे छोड़ा हुआ जमींदारका घर विलासकी देख-भालमें सुधारा जाने लगा, जिसे लोगोंने पहले कभी नहीं देखा, कलकत्तेसे वह सब विचित्र असबाब बैलगाड़ियोंमें लद लद कर नित्य आने लगा। जमींदारकी इकलौती कन्या देशमें रहने आयेगी, यह खबर फैलते ही सिर्फ़ कृष्णपुरमें ही नहीं, राधापुर, व्रजपुर, दिघड़ा

आदि आसपासके पाँच-सात गाँवोंमें भी हलचल मच गई। एक तो घरके नज़दीक जमींदारका वास हमेशासे ही लोगोंको बुरा लगता है, दूसरे जमींदारके गाँवमें न रहनेका ही प्रजाको अभ्यास हो गया है। इसलिए उसके फिरसे बसनेकी इच्छा सबको एक अन्याय-उत्पात-सी लगी। मैनेजर रासबिहारीके प्रबल शासनमें उनके दुःखोंकी यों ही कमी नहीं थी, अब जमींदारकी लड़कीके गाँव लौटनेके शुभ उपलक्षमें वह और कौन-सा नया उपद्रव पैदा करेगा, यह बाजार, मैदान-घाट,—सब कहीं एक अशुभ चिन्ता-चर्चाका विषय बन गया। परलोकगत बूढ़े जमींदार बनमाली जितने दिन जीवित रहे उतने दिन दुखमें भी यह सुख था, कि, किसी तरह कलकत्ते जाकर एक बार उनके नजदीक पहुँच सकनेपर किसीको भी निष्फल होकर नहीं लौटना पड़ता था। लेकिन, जमींदारकी लड़कीकी वयस थोड़ी है और माथा गरम है,—रासबिहारीके लड़केके साथ विवाहका हल्ला भी गाँवमें फैल रहा है,—वे मेमसाहब ठहरीं, म्लेच्छ हैं, इसलिए निकट भविष्यमें ही रासबिहारीके पाजीपनकी कल्पना करके किसीके मनमें कोई सुख नहीं रह गया—जनेऊधारी ब्राह्मणोंके मनमें भी नहीं और बेजनेऊके शूद्रोंके मनमें भी नहीं। इसी तरह, भय-चिन्तामें वर्षा बीत गई। सरदीके आरम्भमें ही एक मधुर प्रभातमें दो घोड़ोंकी खुली फिटनमें चढ़कर तरुणी जमींदार कन्या सैकड़ों नर नारियोंकी भय-कौतूहलभरी दृष्टियोंके बीच हुगली स्टेशनसे पिता-बाबाके पुराने निवासस्थानमें आ उपस्थित हुई।

बङ्गालीकी कन्या है,—अठारह-उन्नीस वर्ष पार हो गये हैं, तिसपर भी विवाह नहीं हुआ,—खुल्लमखुल्ला जूते-मोजे पहनती है,—खाद्य-अखाद्यका विचार नहीं करती—इत्यादि निन्दा गाँवके लोग एकान्तमें करने लगे, साथ ही जमींदारका नजराना लेकर एक एक, दो दो करके आकर नानाप्रकारसे आनन्द और मङ्गल-कामना जताकर भी जाने लगे। इस प्रकार पाँच-छः दिन बीतनेके बाद उस दिन जब सबेरे विजया चाय पीकर नीचेके बैठकके कमरेमें विलास बाबूके साथ जमीन-जायदादके सम्बन्धमें बातचीत कर रही थी, तब बेयराने आकर बताया, एक सज्जन मिलना चाहते हैं।

विजयाने कहा, "यहीं लिवा लाओ।"

इधर कुछ दिनोंसे लगातार उसकी प्रजाके और भी छोटे-बड़े लोग नज़राना लेकर जब तब मिलने आया करते थे, इसलिए पहले उसने विशेष कुछ नहीं सोचा। किन्तु, क्षण-भरके बाद उक्त सज्जनके बेयराके पीछे ही कमरेमें घुसनेपर

उसकी तरफ़ दृष्टि उठाते ही विजया विस्मित हो रही। उसकी उम्र अनुमानतः चौबीस-पचीस की होगी। आदमी लम्बे डीलका था, लेकिन उस हिसाबसे हृष्टपुष्ट नहीं, वरन दुबला-पतला था, वर्ण उज्ज्वल गोरा था, दाढ़ी-मूँछें बनी थीं, पैरोंमें चट्टियाँ थीं, देहमें कुरता नहीं था, केवल एक मोटी चद्दरके झरोखेसे सफेद जनेऊके धागे दिखाई पड़ते थे। वह मामूली नमस्कार करके एक कुर्सी खींच कर बैठ गया। इसके पहले जो कोई भला आदमी मिलने आया है, वह केवल नजरानेका रुपया हाथमें लेकर ही भीतर घुसा है। लेकिन इस व्यक्तिके आचरणमें तो सकोचका लेश भी नहीं है। इसके आगमनसे केवल विजया ही विस्मित नहीं हुई, विलासको भी कम आश्चर्य नहीं हुआ। दूसरे गाँवमें रहनेपर भी विलास इस ओरके सब लोगोको पहचानता था। आगन्तुक सज्जनने ही पहले बात आरम्भ की। उसने कहा, "मेरे मामा पूर्ण गागुली महाशय आपके पड़ोसी हैं, बगलका मकान उनका ही है। मैं सुनकर अवाक् हो गया हूँ कि उनके बाप–दादोंके समयकी दुर्गा-पूजा शायद आप अबकी बार बन्द कर देना चाहती हैं। इसका मतलब क्या है ?" यह कहकर उसने विजयाके मुँहपर दृष्टि जमा ली। प्रश्न और उसके पूछनेके ढङ्गसे विजया आश्चर्यमें पड़ गई और मन ही मन विरक्त भी हुई, लेकिन, उसने कोई उत्तर नहीं दिया।

उत्तर दिया विलासने। उसने रूखे स्वरसे कहा, "आप क्या इसीलिए मामाकी तरफ़से झगड़ा करने आये हैं ? लेकिन किससे बात कर रहे हैं, यह मत भूल जाइएगा।"

आगन्तुकने हँसकर कुछ जीभ दबाकर कहा, "सो मैं भूला नहीं हूँ, और झगड़ा करने भी नहीं आया हूँ। वरन् बातपर मुझे विश्वास नहीं हुआ, इसीलिए अच्छी तरह जान लेनेके लिए आया हूँ।"

विलासने हँसी उड़ानेके ढगसे कहा, "विश्वास क्यो नहीं हुआ ?"

आगन्तुकने कहा, "कैसे होगा बताइए भला ? बेमतलब अपने पड़ोसीके धर्मविश्वासपर आघात कीजिएगा, इस बातपर विश्वास न करना ही तो स्वाभाविक है ?"

धर्म-मत लेकर तर्क-वितर्क करना विलासका बचपनसे ही अत्यन्त प्रिय विषय रहा है। वह उत्साहसे प्रदीप्त होकर छिपे उपहासके स्वरमें बोला, "आपके लिए निरर्थक जान पड़नेपर भी किसीके लिए भी उसका अर्थ नहीं होगा, अथवा आपके धर्म कहनेसे ही सब उसे सिर-माथेपर रख लेंगे, इसका कोई कारण नहीं है।

-मूर्तिपूजा हमारे लिए धर्म नहीं है और उसे बन्द करना भी हम अन्याय नहीं मानते।"

आगन्तुकने गहरे विस्मयसे विजयाके मुँहकी तरफ दृष्टिपात करके कहा, "आप भी क्या तब यही कहती हैं ?"

उसके विस्मयने विजयाको मानो चोट पहुँचाई, लेकिन, वह भाव छिपाकर उसने सहज स्वरसे ही जवाब दिया, "मुझसे क्या आप इसके विरुद्ध विचार सुननेकी आशासे आये थे ?"

विलासने गर्वसे हँसकर कहा, "ऐसा ही जान पडता है। लेकिन ये तो विदेशी आदमी हैं, बहुत सम्भव है आपके विषयमें कुछ भी न जानते हों।"

आगन्तुकने क्षण-भर चुपचाप विजयाके मुँहकी तरफ एकटक देखकर उससे ही कहा, "विदेशी न होनेपर भी मैं इस गाँवका आदमी नहीं हूँ, यह बात ठीक है। तो भी मैंने सचमुच आपसे यह आशा नहीं की थी। मूर्तिपूजाकी बात आपके मुँहसे नहीं निकली, फिर भी साकार-निराकार-उपासनाका पुराना झगडा मैं यहाँ नहीं उठाऊँगा। आप लोग ब्राह्म समाजी हैं, यह भी मैं जानता हूँ। लेकिन, यह तो वह नहीं है। गाँवमें यही तो एक पूजा है। सब लोग सारे वर्षसे इन तीन दिनोंकी आशासे बाट जोहते बैठे हैं।" यह कहकर और एक बार तीक्ष्ण दृष्टिपात करके उसने कहा, "गाँव आपका है,—प्रजागण आपके पुत्र-कन्याके समान हैं, आपके आनेके साथ साथ गाँवका आनन्द-उत्सव सौगुना बढ़ जायेगा, यही आशा सब करते हैं। लेकिन, ऐसा न करके इतना बडा दुःख, इतना बडा निरानन्द बिना अपराधके अपनी दुखी प्रजाके माथेपर आप खुद लाद दीजिएगा, यह विश्वास करना क्या सहज है ? मैं तो विश्वास नहीं कर सकता।"

विजया सहसा उत्तर न दे सकी। दुःखी प्रजाके नामसे उसका कोमल चित्त व्यथासे भर उठा। क्षण-भर कोई भी कोई बात नहीं कह सका, केवल विलास बाबू विजयाके उस निःशब्द स्नेहार्द मुँहकी तरफ देखकर भीतर ही भीतर गरम और उद्विग्न होकर अवज्ञाके साथ बोल उठे, "आपने बहुत-सी बातें कही हैं। मैं साकार-निराकारका तर्क आपसे करूँ, इतना अधिक समय मेरे पास भी नहीं है। सो वह चूल्हेमें जाय। आपके मामा एक क्यों, इक्कीस मूर्तियाँ गढ कर घरमें बैठ कर पूजा कर सकते हैं, उसमें कोई हर्ज नहीं है, मुझे तो केवल आपत्ति है मृदङ्ग-ढोलक झालर रात-दिन कानके पास पीट पीट कर इन्हें अस्वस्थ बना देनेमें।"

आगन्तुकने थोड़ा हँसकर कहा, "दिन-रात तो बजते नहीं। और सभी

उत्सवोंमें थोड़ा-बहुत होहल्ला, गोलमाल तो होता ही है।" फिर विजयाको विशेष रूपसे उपलक्ष करके कहा, "सो अड़चन यदि कुछ हो भी तो होने दीजिए। आप माकी जात हैं, इनके आनन्दका अत्याचार-उपद्रव आप नहीं सहेंगी तो कौन सहेगा?"

विजया उसी प्रकार निरुत्तर बैठी रही। विलास श्लेषकी सूखी हँसी हँसकर बोला, "आपने तो मतलब गाँठनेके डौलसे बाल-बच्चोंकी उपमा दे दी, सुननेमें भी बुरी नहीं लगी। लेकिन, पूछता हूँ, आप खुद यदि मुसलमान होकर मामाके कानोंके पास मुहर्रम शुरू कर देते, तो क्या वह उन्हें अच्छा लगता? पर वह जो भी हो, हमारे पास बक झक करनेको समय नहीं है। पिताजीने जो हुक्म दिया है, वही होगा। कलकत्तेसे यहाँ लाकर मैं व्यर्थ ही ढोलक-मृदग-झालरोंसे इनके कान बहरे न होने दूँगा,—किसी भी तरह नहीं।"

उसके ओछे व्यङ्ग और ज्यादा बिगड़ जानेके कारण आगन्तुककी आँखोंकी दृष्टि प्रखर हो उठी। उसने विलासके मुँहकी तरफ आँखें उठाकर कहा, "मुझे पता नहीं, आपके पिता कौन हैं और उन्हें मनाही करनेका क्या अधिकार है, लेकिन, आपने जो मुहर्रमकी अद्भुत उपमा दे डाली, सो, यदि यह हिन्दुओंकी रोशन-चौकी न होकर मुसलमानोंके मुहर्रमके ढोल तासे होते तो क्या आप उन्हें इस तरह रोक सकते? आपका यह केवल निरीह स्वजातिके प्रति ही अत्याचार नहीं तो और क्या है?"

विलास अकस्मात् कुरसी छोड़कर उछल पड़ा। उसने लाल लाल आँखें करके भयानक आवाजसे चिल्लाकर कहा, "पिताजीके सम्बन्धमे तुम सावधान होकर बात करो, यह मैं कहे देता हूँ, नहीं तो अभीके अभी तुम्हें दूसरे उपायसे सिखा दूँगा कि वे कौन हैं और उनका क्या अधिकार है।"

आगन्तुकने विलासके मुँहकी तरफ आश्चर्यसे तो देखा, लेकिन भयका चिह्न तक उसके मुँहपर दिखाई नहीं पड़ा। दिखाई पड़ा विजयाके मुँहपर। उसके घरमें बैठकर उसीके एक अपरिचित अतिथिके प्रति किये गये इस एकान्त अशिष्ट आचरणसे क्रोध और लज्जाके मारे उसका सारा मुँह लाल हो उठा। आगन्तुक एक क्षण केवल विलासके मुँहकी तरफ देखता रहा, पर दूसरे ही क्षण उसकी पूरी उपेक्षा करके विजयाकी तरफ़ आँखें फेरकर बोला, "मेरे मामा बड़े आदमी नहीं हैं, उनकी पूजाका भी आयोजन साधारण है। फिर भी आपकी दरिद्र प्रजाका सारे वर्षका यही अकेला आनन्द-उत्सव है। हो सकता है कि

आपको कुछ अड़चन हो, लेकिन, उनका मुँह देखकर क्या इतना भी आप नहीं सह ले सकेंगी ? ”

विलास क्रोधसे पागल सा होकर सामनेकी टेबुलपर जोरसे घूँसा मारकर चीत्कार कर उठा, “ नहीं, नहीं सह सकेंगी, कदापि नहीं सह सकेंगी। कुछ मूर्ख किसानोंका पागलपन सहनेके लिए कोई जमींदारी नहीं करता। तुम्हें और कुछ कहना न हो, तो जाओ, हम लोगोंका समय व्यर्थ नष्ट मत करो। ” यह कहकर उसने हाथसे दरवाजा दिखा दिया।

उसकी उत्कट उत्तेजनासे क्षण-भरके लिए आगन्तुक सज्जन मानो हतबुद्धि हो गये। सहसा उनके मुँहसे प्रत्युत्तर नहीं निकल सका। लेकिन, विजयाने पितासे निष्फल शिक्षा नहीं पाई थी। उसने शान्त, धीर भावसे विलासके मुँहकी तरफ़ देखकर कहा, “ आपके पिता मुझे कन्याके समान प्रेम करते हैं, इसीलिए शायद उन्होंने इनकी पूजा बन्द कर दी है; लेकिन, मैं कहती हूँ, तीन-चार दिन थोड़ा गोलमाल होता भी रहे तो क्या हर्ज है ! ”

बात पूरी करने दिये बिना ही विलास उतने ही ऊँचे कण्ठसे विरोध कर उठा, “ वह असहनीय गोलमाल है ! आप जानती नहीं, इसीलिए—”

विजयाने हँसमुख होकर कहा, “ होने दीजिए गोलमाल, तीन ही दिन तो होगा न ! और आप मेरी अड़चनकी चिन्ता करते हैं, लेकिन, कलकत्ता होता तो आप क्या करते ? वहाँ तो आठो पहर कानोंके पास तोपें दगते रहनेपर भी चुप रहकर सहना पड़ता है।” यह कहकर उसने आगन्तुक युवककी ओर देखकर हँसते हँसते कहा, “ अपने मामासे कहिएगा, वे हर बार जैसी करते हैं, इस बार भी वैसी ही पूजा करें, मुझे रत्ती भर आपत्ति नहीं है। ”

आगन्तुक और विलास बाबू दोनों ही विस्मयसे अवाक् होकर विजयाके मुँहकी ओर देखने लगे।

“ तो अब आप जाइए,” कहकर विजयाने हाथ उठाकर साधारण-सा नमस्कार कर लिया। अपरिचित सज्जन भी अपनेको सँभालकर उठ खड़े हुए, और धन्यवाद तथा प्रति नमस्कारके बाद विलासको भी एक नमस्कार करके बाहर चले गये। अवश्य, क्रुद्ध विलासने दूसरी ओर आँखें फिराकर उसे अस्वीकार किया, लेकिन, दोमेंसे कोई भी नहीं जान सका कि यह अपरिचित युवक ही उनके सबसे मुख्य आसामी जगदीशका लड़का नरेन्द्रनाथ है।

## ५

उसके चले जानेपर कोई मिनट-भर तक विजया अन्यमनस्क और चुप रही। उसके बाद सहसा चकित होकर मुँह उठाते ही बिलकुल अकारण ही उसके कपोलोंके ऊपर एक क्षीण आरक्त आभा दिख गई। विलासकी दृष्टि दूसरी जगह जमी न होती, तो उसके विस्मय और अभिमानकी शायद सीमा न रहती। विजयाने मृदु हँसकर कहा, "हम लोगोंकी बात तो पूरी ही नहीं हो पाई। तो फिर ताल्लुका ले लेनेकी ही आपके पिताजीकी राय है?"

विलास खिड़कीके बाहर देख रहा था। उसने उसी भावसे कहा, "हूँ।"

विजयाने पूछा, "लेकिन, इसमें किसी तरहका गोलमाल तो नहीं है?"

विलास बोला, "नहीं।"

विजयाने दुबारा पूछा, "आज क्या वे उस पहर इस तरफ आयेंगे?"

विलासने कहा, "कह नहीं सकता।"

विजयाने हँसकर कहा, "आप नाराज़ हो गये क्या?"

इस बार विलासने मुँह फिराकर गम्भीर भावसे जवाब दिया, "नाराज़ न होनेपर भी, पिताके अपमानसे पुत्रका दुखी होना, मैं समझता हूँ, अस्वाभाविक नहीं है।"

बातने विजयाको चोट पहुँचाई; तो भी उसने हँसीभरे मुँहसे ही कहा, "लेकिन, इससे उनकी मान-हानि हुई है, यह गलत धारणा आपके मनमें कैसे पैदा हुई? उन्होंने स्नेहवश समझा, मुझे कष्ट होगा, लेकिन, मैंने उन सज्जनसे कह दिया है कि कष्ट नहीं होगा। केवल इतना ही। इसमें मान-अपमानकी बात तो कुछ भी नहीं है विलासबाबू!"

विलासकी गम्भीरताकी मात्रा इससे रत्तीभर भी कम नहीं हुई, उसने सिर हिला कर उत्तर दिया, "यह बात नहीं है। अच्छा तो है, आप अपने इस्टेटकी जिम्मेदारी खुद लेना चाहती हैं, लीजिए, लेकिन, इसके बाद मुझे पिताजीको सावधान कर देना होगा, नहीं तो पुत्रके कर्तव्यमें त्रुटि होगी।"

इस अचिन्तनीय अप्रिय प्रत्युत्तरको पाकर विजया विस्मयसे अवाक् रह गई और कुछ क्षण स्तब्ध भावसे रुककर अत्यन्त व्यथाके साथ बोली, "विलासबाबू, इस साधारणसे विषयको आप इस रूपमें लेकर इतना भारी बना लेंगे, यह मैंने सोचा भी नहीं था। अच्छा, समझकी भूलसे यदि अन्याय ही कर गई होऊँ तो मैं अपराध स्वीकार करती हूँ, भविष्यत्‌में दुबारा ऐसा नहीं होगा।" यह कहकर

विजयाने विलासके मुँहकी तरफ़ देखकर एक साँस छोड़ी। उसने सोचा था, इसके बाद किसीको कुछ कहना बाकी नहीं रह सकता। दोष स्वीकार करनेके साथ ही उसकी समाप्ति हो जाती है। लेकिन, उसे यह खबर नहीं थी कि दुष्ट घावके समान ऐसे मनुष्य भी होते हैं जिनकी विषैली भूख एक बार किसीकी भी त्रुटिका आसरा पा जानेपर फिर किसी प्रकार निबटना ही नहीं चाहती। इसीलिए, विलासने जब प्रत्युत्तरमें कहा, 'तो फिर पूर्ण गांगुलीसे कहला भेजिए, कि, रासबिहारी बाबूने जो हुक्म दिया है, उसे रद करना आपकी शक्तिके बाहर है,' तब विजयाकी दृष्टिके सामने इस व्यक्तिकी हिंस्र प्रकृति एक क्षणमें ही एकाएक नाच उठी। उसने कुछ क्षण चुपचाप ताकते रहकर धीरेसे कहा, "यह क्या बहुत बड़े अन्यायका काम नहीं होगा? अच्छा, न हो, तो मैं खुद ही चिट्ठी लिखकर उनकी अनुमति ले लेती हूँ।"

विलास बोला, "अब अनुमति लेना न लेना दोनों ही समान हैं। आप यदि उन्हे सारे गाँवमें अश्रद्धा पानेके योग्य ही बना डालना चाहती हैं, तो फिर मुझे भी अत्यन्त अप्रिय कर्तव्यका पालन करना होगा।"

विजयाका अन्तःकरण अकस्मात् क्रोधसे भर उठा, लेकिन उसने आत्म-संयम करके धीर भावसे पूछा, "वह कर्तव्य कौन-सा है सुनूँ?"

विलास बोला, "वे आपकी जमींदारीके काममें अब हाथ न डालें।"

"आपका मना करना वे मानेंगे, आप समझते हैं?"

"कमसे कम प्रयत्न तो मुझे यही करना होगा।"

विजयाने क्षण-भर चुप रहकर दूसरी तरफ देखकर उसी प्रकार जवाब दिया, "बहुत अच्छा, आप जो कर सकें करें, लेकिन, मैं किसीके धर्म-कर्ममें बाधा नहीं डाल सकूँगी।"

कण्ठ-स्वरमें मृदुता होनेपर भी उसके भीतरका क्रोध छिपा नहीं रहा। विलास तीव्र स्वरसे कह उठा, "लेकिन आपके पिता होते तो वे यह बात कहनेका साहस न करते।"

विजया फिर कर खड़ी हो गई, उसने आँखें उठाकर विलासके मुँहकी तरफ़ देखा और कहा, "अपने पिताकी बात आपकी बनिस्बत मैं कहीं ज्यादा जानती हूँ विलासबाबू! लेकिन, यह बात लेकर तर्क करनेसे क्या होगा? मेरे नहानेका समय हो गया, मैं जाती हूँ।" यह कहकर सारे बकवासको जोरसे बन्द करके ज्यों ही वह उठकर खड़ी हुई त्यों ही क्रोधसे पागल विलासके मुँहपरसे उसकी

उधार ली हुई भलमनसाहतका बनावटी चेहरा एक क्षणमें खिसक गया। वह अपना स्वभाव एकदम नङ्गा करके बहुत कटु वाणीसे कह बैठा, "औरतोंकी जात ही ऐसी नमकहराम है।"

विजयाने पैर बढ़ा लिये थे, वह बिजलीके वेगसे लौटकर खड़ी हो गई और पल-भर उस बर्बरके मुँहकी तरफ़ देखकर बिना कुछ बोले धीरेसे कमरेसे बाहर चली गई। यह देखते ही विलास सूख गया।

कोई इस भ्रममें न पड़ जाय कि विलास पितृभक्तिकी अधिकताके कारण विवाद कर रहा था। इन सब लोगोंका स्वभाव ही यह है कि बात चाहे जो हो, और उसका कारण चाहे जितना असगत हो, छेद पानेपर उसे बेमतलब बढ़ा करके दुर्बलको सतानेमें, डरे हुएको और अधिक डर दिखाकर व्याकुल कर देनेमें ही ये आनन्द अनुभव करते हैं।—लेकिन जब तिल भर भी दबे बिना उसे ही तुच्छ बनाकर विजया घृणासे भरकर चली गई, तब इस गले पड़ी कलहकी सारी क्षुद्रताने उसे खुद ही बहुत छोटा बना दिया। वह थोड़ी देर चुप बैठे रहकर और मुँहमें कालिख-सी लगाकर धीरे धीरे चला गया।

तीसरे पहर रासबिहारी लड़केको साथ लेकर मिलने आये। वे बोले, "काम अच्छा नहीं हुआ बेटी। मेरी आज्ञाके विरुद्ध आज्ञा देनेसे मुझे बहुत ज्यादा लज्जित किया गया है। खैर उसे जाने दो, जायदाद जब तुम्हारी है, तब यह बात लेकर मैं ज्यादा खींचतान नहीं करना चाहता। लेकिन, बार बार ऐसा होनेपर तो आत्म-सम्मानकी रक्षाके लिए मुझे अलग होना ही होगा, यह बताये रखता हूँ।"

विजयाने कोई उत्तर नहीं दिया, बल्कि, मौन मुँहसे उसने वह अपराध एक प्रकारसे मान ही लिया। रासबिहारीने तब कोमल होकर जायदादके सम्बन्धकी बात उठाई। नया ताल्लुका खरीदनेकी सलाह ख़त्म करके उन्होंने कहा कि "जगदीशका मकान जब तुमने समाजको ही दान कर दिया है बेटी, तब और देर न करके यह पूजाकी छुट्टी ख़त्म होते ही उसका दखल ले लेना होगा—क्या कहती हो?"

विजयाने सिर झुकाकर कहा, "आप जो ठीक समझेंगे, वही होगा। उनकी रुपये चुकानेकी मियाद खत्म हो गई?"

रासबिहारीने कहा, "बहुत दिन हुए। जगदीशने अपना सारा फुटकर ऋण चुका देनेके लिए तुम्हारे पितासे आठ वर्षके करारसे दस हजार रुपये लेकर रेहननामा लिख दिया था। शर्त यह थी कि इतने दिनोंके भीतर चुका दे सके तो अच्छा ही है; न चुका सके तो उसका बाग-तालाब,—उसकी सारी सम्पत्ति अपनी है। सो,

आठ वर्ष बीतकर यह तो नवाँ वर्ष चल रहा है बेटी।"

विजयाने कुछ क्षण मुँह नीचा किये चुप बैठे रहकर मृदुकण्ठसे कहा, "सुना है, उनके लड़के यहींपर हैं; उन्हें बुलाकर और कुछ दिनोंका समय देकर न देख लिया जाय, शायद वे कोई उपाय कर सकें?"

रासबिहारीने सिर हिलाते हिलाते कहा, "वह कोई उपाय नहीं कर सकता—कर ही नहीं सकता। यदि कर सकता—"

पिताकी बात खत्म ही न हो पाई कि विलास सहसा गरज उठा। अब तक वह किसी प्रकार धीरज रक्खे था, अब न रख सका। कर्कश स्वरसे कह उठा, "कर भी सकता हो तो हम समय क्यों देने लगे? रुपये लेनेके समय क्या उस शराबीको होश नहीं था कि मैं कौन-सी शर्त कर रहा हूँ और चुकाऊँगा कैसे?"

विजयाने एक बार विलासकी तरफ़ और फिर रासबिहारीके मुँहकी तरफ़ देखकर शान्त, दृढ़ स्वरसे कहा, "वे बापूके मित्र थे, उनके सम्बन्धमें वे मुझे सम्मानके सहित बात करनेका आदेश दे गये हैं—"

विलास फिर गरज उठा, "हजार कर जानेपर भी वह एक—"

रासबिहारी बाधा डालकर कह उठे, "तुम चुप रहो न विलास।"

विलासने जवाब दिया, "ये सब फ़िजूलके सेण्टीमेण्ट+ मैं किसी तरह बरदाश्त नहीं कर सकता—इसमें चाहे कोई नाराज हो, या और कुछ करे। मैं सच बात कहनेसे नहीं डरता, सच काम करनेमें भी किसीसे पीछे नहीं रहता।"

रासबिहारी दोनों पक्षोंको ही शान्त करनेके मतलबसे हँसता हुआ-सा मुँह बनाकर बार बार सिर हिलाते हिलाते कहने लगे, "सो तो ठीक है, सो तो ठीक है। हमारे वंशका यह स्वभाव हमसे भी कहाँ छूट सका है! समझीं न बेटी विजया,—मैं और तुम्हारे बापू इसीलिए सारे देशके विरुद्ध होने पर भी सत्य धर्म ग्रहण करते हुए नहीं डरे थे।"

विजयाने कहा, "मरनेके पहले बापू मुझे आदेश दे गये थे कि ऋण चुकानेके लिए मैं उनके बाल्य बन्धुका घर-द्वार न बिकवा डालूँ।" यह कहते कहते ही उसकी आँखें छलछला उठीं। स्नेहमय पिताका जो अनुरोध उनके जीवनके समय एक असङ्गत खयाल जान पड़ा था, उनकी मृत्युके बाद आज वही किसी तरह न टाले जानेवाले आदेशके समान बाधा पहुँचाने लगा।

---

+ [illegible]

विलासने कहा, " तो फिर वे खुद ही वह सब ऋण क्यों नहीं छोड़ गये, बताओ ? "

विजयाने इसका कोई उत्तर दिये बिना रासबिहारीके मुँहकी तरफ देख कर दुबारा कहा, " मेरी इच्छा है कि जगदीश बाबूके पुत्रको बुलवाकर उन्हें सब बातें बता दी जायँ । "

उनके जवाब देनेके पहले ही विलास फिर निर्लज्जके समान बोल उठा, " और वह यदि और भी दस वर्षका समय माँगे ? वह भी देना होगा क्या ? तब तो फिर, जान पड़ता है कि यह समाज-प्रतिष्ठाकी आशा समुद्रके अतल गर्भमें विसर्जित कर देनी होगी । "

विजयाने इसका भी कोई उत्तर दिये बिना रासबिहारीको ही लक्ष्य करके कहा, " आप एक बार उन्हें बुला भेज कर, इस विषयमें उनकी क्या इच्छा है, जान नहीं सकिएगा ? "

रासबिहारी अत्यन्त धूर्त आदमी ठहरे, लड़केके उद्धत आचरणपर मन ही मन नाराज होनेपर भी उन्होंने बाहरसे उसके ही मतको वाजिब प्रमाणित करनेके लिए एक भूमिका रचकर शान्त धीर भावसे कहा, " देखो बेटी, तुम लोगोंके मतान्तरमें तीसरे आदमीका बोलना उचित नहीं है । क्योंकि, किस बातमें तुम लोगोंका हित है, यह आज नहीं तो कल तुम लोग ही स्थिर कर सकोगे । इस बूढ़ेके मतामतकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी । किन्तु, बात जब कहनी है, तब तो यह कहना ही पड़ेगा कि इस मामलेमें तुम्हारी ही भूल हो रही है । जमींदारी चलानेके काममें मुझे भी विलासके सामने हार माननी पड़ती है, यह मैंने अनेक बार देखा है । अच्छा, तुम्हीं बताओ भला, किसकी गरज ज्यादा है, तुम्हारी या जगदीशके लड़केकी ? उसमें ऋण चुकानेकी शक्ति ही यदि होती, तो वह क्या खुद आकर एक बार प्रयत्न न कर देखता ? वह तो जानता है कि तुम आई हो । अब यदि हम ही दुर्बल होकर उसे बुला भेजें, तो वह निश्चय ही बहुत बड़ा समय माँगेगा, लेकिन, उससे नतीजा सिर्फ यह निकलेगा कि वह रुपए भी नहीं दे सकेगा और तुम दोनोंका समाज-स्थापनाका सङ्कल्प भी सदाके लिए डूब जायेगा । बेटी, अच्छी तरह विचार करके देखो, क्या यही ठीक नहीं है ? "

विजया चुप बैठी रही । उसके मनके भावका अनुमान करके बूढ़े रासबिहारीने कुछ क्षणके बाद कहा, " अच्छा तो है, उसके सूनेमें तो कुछ हो नहीं सकेगा । तब खुद यदि वह समय माँगे तो उस समय न हो तो विचार करके देख

लिया जायगा। क्या कहती हो बेटी ?"

विजयाने सिर हिलाकर बताया, "अच्छा।" लेकिन, तिसपर भी उसके मुँहका भाव देखकर साफ मालूम हुआ कि उसने मन ही मन इस प्रस्तावका अनुमोदन नहीं किया है। रासबिहारीने आज विजयाको पहचाना। उन्होंने अच्छी तरह समझ लिया कि इस लड़कीकी उमर कम है, लेकिन, यह जानती है कि अपने पिताकी जायदादकी मैं मालिक है, और इसे मुट्ठीके भीतर लानेमें समय लगेगा। अतएव, एक बात लेकर ही ज्यादा खींच-तान करना वाजिब नहीं है, यह सोचकर शामकी उपासनाका बहाना करके वे उठ बैठे। विजया प्रणाम करके चुपचाप आसन छोड़ कर खड़ी हो गई। वे आशीर्वाद देकर बाहर चले गये। विजयाने पल-भर चुपचाप खड़ी रहकर कहा, "मुझे बहुत-सी चिट्ठियाँ लिखनी हैं,—आपको क्या मेरी कोई आवश्यकता है ?"

विलासने दृढ़भावसे जवाब दिया, "कुछ नहीं। आप जा सकती हैं।"

"आपके लिए चाय लानेको कह दूँ क्या ?"

"नहीं, जरूरत नहीं है।"

"अच्छा, नमस्कार," कहकर विजया एक बार दोनों हाथ जोड़कर ही कमरेसे बाहर चली गई।

## ६

दिघड़ाके स्वर्गीय जगदीश बाबूका मकान सरस्वतीके उस पार था। बगलके गाँवमें होनेपर भी नदी-किनारेके कुछ बाँसके पेड़ोंके कारण बनमाली बाबूके घरकी छतसे वह दिखाई नहीं पड़ता था। उस समय शरद ऋतु बीतनेके साथ साथ छोटी-सी सरस्वतीका वर्षामें बढ़ा पानी भी खत्म होता आ रहा था, और तीरके ऊपरसे किसानोंके आने-जानेकी पगडण्डी भी पैरोंसे सूखकर कड़ी होती जा रही थी। इसी पगडण्डीसे आज शामको विजया बूढ़े दरबान कन्हैयासिंहको साथ लेकर बाहर घूमने निकली थी। उस पारके बबूल, बाँस, खजूर आदि वृक्षोंके पत्तोंकी फाँकसे अस्ताचलमें डूबते हुए सूर्यकी आरक्त-आभा बीच बीचमें उसके मुँहपर आकर पड़ रही थी। अनमनी दृष्टिसे दोनों किनारेके इधर-उधरके दृश्य देखते देखते बराबर उत्तरकी तरफ बढ़ते हुए सहसा वहाँ उसकी आँखें जा लगीं जहाँ नदीमें कुछ बाँस इकट्ठे करके पार उतरनेके लिए पुल बना दिया गया था। उसे अच्छी तरह देखनेके लिए पानीके किनारे आकर

खड़े होते ही विजयाने देखा, कि बहुत थोड़ी दूरपर एक व्यक्ति अत्यत निमग्न होकर मछली पकड़ रहा है। आहट पाते ही उस आदमीने मुँह उठाकर नमस्कार किया। ठीक उसी समय विजयाके मुँहपर सूर्यकी किरणें आकर पड़ीं या नहीं, मालूम नहीं, लेकिन, चार आँखें होते ही उसका गोरा मुँह एकदम मानो रङ्गीन हो गया। जो व्यक्ति मछली पकड़ रहा था वह पूर्णबाबूका वही भानजा था जो उस दिन मामाकी तरफसे उसके पास शिकायत करने गया था। उत्तरमें विजयाके नमस्कार करते ही उसने निकट आकर हँसमुख भावसे कहा, "शामको थोड़ा घूम लेनेके लिए नदीका किनारा जरूर बुरी जगह नहीं है, लेकिन इस समय मलेरियाका डर भी कम नहीं है। इस सम्बन्धमें शायद आपको किसीने सावधान नहीं किया।"

विजयाने सिर हिलाकर कहा, "नहीं," और दूसरे ही क्षण अपनेको सँभाल लेकर मुस्कराते हुए कहा, "लेकिन, मलेरिया तो आदमीको पहचान कर नहीं पकड़ता। मैं तो बल्कि बिना जाने आई हूँ, पर आप तो जान-बूझकर पानीके किनारे बैठे हैं! देखूँ तो कौन-सी मछली पकड़ी है?"

व्यक्तिने हँसकर कहा, "कोतरी मछली। लेकिन, दो घण्टेमें सिर्फ दो ही पा सका। मज़दूरीका परता नहीं बैठा। लेकिन, क्या करूँ बताइए; आपके ही समान मुझे भी प्रायः परदेशी ही कहना चाहिए। बाहर बाहर दिन कटे हैं, लगभग किसीसे उतनी जान-पहचान भी नहीं है।—लेकिन शाम तो जैसे भी हो काटनी ही पड़ती है।"

विजयाने गर्दन हिलाकर हँसते हुए कहा, "मेरी भी लगभग वही दशा है। आपका मकान शायद पूर्णबाबूके मकानके नजदीक ही है?"

व्यक्तिने कहा, "नहीं।" और फिर हाथसे नदीके उस पार दिखाकर कहा, "मेरा मकान वह दिघड़ामें है। इसी बाँसके पुलपरसे जाते हैं।"

गाँवका नाम सुनकर विजयाने पूछा, "तब तो जान पड़ता है, जगदीशबाबूके लड़के नरेन्द्रबाबूको आप पहचानते हैं?"

उस व्यक्तिके सिर हिलाते ही विजया अत्यन्त कुतूहलसे सहसा प्रश्न कर बैठी, "वे किस प्रकारके आदमी हैं, आप बता सकते हैं?"

लेकिन, मुँहसे निकलते ही वह अपने इस अशिष्ट प्रश्नके कारण अत्यन्त लज्जित हो उठी। विजयाकी लज्जाका भाव उस व्यक्तिकी दृष्टिसे छिपा नहीं रह सका। उसने हँसकर कहा, "उसका मकान तो आपने ऋणकी अदायगीमें खरीद

लिया है, अब उसके सम्बन्धमें पता लगानेसे क्या फल होगा? लेकिन, उसे जिस सदुद्देशसे लिया है, वह इस प्रान्तके सब लोगोंने सुन लिया है।"

विजयाने पूछा, "एकदम लिया जा चुका? शायद इस तरफ़ यही बात फैल गई है!"

वह बोला, "फैलनेकी बात ही है। जगदीशबाबूकी सारी जायदाद आपके पिताके पास रहननामेमें बन्धक थी। उसके लड़केकी शक्ति नहीं है कि उतने रुपए चुकाये, मियाद भी ख़त्म हो गई है,—यह तो सभी जानते हैं।"

"मकान कैसा है?"

"बुरा नहीं है, अच्छा बड़ा मकान है। जिस उद्देशसे ले रही हैं, उसके लिए अच्छा ही होगा। चलिए न, और थोड़ा बढ़ते ही दिखाई पड़ जाएगा।"

विजयाने चलते चलते कहा, "आप जब गाँवके आदमी हैं, तब जरूर सब जानते हैं। अच्छा, सुना है, नरेन्द्रबाबू विलायतसे नामवरीके साथ डाक्टरी पास करके आये हैं। किसी अच्छी जगह प्रैक्टिस शुरू करके और भी कुछ मियाद लेकर क्या पिताका ऋण नहीं चुका सकेंगे?"

व्यक्तिने गर्दन हिलाकर कहा, "सम्भव नहीं है। सुना है, शायद उसका प्रैक्टिस करनेका इरादा भी नहीं है।"

विजयाने विस्मित होकर कहा, "तब उनका सङ्कल्प आखिर क्या है? इतना खर्च-पात करके विलायत जाकर कष्ट उठाकर डाक्टरी सीखनेका फल आख़िर क्या होगा? जान पड़ता है, किसी कामके आदमी नहीं हैं।"

भले आदमीने थोड़ा हँसकर कहा, "असम्भव नहीं है। तो भी सुना है शायद नरेन्द्रबाबू खुद इलाज करके रोग मिटानेकी बनिस्बत कोई आविष्कार कर जाना अधिक पसन्द करते हैं, जिससे बहुत ज्यादा लोगोंका उपकार होगा। मैंने सुना है, वे तरह तरहके यन्त्र लेकर दिन-रात खूब मेहनत किया करते हैं।"

विजयाने चकित होकर कहा, "यह तो बहुत बड़ी बात है। लेकिन, घर-द्वार चले जानेपर कैसे करेंगे? ऐसी दशामें तो उन्हें रोज़गार करना चाहिए। अच्छा, आप यह तो जरूर बता सकेंगे, विलायत जानेके कारण क्या यहाँके लोगोंने उन्हें समाजसे बाहर कर दिया है?"

भले आदमीने कहा, "सो तो जरूर कर दिया है। मेरे मामा पूर्णबाबू उनके भी एक प्रकारसे आत्मीय हैं, पर उन्होंने भी पूजाके दिनोंमें उन्हें मकानपर बुलानेका साहस नहीं किया। लेकिन इससे उनका कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है।

अपने काम काजमें लगे रहते हैं, समय पानेपर चित्र आँकते हैं,—मकानसे बाहर निकलते ही नहीं। देखिए, वह है उनका मकान।" कहकर उसने अँगुलीसे वृक्ष-लताओंसे घिरी एक भारी कोठी दिखा दी।

इसी समय बूढ़े दरबारने पीछेसे टूटी-फूटी बङ्गालीमें बताया कि हम बहुत दूर निकल आये हैं, मकान पहुँचते पहुँचते शाम हो जायेगी।

व्यक्तिने फिरकर खड़े होकर कहा, "हाँ, बात करते करते बहुत दूर आ गये हैं।"

उसे उसी बाँसके पुलपरसे गाँवमें जाना था, इसलिए लौटते समय वह भी साथ साथ आने लगा। विजयाने मन ही मन न जाने क्या सोच कर कहा, "तो बताइए, उन्हें किसी आत्मीय कुटुम्बीके घरमें भी आसरा पानेका भरोसा नहीं है?"

व्यक्तिने कहा, "बिलकुल नहीं।"

विजयाने और थोड़ी देर चुपचाप चलकर कहा, "वे किसीके भी पास नहीं जाना चाहते, यह बात ठीक है। नहीं तो, इस महीनेके आखिरमे ही तो उन्हें मकान छोड़ देनेका नोटिस दिया गया है। और कोई होता तो आखिर हम लोगोंसे एक बार मिलनेका प्रयत्न अवश्य करता।"

व्यक्तिने कहा, "शायद उन्हें जरूरत नहीं है, या फिर सोचते होंगे कि फायदा क्या है। आप तो अब सचमुच ही उन्हे मकानमें रहने दे नहीं सकेंगीं।"

विजयाने कहा, "न दे सकने पर भी और कुछ दिन तो ठहरने दिया जा सकता है। हजार कर्ज अदा करना हो, फिर भी, एक आदमीको घर द्वारहीन करनेमें सबको कष्ट होता है। लेकिन, आपकी बातचीतके भावसे जान पड़ता है उनसे आपकी पहचान है। कहिए सच है न?"

व्यक्ति केवल हँसा, उसने और कोई बात नहीं कही। वे लोग पुलके पास ही पहुँचे थे कि उसने अपनी छोटी *डँगनी उठाकर कहा, यही हमारे गाँवको जानेका रास्ता है। और फिर हाथ उठाकर नमस्कार करके बाँससे बने उस पुलपरसे हिलते डुलते किसी प्रकार पार होकर वह सँकरे जगली मार्गके भीतर अदृश्य हो गया।

बहुत दिनोंके बूढ़े नौकर कन्हैयासिंहने विजयाको बचपनमे गोदमे खिलाकर बड़ा किया था और उसीके साथ वह दरबानीके न्यायोचित अधिकारको भी बहुत दूर पार कर गया था। उसने नज़दीक आकर पूछा, "ये बाबू कौन हैं बिटिया?"

---

* मछली पकड़नेकी बन्सी।

लेकिन विजया इतनी अनमनी हो गई थी कि बूढ़ेका प्रश्न उसके कानोंतक पहुँचा ही नहीं। उस अँधेरे नदी तटकी सारी नीरव मधुरताकी सोलहों आने उपेक्षा करके वह सपनेमें विभोर-सी केवल यह बात सोचते सोचते ही राह चलती रही,— कौन है यह, और अब कब इससे भेंट होगी?

७

रासबिहारी बोले, "हमने ही नोटिस दिया है, और हम ही यदि उसे रद करने जायँ, तो दूसरी रैयतको वह कैसा दिखेगा, एक बार सोच तो देखो बेटी?"

विजयाने कहा, "इसी आशयकी एक चिठ्ठी लिखकर उनके पास भेज क्यों नहीं देते? मुझे निश्चय जान पड़ता है, वे केवल अपमानके भयसे ही यहाँ आनेका साहस नहीं करते हैं।"

रासबिहारीने पूछा, "अपमान काहेका?"

विजया बोली, "जरूर उन्होंने सोचा है कि उनकी विनती हम लोग मजूर नहीं करेंगे।"

रासबिहारीने उपहासके भावसे कहा, "महामानी आदमी जान पड़ता है। इसी लिए, क्या अपमान सिरपर लादकर हम लोगोंको खुद याचना करके उसे रहने देना होगा?"

विजयाने कातर होकर कहा, "उसमें भी दोष नहीं है काकाजी! अयाचित दया करनेमें कोई लज्जा नहीं है।"

रासबिहारीने कहा, "अच्छा, लज्जा न सही; लेकिन हम लोगोंने समाज-स्थापनाका जो सङ्कल्प किया है, उसका क्या होगा, यह तो बताओ?"

विजया बोली, "उसका कोई दूसरा प्रबन्ध भी हम लोग कर सकते हैं।"

रासबिहारी मन ही मन बहुत बिगड़कर बाहरसे कुछ हँसते हुए बोले, "तुम्हारे पिता काफी रुपए रख गये हैं, तुम दूसरा इन्तजाम भी कर सकती हो, यह मैं समझा, लेकिन, यह बात तो मुझे समझा दो बेटी कि जिसे आजतक कभी तुमने आँखोंसे भी नहीं देखा है, हमारा सबका अनुरोध टालकर उसके लिए ही आखिर तुम्हें इतना दर्द क्यों है? भगवान्‌की करुणासे तुम्हारी और भी रैयत है, और भी दस आसामी हैं, उन सबके लिए भी क्या तुम यह प्रबन्ध कर सकोगी? कर सकनेमें ही उससे मगल होगा, पहले यह जवाब तो मुझे दे दो विजया?"

विजयाने कहा, "आपको तो बताया, यह बापूका आखिरी अनुरोध है। इसके

सिवा मैंने सुना है—"

"क्या सुना है?"

उपहास किये जानेके डरसे चिकित्साके सम्बन्धमें उसके तत्त्वानुसन्धान या आविष्कारकी बात विजयाने नहीं कही, वह इतना ही बोली, "मैंने सुना है, वे बहिष्कृत हैं। गृह-हीन कर देनेपर आत्मीय-कुटुम्बी किसीके भी मकानमें उनके आश्रय पानेका रास्ता नहीं रह जायेगा। इसके सिवा, 'गृह-हीन' शब्दका भाव मनमें लाते ही मुझे बहुत कष्ट होता है काकाजी।"

रासबिहारी अपना कण्ठस्वर करुणासे गद्गद करके बोले, "तुम्हे इतनी उम्रमें यदि इतना कष्ट होता है, तो मेरी इस उम्रमें मुझे वह कितना अधिक हो सकता है, थोड़ा सोचो तो सही! और अपने लम्बे जीवनमें क्या मैं पहले पहल इसी अप्रिय कर्तव्यके सामने खड़ा हुआ हूँ विजया? नहीं, ऐसा नहीं है। कर्तव्य सदैव हमारे सामने कर्तव्य है। उसके सामने हृदयकी वृत्तिकी कोई शिकायत नहीं चल सकती। बनमाली जिस कठोर जिम्मेदारीका भार मुझपर रख गये हैं, वह मुझे जीवनके आखिरी क्षण तक उठाना ही होगा, उसमें चाहे जितना दुःख कष्ट क्यों न भोग करना पड़े। या तो तुम मुझे सारी जिम्मेदारियोंसे पूरी मुक्ति दे दो, नहीं तो मैं किसी प्रकार भी तुम्हारा यह असङ्गत अनुरोध न मान सकूँगा।"

विजया नीचा मुँह किये चुपचाप बैठी रही। पिताके अपराधपर उसके निरपराध पुत्रको गृह-हीन करनेका सङ्कल्प उसके हृदयमें जो व्यथा पहुँचाने लगा, उम्रका अनुपात लगाकर यह बूढ़ा उससे अठगुनी वेदना सहकर भी कर्तव्य-पालनमें कमर कसे हुए है, यह बात वह अपने मनमें ठीक तौरसे ग्रहण नहीं कर सकी,—बल्कि,—यह मानो सिर्फ एक निरुपाय हतभाग्यपर प्रबलकी एकान्त हृदयहीन निष्ठुरताके समान ही उसे लग उठा। लेकिन, जोर देकर अपनी इच्छाको चलानेका साहस भी उसमें नहीं था। साथ ही, यह भी उससे छिपा नहीं रहा कि गँवई-गाँवमें समारोहके साथ ब्राह्म-मन्दिर-स्थापनाकी ख्याति पानेकी ऊँची आकाक्षासे ही वृद्ध पिताके पीछे खड़ा होकर विलासबिहारी यह जिद और जबर्दस्ती कर रहा है।

रासबिहारी और कुछ नहीं बोले। विजयाने भी कुछ क्षण चुप बैठे रह कर यद्यपि मौन सम्मति दे दी, लेकिन, भीतर उसका परदुःख-कातर स्नेह-कोमल नारी-चित्त इस बूढ़ेके प्रति अश्रद्धा और उसके लड़केके प्रति घृणासे भर उठा।

रासबिहारी कारबारी आदमी ठहरे, यह बात उन्हें अविदित नहीं थी कि, जो मालिक है, उसे तर्कके समय सोलह आने हराकर भी अदायगीके समय उससे आठ आनेसे अधिक वसूल नहीं करना चाहिए, क्योंकि, वह पावना अन्त तक पक्का नहीं होता। अतएव उदारता दिखानेके द्वारा लाभवान् होनेका यदि कोई समय होता है, तो वह यही है। विजयाके मुँहकी ओर देखकर और थोड़ा-सा हँसकर उन्होंने कहा, "बेटी, तुम्हारी चीज है, तुम दान करोगी तो मैं विरोध क्यों करूँगा? मैंने सिर्फ यही दिखाना चाहा था कि, विलासने जो करना चाहा था, वह स्वार्थके कारण भी नहीं था और नाराज़ीके कारण भी नहीं, केवल कर्तव्य मानकर ही उसने यह करना चाहा था। एक दिन मेरी जायदाद, और तुम्हारे पिताकी जायदाद—सब एक होकर ही तुम दोनोंके हाथमें आयेगी, उस दिन बुद्धि देनेके लिए इस बूढ़े-को भी नहीं खोज पाओगी। उस दिन तुम दोनोंके मतोंमें भेद न हो, उस दिन तुम अपने स्वामीके हर एक कामको ठीक जानकर श्रद्धा कर सको—केवल यही मैंने चाहा है। नहीं तो, दान करना, दया करना वह भी जानता है, मैं भी जानता हूँ। लेकिन तुम्हारे सामने मुझे केवल यही प्रमाणित करना था कि वह दान अपात्रको देनेसे किसी प्रकार काम नहीं चलेगा। अब समझीं बेटी, क्यों हम लोग जगदीशके लड़केपर रत्तीभर भी दया नहीं करना चाहते और क्यों वह दया एकदम असम्भव है?"

यह कहकर वृद्ध स्नेहके साथ हँसते हुए विजयाके मुँहकी तरफ देखते रहे। इन परम सारगर्भित और युक्तियुक्त उपदेशोंके विरुद्ध तर्क नहीं चल सकता था, इसलिए विजया चुपचाप ही बैठी रही। रासबिहारीने फिर कहा, "अब समझीं बेटी विजया, विलास लड़का होनेपर भी कितनी दूर तक भविष्यत् सोचकर काम करता है! अभी मैंने तुमसे कहा था कि मैंने इस काममें ही बाल पकाये हैं, लेकिन जमींदारीके काममें उसकी चाल समझनेके लिए मुझे भी बीच बीचमें स्तम्भित होकर रह जाना पड़ता है।"

विजयाने केवल गर्दन हिलाकर अनुमोदन किया, वह बोली नहीं।

"साढ़े चार बज गये," कहकर रासबिहारी लाठी हाथमें लेकर उठ खड़े हुए और बोले, "इस समाज प्रतिष्ठाकी चिन्तासे विलास कितना उद्ग्रीव हो रहा है, इसे मुँहसे नहीं बताया जा सकता। उसका ध्यान-ज्ञान सब इस समय यही हो गया है। अब ईश्वरके चरणोंमें मेरी यही प्रार्थना है कि, वह शुभ दिन मैं आँखोंसे देखकर मर सकूँ।" कहकर उन्होंने दोनो हाथ जोड़कर ब्रह्मके उद्देश्यसे

बार बार नमस्कार किया। दरवाजेके पास आकर वे सहसा खड़े होकर कह उठे, "छोकरा एक बार मेरे पास आता तो जैसे भी होता कुछ विचार करनेका यत्न करता; लेकिन, वह भी तो कभी—बड़ा हतभागा है, बड़ा हतभागा है! देख रहा हूँ कि बापका स्वभाव एकदम सोलहों कलाओंमें उसने पाया है।" कहते कहते वे बाहर निकल गये।

वहीं एक भावसे बैठी हुई विजया न जाने क्या क्या सोचने लगी। अकस्मात् बाहरकी ओर नजर पड़ते ही उसने देखा कि दिन ढलता आ रहा है। तब नदी किनारेकी अस्वास्थ्यकर हवाने उसे जोरसे खींचकर मानो आसनसे उठा दिया और आज भी वह वृद्ध दरबानजीको लेकर वायु-सेवनके बहाने बाहर निकल पड़ी।

ठीक उसी जगह बैठकर आज भी वह व्यक्ति मछली पकड़ रहा था। बहुत दूरसे यह देख लेनेपर भी नजदीक आकर मानो देख ही न सकी हो, इस तरह विजया चली जा रही थी कि सहसा कन्हैयासिंह पीछेसे पुकार उठा, "सलाम बाबूजी, शिकार मिला?"

बात विजयाके कानोंमें जाते ही उनकी जड़तक लाल हो उठीं। जो लोग समझते हैं, यथार्थ बन्धुत्व होनेके लिए अनेक दिन चाहिए और बहुत-सी बातचीत होनी चाहिए उन्हें याद दिला देना जरूरी है, कि नहीं, यह बहुत जरूरी नहीं है। विजयाके फिर कर खड़े होते ही व्यक्ति डॅगनी रखकर पास आकर नमस्कार करके खड़ा हो गया, और हँसते हुए बोला, "हाँ, देशके प्रति आपका सच्चा आकर्षण है। यहाँ तक कि मैं देखता हूँ, उसके मलेरिया तकको अपनाये बिना आपका काम नहीं चलेगा।"

विजयाने हँसमुख होकर पूछा, "आप अपना चुके हैं जान पड़ता है? लेकिन, देखनेसे तो ऐसा नहीं जान पड़ता।"

व्यक्तिने कहा, "डाक्टरको थोड़ा धीरज रखकर अपनाना होता है। ऐसी छीन झपट—"

बात समाप्त होनेके पहले ही विजयाने प्रश्न किया, "आप डाक्टर हैं शायद?"

व्यक्ति अप्रतिभ हो जानेके कारण सहसा उत्तर नहीं दे सका। लेकिन, दूसरे ही क्षण अपनेको सँभाल लेकर उसने हँसी करनेकी भङ्गीसे कहा, "यही समझना चाहिए। एक बड़े भारी डाक्टरके पड़ोसी हैं न हम लोग! सबको दे-लेकर तब तो हमारी बारी आयेगी—ठीक है न?"

विजयाने उसी क्षण कोई बात नहीं कही, पर क्षण-भर चुप रहनेके बाद कहा,

"केवल पड़ोसी नहीं, वे आपके एक मित्र भी हैं, यह मैंने अनुमान किया था। मेरी बातें उनसे कह दी हैं क्या?"

व्यक्तिने हँसकर कहा, "आप उन्हें एक अपदार्थ, अभागा समझती हैं,—यह तो पुरानी बात है,—सभी समझते हैं। इन बातोंको फिर नये रूपसे कहनेकी क्या जरूरत है? तो भी, एक दिन वह शायद आपसे मिलने आयेगा।"

विजयाने मन ही मन अत्यन्त लज्जित होकर कहा, "मुझसे मिलनेसे उन्हें लाभ क्या है? लेकिन उनके सम्बन्धमें तो मैंने ऐसी बातें आपसे कहीं नहीं?"

"अवश्य नहीं कहीं, लेकिन कहना ही तो उचित था।"

"उचित क्यों था?"

"जिसका घर-द्वार बिक जाता है, उसे सब ही अभागा कहते हैं। हम भी कहते हैं। सामने चाहे न कह सकें, पीछे तो कह सकते हैं?"

विजया हँसने लगी, उसने कहा, "आप तो तब उनके बड़े अच्छे मित्र हैं!"

व्यक्तिने गर्दन हिलाकर कहा, "यह ठीक है। यहाँ तक कि उसकी तरफसे मैं खुद ही आपको पकड़ता, यदि मैं न जानता कि आप अच्छे उद्देश्यसे ही उसका मकान ले रही हैं।"

विजयाने केवल एक बार मुँह उठाकर देखा, किन्तु इस सम्बन्धमें कोई बात नहीं कही।

बात करते करते आज ये लोग कुछ और ज्यादा दूरतक बढ़ गये थे। देखा कि उस पार लोगोंका एक दल कतार बाँधकर नरेन्द्रबाबूके मकानकी तरफ़ चला जा रहा है। उसमें पचाससे लेकर पन्द्रह तक सब ही उम्रके लोग थे। व्यक्तिने दिखाकर कहा, "ये लोग कहाँ जा रहे हैं, जानती हैं?—नरेन्द्रबाबूके स्कूलमें पढ़ने।"

विजयाने आश्चर्यमें पड़कर पूछा, "वे यह रोजगार भी करते हैं क्या? लेकिन, जहाँ तक समझ रही हूँ, बिना पैसेके ही—क्यों, ठीक है न?"

व्यक्तिने हँसमुख होकर कहा, "उसे आपने ठीक पहचाना है। अपदार्थ व्यक्तिके मनकी बात कहीं भी छिप नहीं पाती।" फिर पहलेकी अपेक्षा गम्भीर होकर कहा, "नरेन्द्र कहता है कि हमारे देशमें सच्चे किसान नहीं हैं। किसानी करना पेशा हैं, इसीलिए लोग समय-असमय दो बार हल चलाकर बीज छिटक देते हैं और मुँह बाये आकाशकी तरफ ताकते बैठे रहते हैं। इसको खेती करना नहीं कहते, लाटरी डालना कहते हैं। किस जमीनमें कब खाद दी जाती है, खाद किसे कहते हैं, किसे सच्ची खेती कहते हैं,—यह सब वे नहीं जानते। विलायतमें

रहकर डाक्टरी पढ़नेके साथ ही यह विद्या भी वह सीख आया है। अच्छा, एक दिन उसका स्कूल देखने जाइएगा?—मैदानके बीच पेड़के नीचे बाप-बेटा-बाबा सब मिलकर जहाँ पाठशालामें बैठते हैं वहाँ?"

विजया उसी क्षण जानेके लिए उद्यत हो गई, लेकिन, दूसरे ही क्षण कुतूहल दबाकर बोली, "नहीं, अभी रहने दीजिए।" फिर पूछा, "इतने बड़े मकानके रहते वे पेड़के नीचे पाठशाला क्यों लगाते हैं?"

व्यक्तिने कहा, "यह सब शिक्षा तो केवल मुँहसे बताकर, पुस्तक मुखाग्र कराके दी नहीं जा सकती। खुद उनके हाथसे खेती करवाकर दिखाना पड़ता है कि यह काम ठीक रीतिसे सीख कर करनेसे दुगुनी,—यहाँ तक कि पाँच-सात गुनी भी फसल मिल सकती है। उसके लिए मैदानकी जरूरत है, खेतोंकी जरूरत है, सिर ठोककर बादलोंकी तरफ ताककर हाथपर हाथ रक्खे बैठे रहनेकी जरूरत नहीं है। अब समझीं, क्यों उसकी पाठशाला पेड़के नीचे लगती है? यदि आप एक बार उसके स्कूलके मैदानकी खेती देखें तो आपकी आँखें ठण्डी हो जायेंगी, यह मैं विश्वास दिलाकर कह सकता हूँ। इस समय भी तो वक्त है,—आज ही चलिए न,—वह तो दिखाई पड़ रही है।"

विजयाके मुँहका भाव क्रमशः गम्भीर और कठिन होता आ रहा था; उसने कहा, "नहीं, आज रहने दीजिए।"

व्यक्तिने सहज ही कहा, "तो रहने दीजिए। चलिए, आपको थोड़ा आगे तक पहुँचा आऊँ—" यह कहकर वह साथ साथ चलने लगा। पाँच-छः मिनट तक विजयाने एक भी बात नहीं कही। भीतर ही भीतर उसे न जाने कैसी शर्म सी मालूम हो रही थी और शर्मका कारण भी वह सोच नहीं पाती थी। व्यक्तिने दुबारा बात की, कहा, "आप धर्मके लिए ही जब उसका मकान ले रही हैं, तब, यह कुछ बीघे जमीन, जो अच्छे काममें ही लग रही है, आप सुगमतासे छोड़ दे सकती हैं।" कहकर वह मृदु मृदु हँसने लगा।

लेकिन प्रत्युत्तरमें विजयाने गम्भीर होकर कहा, "यह अनुरोध करनेके लिए उनकी तरफसे आपको कोई अधिकार मिला है?" और कनखियोंसे ताक कर देखा, कि व्यक्तिके हँसीभरे मुँहमे कोई फर्क नहीं पड़ा है।

वह बोला, "यह अधिकार देनेपर निर्भर नहीं करता, लेनेपर निर्भर करता है। जो अच्छा काम है, उसका अधिकार मनुष्य साथ साथ ही भगवानसे पाता है, उसे किसीके सामने हाथ फैलाकर नहीं लेना पड़ता। जिस अनुग्रहकी प्रार्थना करनेके

कारण आप मन ही मन विरक्त हो गई, उसे पानेपर कौन पाता, जानती हैं? देशके अन्नहीन किसान। हमारे शास्त्रमें लिखा है, दरिद्र भगवान्की एक विशेष मूर्ति हैं। उनकी सेवाका अधिकार सभीको है। वह अधिकार मैं नरेन्द्रसे माँगने क्यों जाऊँगा, बताइए?" कहकर वह हँसने लगा।

विजया चलते चलते बोली, "किन्तु आपके मित्र तो केवल इसीलिए यहाँ बैठे नहीं रह सकेंगे?"

व्यक्तिने कहा, "नहीं। लेकिन वे सम्भवतः मेरे ऊपर यह भार रखकर जा सकते हैं।"

विजयाके ओठोंमें एक दबी हुई हँसी खेल गई, परन्तु वह अत्यन्त गम्भीर स्वरसे बोली, "यह अनुमान मैंने किया था।"

व्यक्तिने कहा, "करनेकी ही बात है। ये सब काम पहले देशके जमींदारोंके थे। उन्हें ब्रह्मोत्तर जमीन* देनी पड़ती थी। अब वह जिम्मेदारी जरूर नहीं रही है, लेकिन उसका असर अभी मिटा नहीं है, इसीलिए दो चार बीघा किसीके ठग लेनेका यत्न करते ही वे पूर्व संस्कारके कारण जान लेते हैं।" कहकर वह फिर हँसने लगा।

विजयाने खुद भी इस हँसीमें साथ देना चाहा, लेकिन वह दे नहीं सकी। यह सरल हँसी उसके हृदयमें कहीं जाकर मानों बिंधी रह गई। उसने कुछ क्षण चुपचाप चलकर अकस्मात् पूछा, "आप खुद भी तो अपने मित्रको आश्रय दे सकते हैं?"

"पर, मैं तो यहाँ रहता नहीं। जान पड़ता है, एक हफ्तेके बाद ही चला जाऊँगा।"

विजया हृदयमें चौंक-सी उठी, उसने कहा, "परन्तु, मकान जब यहाँ है, तब बार बार आना-जाना जरूर ही होगा?"

व्यक्तिने सिर हिलाकर कहा, "नहीं, जान पड़ता है अब मुझे आना नहीं पड़ेगा।"

विजयाका हृदय उथल-पथल होने लगा। उसने मन ही मन समझ लिया, इस सम्बन्धमें बेमतलब प्रश्न करना किसी प्रकार उचित नहीं होगा; लेकिन वह किसी प्रकार अपना कुतूहल दबा नहीं सकी। उसने धीरे धीरे कहा, "यहाँ घरके लोगोंका भार सँभालनेवाले लोग आपके जरूर ही होंगे, लेकिन—"

व्यक्तिने हँसकर कहा, "नहीं, इस प्रकारका आदमी कोई नहीं है।"

"तो फिर आपके पिता-माता—"

---

* दानकी जमीन।

"मेरे पिता माता भाई-बहन कोई नहीं है,—यह लीजिए, हम लोग आपके मकानके सामने आ पहुँचे। नमस्कार, मैं चला—" कहते हुए वह रुककर खड़ा हो गया।

विजया फिर उसके मुँहकी तरफ देख नहीं सकी; किन्तु, मृदुकण्ठसे बोली, "भीतर नहीं आइएगा?"

"नहीं, लौटकर जानेमें मुझे अँधेरा हो जायेगा। नमस्कार।"

विजयाने हाथ उठाकर नमस्कार करते हुए अत्यन्त सङ्कोचके साथ धीरे धीरे कहा, "आप अपने मित्रसे एक बार रासबिहारी बाबूके पास जानेको नहीं कह सकेंगे?"

व्यक्ति विस्मित होकर बोला, "उनके पास क्यों?"

"वे ही पिताजीकी सब ज़मीन-जायदाद देखते हैं न।"

"यह मैं जानता हूँ। लेकिन, उनके पास जानेके लिए क्यों कह रही हैं?"

विजया इस प्रश्नका और कोई उत्तर नहीं दे सकी। व्यक्तिने क्षण-भर स्थिर भावसे खड़े रहकर, जान पड़ता है, राह देखी। बादको कहा, "मुझे लौटनेमें रात हो जायगी,—मैं जाऊँ," और वह तेजीसे पैर बढ़ाता हुआ चला गया।

## ८

विजयाके मकानसे लगे हुए उद्यानका इस तरफका अंश बहुत बड़ा है। बड़े बड़े आम-कटहल आदिके पेड़ोंके नीचे उस समय अँधेरा घना होता आ रहा था। बूढ़े दरवानने कहा, "बिटिया, कुछ घूमकर सदर रास्तेसे जाना ठीक होता!"

विजयाके मनकी अवस्था इन सब बातोंकी तरफ ध्यान देने योग्य नहीं थी। वह केवल 'न' कहकर तुरन्त अँधेरे बगीचेके ही भीतरसे मकानके तरफ बढ़ गई। जिन दो बातोंने उसके मनको सबसे ज्यादा घेर रक्खा था उनमेंसे एक यह थी कि इतनी बातचीत होनेपर भी उस व्यक्तिका नामतक नहीं जाना जा सका, क्योंकि स्त्रीके लिए किसीका नाम पूछना भद्रता या शिष्टतासे विरुद्ध है। दूसरी यह कि, दो दिनके बाद वे कहाँ चले जायेंगे, यह प्रश्न सौ बार मुँहतक आ जानेपर भी हर बार केवल शर्मके कारण बाहर न निकल सका। उनके सम्बन्धमें एक बातने आरम्भसे ही विजयाकी दृष्टि आकर्षित की थी कि वे जो भी हों, खूब पढ़े लिखे हैं। और गँवई-गाँवमें जन्म लेनेपर भी एक अनात्मीय भद्र महिलासे बिना सकोच

बात करनेकी शिक्षा और अभ्यास उन्हें है। ब्राह्म-समाजके अन्तर्गत न होनेपर भी यह शिक्षा उन्होंने किस प्रकार कहाँ पाई, यह सोचते हुए मकानमें पैर रखते ही परेशकी माने आकर बताया कि बहुत देरसे विलास बाबू बाहरकी बैठकमें रास्ता देख रहे हैं। सुनते ही उसका मन थकान और विरक्तिसे भर उठा। यह वही व्यक्ति है जो अभी उस दिन नाराज़ होकर चला गया था और फिर नहीं आया, लेकिन, आज चाहे जिस कारणसे भी आया हो, इस समय जिस व्यक्तिके विचारोंसे उसका हृदय परिपूर्ण हो रहा था उसके सम्बन्धमें अधिक कुछ न जानते हुए भी वह दोनोंके बीच अकस्मात् आकाश-पातालका भेद किये बिना न रह सकी। उसने थके गलेसे पूछा, "क्या उन्हें बता दिया गया है परेशकी अम्मा, कि मैं घर आ गई हूँ?"

परेशकी माने कहा, "नहीं दीदी, मैं अभी परेशको खबर देनेके लिए भेजे देती हूँ।"

"वे चाय पियेंगे कि नहीं, पूछा गया था?"

"अरे, पूछा क्यों नहीं गया? उन्होंने कहा था कि तुम्हारे लौट आनेपर एक साथ पियेंगे।"

विलासबाबू ही इस घरके होनहार मालिक हैं, यह बात आत्मीय परिजन किसीसे भी छिपी नहीं थी और उसी हिसाबसे उनके आदर-सत्कारमें भी त्रुटि नहीं होती थी। विजया और कोई बात कहे बिना ऊपर अपने कमरेमें चली गई। कोई बीस मिनट बाद उसने नीचे आकर खुले दरवाजेके बाहरसे देखा कि विलास टेबुलपर झुका हुआ कुछ कागज़पत्र देख रहा है। उसके पैरोंकी आहट सुनते ही वह मुँह उठाकर, साधारण-सा नमस्कार करके, एकदम गम्भीर हो उठा। बोला, "तुमने जरूर सोचा होगा, कि मैं नाराज़ होकर इतने दिन नहीं आया। नाराज यद्यपि मैं नहीं हुआ, लेकिन यदि होता भी तो वह मेरी तरफसे जरा भी अनुचित न होता, इस बातको आज मैं तुम्हारे सामने प्रमाणित कर दूँगा।"

विलास अब तक विजयाको 'आप' कहकर पुकारता था। आजके इस आकस्मिक 'तुम' सम्बोधनका कोई कारण समझ न पानेपर भी विजया आनन्दसे उच्छ्वसित नहीं हो सकी, उसका मुँह देखकर यह अनुमान करना कठिन नहीं था। लेकिन वह कोई बात कहे बिना ही धीरे धीरे कमरेमें आकर एक कुर्सी खींचकर बैठ गई। विलासने उस तरफ़ पलक तक उठाये बिना कहा, "मैं सब

ठीक-ठाक करके अभी अभी कलकत्तेसे आ रहा हूँ, अभी तक पिताजीसे भी भेंट नहीं कर सका हूँ। तुम तो मजेसे चुप बैठी रह सकती हो, लेकिन मैं तो नहीं रह सकता। मुझे अपनी जिम्मेदारीका ज्ञान है,—एक भारी काम सिरपर लेकर मैं किसी तरह स्थिर नहीं बैठ सकता। अपने ब्राह्म-मन्दिरकी प्रतिष्ठा इन बड़े दिनोंकी छुट्टियोंमें ही होगी। सब तय कर आया, यहाँ तक कि न्योता देना तक बाकी रख कर नहीं आया। आः—कल सबेरेसे मुझे कितने चक्कर काटने पड़े हैं। खैर। उस तरफसे तो एक प्रकारसे निश्चिन्त हो गया। कौन कौन आयेंगे, यह भी इस कागजमें लिख लाया हूँ, एक बार पढ़ देखो।" कह कर विलास आत्म-सन्तोषकी भारी साँस छोड़ता हुआ सामनेका कागज विजयाकी तरफ सरकाकर कुर्सीसे झुककर बैठ गया।

फिर भी विजयाने बात नहीं की,—निमन्त्रितोंके सम्बन्धमें लेश-मात्र भी कुतूहल नहीं दिखाया। जैसी बैठी थी वैसी ही बैठी रही। इतनी देरके बाद रासबिहारीने विजयाकी चुप्पीके सम्बन्धमें सचेत होकर कहा, "मामला क्या है? चुप क्यों हो?"

विजयाने धीरेसे कहा, "मैं सोच रही हूँ कि आप जिन जिनको निमन्त्रण दे आये हैं, अब उन लोगोंसे क्या कहा जायगा?"

"इसका मतलब?"

"मन्दिर-प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें मैं अबतक भी कुछ तय नहीं कर पाई हूँ।"

विलास तनकर सीधा बैठ गया और कुछ क्षण तीव्र दृष्टिसे देखते रहकर बोला, "इसका मतलब क्या है? क्या तुमने सोचा है कि इन छुट्टियोंमें न कर सकनेपर प्रतिष्ठा फिर जल्दी हो सकेगी? वे लोग कोई तुम्हारी रैयत नहीं हैं जो तुम्हें जब सुभीता होगा, तभी आकर हाजिर हो जायेंगे! आखिर अभी तक कुछ तय न कर पानेका मतलब क्या है?"

क्रोधसे उसकी दोनों आँखें मानो जल उठीं। विजया नीचा मुँह किये बहुत देर चुप बैठी रही, फिर धीरेसे बोली, "मैंने सोचकर देख लिया, यहाँ यह सब धूमधाम करनेकी जरूरत नहीं है।"

विलास दोनों आँखें फाड़कर बोला, "धूमधाम! मैंने तो नहीं कहा कि धूमधाम करनी होगी! बल्कि, जो स्वभावतः ही शान्त-गम्भीर है, उसका काम निःशब्द पूरा करनेका ज्ञान मुझे है। तुम्हें उसके लिए चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी।"

विजयाने उसी प्रकार मृदु कण्ठसे कहा, "यहाँ ब्राह्म मन्दिर स्थापित करनेकी

कोई सार्थकता नहीं है। यह काम नहीं होगा।"

विलास पहले इस प्रकार स्तम्भित हो गया कि उसके मुँहसे सहसा बात नहीं निकली। बादको उसने कहा, "मैं जानना चाहता हूँ कि तुम यथार्थ ब्राह्म महिला हो या नहीं?"

विजयाने मानो गहरी चोटसे चौंककर मुँह उठाकर देखा, किन्तु पलक मारते ही अपनेको संयत करके इतना ही कहा, "आप जब घरसे शान्त होकर लौटिएगा तब बातें हो लेंगी। इस समय रहने दीजिए।" यह कहकर वह उठना ही चाहती थी कि देखा, नौकर चायका सामान लिए कमरेमें आ रहा है। वह फिर बैठ गई। विलासने उस तरफ आँख उठाकर भी नहीं देखा। ब्राह्म समाजी होकर भी उसने अपना व्यवहार सुसयत और शिष्ट रखना नहीं सीखा था। वह नौकरके सामने ही उद्धततासे कह उठा, "हम लोग तुम्हारा सम्बन्ध एकदम छोड़ दे सकते हैं, जानती हो?"

विजया चुपचाप चाय बनाती रही, उसने कोई उत्तर नहीं दिया। नौकरके चले जानेपर धीरेसे बोली, "इसकी चर्चा मैं काकाजीके साथ करूँगी, आपके साथ नहीं।" कह कर उसने एक कप चाय उसकी तरफ बढ़ा दी।

विलास उसे छुए बिना ही उसी बातको दुहरा कर बोला, "सम्बन्ध त्याग कर देनेसे क्या होगा, जानती हो?"

विजया बोली, "नहीं। लेकिन, चाहे जो क्यों न हो, आपको जिम्मेदारीका ज्ञान जब इतना ज्यादा है, तब, मेरी अनिच्छासे जिन लोगोंको आपने न्योता देकर अपमानित करनेकी जिम्मेदारी ली है, उसका भार खुद ही सँभालिए, मुझसे हिस्सा बँटानेका अनुरोध मत कीजिए।"

विलासने दोनों आँखें चमकाकर ज़ोरसे कहा, "मैं काम-काजी आदमी हूँ, कामसे ही प्रेम करता हूँ, खेलसे नहीं। यह याद रक्खो विजया।"

विजयाने स्वाभाविक शान्त स्वरसे जवाब दिया, "अच्छा, यह मैं नहीं भूलूँगी।"

इस बातमें जो व्यंग्य था, उसने विलास-विहारीको एकदम पागल कर दिया। वह करीब करीब चीख कर कह उठा, "अच्छा, जिससे न भूल सको, वही मैं करूँगा।"

विजयाने इसका जवाब नहीं दिया, मुँह नीचा करके वह चायके बर्तनमें चम्मच डुबाकर हिलाने लगी। उसे चुप देखकर विलासने खुद भी थोड़ी देर चुप रहकर अपनेको कुछ संयत करके प्रश्न किया, "अच्छा, इतना बड़ा मकान,

तब किस काम आयेगा बताओ? वह तो यों ही डाल नहीं रक्खा जायेगा?"

इस बार विजयाने मुँह उठाकर देखा और अविचलित दृढ़तासे कहा, "नहीं। लेकिन, वह मकान आखिर लेना ही होगा, यह तो अभी तक तय नहीं हुआ है?"

जवाब सुनकर विलास क्रोधसे अपने आपको भूल गया। जमीनपर जोरसे पैर मार कर उसने दुबारा चिल्लाकर कहा, "तय हो चुका है, एक सौ बार तय हो चुका है। मैं समाजके प्रतिष्ठित व्यक्तियोंको बुलाकर उनका अपमान नहीं कर सकता। यह मकान हमें चाहिए ही। तुम्हें आज मैं बताये जा रहा हूँ कि यह मैं करके ही छोड़ूँगा।" यह कहकर उत्तरकी राह तक देखे बिना वह तेज़ीसे कमरेसे बाहर निकल गया।

## ९

उस दिनसे विजयाके मनमें यह आशा हर क्षण तृष्णाके समान जगती रहती थी कि वे अपरिचित व्यक्ति आखिर एक बार भी तो अपने मित्र-को लेकर अनुरोध करने आयेंगे। उन दोनोंमें जितनी बातें हुई थीं वे सबकी सब उसके हृदयमें ग्रथित हो गई थीं, उनका एक शब्द तक वह भूली नहीं थी। उन सबको उसने मन ही मन दिन-रात अनुशीलन करके देखा था कि, वास्तवमें उसने ऐसा एक भी शब्द नहीं कहा है जिससे यह विश्वास उनके मनमें पैदा हो सके कि मुझसे आशा करनेको उनके मित्रके लिए अब एकदम कुछ भी नहीं रहा है। बल्कि उसे अच्छी तरह याद आ रहा है कि यह चर्चा उसने की थी कि नरेन्द्र मेरे पिताके लड़के हैं, और, मियाद मिल जानेपर ऋण चुकाने योग्य शक्ति-बल उनमें है या नहीं, यह भी पूछा था, तब फिर जिसका सर्वस्व छिना जा रहा है उसको इतनेपर भी क्या कोई प्रयत्न न करना चाहिए? जहाँ कोई भरोसा ही नहीं रहता वहाँ भी तो आत्मीय बन्धुगण एकबार प्रयत्न करके देखनेको कहते हैं। तब क्या उनका यह मित्र एकदम जगसे न्यारा है?

नदी किनारेके मार्गमें उससे फिर कभी भेंट नहीं हुई। लेकिन, वह सबेरेसे शाम तक प्रतिदिन यही आशा करती थी कि एक न एक बार वे जरूर आयेंगे। लेकिन, दिन बीत चले, न वे आये, न उनके अद्भुत डाक्टर आये।

वृद्ध रासबिहारीसे भेंट होनेपर उन्होंने इस बातका आभास तक न आने दिया कि इस बीच लड़केसे उनकी कोई बात भी हुई है। बल्कि, इशारेसे वे यही भाव व्यक्त करने लगे, कि सङ्कल्प एक प्रकारसे निश्चित ही हो गया है और इस बातको लेकर

अब किसी प्रकारका सोच-विचार उठ सकता है, इसकी मानो वे कल्पना भी नहीं कर सकते। विजया सङ्कोचके कारण खुद भी चर्चा न उठा सकी। अगहन बीत गया और पूसके ठीक पहले दिन पिता-पुत्रने एक साथ दर्शन दिये। रासबिहारीने कहा, " बेटी, अब तो अधिक दिन नहीं हैं, इतने ही समयमें सब तैयारी कर लेनी होगी। "

विजयाने सचमुच कुछ विस्मित होकर कहा," उनके खुद अपनी इच्छासे चले गये बिना तो कुछ भी नहीं हो सकता? "

विलासबिहारी मुँह बनाकर थोड़ा-सा हँसा। उसके पिताने कहा," किसकी बात कहती हो बेटी, जगदीशके लड़केकी? उसने तो कल मकान छोड़ दिया है। "

सवादने सचमुच ही विजयाके अन्तस्तल तक पहुँचकर चोट पहुँचाई। वह उसी क्षण विलासके मुँहकी ओरसे इस प्रकार फिर कर खड़ी हो गई जिससे वह किसी प्रकार उसका मुँह न देख सके। इस प्रकार क्षण-भर स्तब्ध होकर, चोटको सँभालकर धीरे धीरे उसने रासबिहारीसे पूछा, " उनकी चीज़-वस्तुएँ क्या हुई? सब ले गये? "

विलास पीछेसे हँसीकी भङ्गिमासे बोला, " चीज़ एक तीन पैरोंकी खटिया भर थी। उसीपर, जान पड़ता है, उनका शयन होता था। मैंने उसे बाहर पेड़के नीचे खींचकर डाल दिया है। उनका मन हो तो ले जा सकते हैं, हमें कोई आपत्ति नहीं है। "

विजया चुप ही रही, परन्तु, उसके मुँहपर वेदनाका सुस्पष्ट चिह्न देखकर रासबिहारीने तिरस्कारके स्वरमें कहा, " यह तुम्हारा दोष है विलास! मनुष्य कैसा भी अपराधी हो, भगवान् उसे कितना ही दण्ड दें, उसके दुःखसे हमें दुःखित होना चाहिए, समवेदना प्रकाशित करना चाहिए। मैं यह नहीं कहता कि तुम हृदयके भीतर उसके लिए कष्ट नहीं पा रहे हो, लेकिन, उसे बाहर भी प्रकाशित करना कर्तव्य है। जगदीशके लड़केसे तुम्हारी भेंट हुई थी क्या? उससे एक बार मुझसे मिल लेनेको क्यों नहीं कहा? देखता, यदि कुछ—"

पिताकी बात पूरी भी नहीं हो पाई कि लड़का उनके इशारेकी जरा भी परवा किये बिना मुँहसे एक प्रकारकी घृणासूचक आवाज करके बोल उठा, " उनसे मिलकर निमन्त्रण देनेके सिवा मुझे तो शायद और कोई काम ही नहीं था बापू! तुम क्या कहते हो, इसका कोई ठिकाना ही नहीं। इसके सिवा डाक्टर साहब तो मेरे पहुँचनेके पहले ही अपने ट्रङ्क-सन्दूक, यन्त्र आदि सँभालकर जा

चुके थे। विलायतका डाक्टर! निकम्मा हम्बग कहींका!" कहकर वह और भी न जाने क्या सब कहने जा रहा था, परन्तु, रासबिहारीने विजयाके मुँहकी तरफ आड़से देखकर क्रुद्ध कण्ठसे कहा, "नहीं विलास, तुम्हारी इस तरहकी बातें मैं क्षमा नहीं कर सकता। अपने व्यवहारके लिए तुम्हें लज्जित होना चाहिए—पश्चात्ताप करना चाहिए।"

परन्तु विलासने लेश-भर भी लज्जित या अनुतप्त हुए बिना जवाब दिया, "किसलिए, बताइए? मुझे दूसरेके दुःखसे दुःखी होने,—दूसरेका कष्ट मिटानेकी शिक्षा काफी मिली है, परन्तु, जो दम्भी घरपर आकर अपमान कर जाय, उसे मै माफ नहीं कर सकता। इतना पाखण्ड मुझमें नहीं है।"

उसका जवाब सुनकर दोनों आश्चर्यमें पड़ गये। रासबिहारीने कहा, "आखिर कौन घरपर आकर तुम्हारा अपमान कर गया? किसकी बात तुम कह रहे हो?"

विलासने बनावटी गम्भीरतासे कहा, "जगदीश बाबूके सपूत नरेन्द्र बाबूकी ही बात कह रहा हूँ बापू। वह एक दिन ठीक इसी कमरेमें बैठकर मेरा अपमान कर गया है। उस समय उसको पहचानता नहीं था, इसीसे—(विजयाकी ओर इशारा करके) उसने तो इनका भी अपमान कर जानेमें कसर नहीं रक्खी थी—तुम्हें मालूम है वह बात?"

विजयाके चकित होकर मुँह फिराकर देखते ही विलास उससे ही बोल उठा, "पूर्ण बाबूका भानजा बनकर जो तुम्हारा तक अपमान कर गया था, वह कौन है? उस समय तो उसको बहुत प्रश्रय दिया! वही नरेन्द्रबाबू हैं। उस समय अपना असली परिचय देनेका साहस यदि वह करता तो मैं जानता कि मर्द है। बेहया पाखडी कहींका!"

दोनोंने विस्मयसे देखा, विजयाका सारा मुँह क्षण-भरमें वेदनासे एकदम सूख कर मलिन हो गया है।

## १०

बड़े दिनोकी छुट्टीमें अब विलम्ब नहीं है, इसलिए जगदीशके मकानका बड़ा हाल मन्दिरके लिए और दूसरे सब कमरे कलकत्तेके मान्य अतिथियोंके लिए सजाये जा रहे हैं। खुद विलासबिहारी उनकी देख-भाल कर रहे हैं। साधारण निमन्त्रितोंकी सख्या भी कम नहीं है। जो लोग विलासके ही मित्र हैं, स्थिर किया गया कि, वे रासबिहारीके मकानमें और शेष व्यक्ति विजयाके

मकानमें ठहरेंगे। महिलायें जो आयेंगी वे भी यहीं ठहरेंगी। प्रबन्ध भी ऐसा ही किया गया था।

उस दिन सबेरे विजयाने नहानेके बाद नीचेकी बैठकके कमरेमें घुसते ही देखा, परेशकी माका परेश एक हाथसे ओलीमेंसे मुड़ि* निकाल निकाल कर चबा रहा है और दूसरे हाथसे रस्सीसे बँधी एक बछियाके गलेमें हाथ सहलाता हुआ अनिर्वचनीय तृप्तिका भोग कर रहा है। बछिया भी आरामसे आँखें मूँदे गला ऊँचा किये लड़केकी सेवा ग्रहण कर रही है।

यह कहना कठिन है कि इन दो विजातीय जीवोंकी सहृदयताके साथ उसके मनकी पुञ्जीभूत वेदनाका क्या सयोग था, परन्तु, देखते देखते अनजानेमें ही उसकी दोनों आँखें आँसुओंसे भीग गईं। इस मकानमें यही लड़का उसका सबसे बड़ा अनुगत था। उसने अपनी आँखें पोंछकर और उसे पास बुलाकर स्नेह और कौतुकके साथ कहा, "हाँ रे परेश, तेरी माँने क्या तुझे यही धोती ले दी है! छिः—यह भी क्या कोई किनार है रे!"

परेशने गरदन टेढ़ी करके छिपी कनखियोंसे देखकर अपनी किनारके साथ विजयाकी साड़ीकी बढ़िया चौड़ी किनारका मन ही मन मिलान कर लिया और तब वह अत्यन्त क्षुब्ध हो उठा। उसका भाव समझकर विजयाने अपनी किनार दिखाकर कहा, "ऐसी ही न हुई तो क्या तुझे अच्छी लगेगी? क्या कहता है रे?"

परेशने उसी क्षण अनुमोदन करके कहा, "अम्मा कुछ भी तो खरीदना नहीं जानतीं।"

विजयाने कहा, "मैं लेकिन तुझे ऐसी ही एक धोती खरीद दे सकती हूँ यदि तू—"

लेकिन 'यदि'से परेशको मतलब नहीं था। उसने लज्जायुक्त हँसीसे मुँहको कानों तक फैलाकर प्रश्न किया, "कब ले दोगी?"

"ले दूँगी, जो तू मेरी एक बात सुने।"

"कौन-सी बात?"

विजयाने कुछ सोच कर कहा, "पर, तेरी मा या और कोई सुन लेगा तो तुझे पहनने नहीं देगा।"

इस सम्बन्धमें परेशके मनकी हालत किसी प्रकारकी बाधा ग्रहण करने योग्य

---

* धान उबाल कर जलती रेतमें भूँजकर बनाया हुआ चबेना; मुरमुरा।

नहीं थी। उसने गरदन हिलाकर कहा, "अम्मा जानेंगी कैसे? तुम बोलो न, मैं अभी सुनूँगा।"

विजयाने पूछा, "दिघड़ा गाँव जानता है?"

परेश हाथ उठा कर बोला, "वह तो रहा। कोशेकी तितलयाँ खोजने कई बार तो दिघड़ा गया हूँ।

विजयाने प्रश्न किया, "वहाँ सबसे बड़ा किसका मकान है, तू जानता है?"

परेश बोला, "बाम्हनोंका ही तो। अभी पर साल ही ताड़ी पीकर वे छतसे कूद पड़े थे। वहीं तो गोविन्दकी मुड़की-बताशेकी दूकान है, और वह उनकी दालान है। गोविन्द क्या कहता है, जानती हो माजी? कहता है, सब चीज़ें मँहगी हैं, एक धेलेमें अब अढाई गण्डा बताशे नहीं मिलेंगे, सिर्फ दो गण्डा मिल सकेंगे। पर तुम जो एक साथ एक पैसेके मँगाओ माजी, तो मैं साढ़े पाँच गण्डे ला दे सकता हूँ।"

विजयाने कहा, "तू दो पैसेके बताशे खरीद ले आ सकेगा?"

परेश बोला, "हूँ, एक हाथमें एक पैसेके साढ़े पाँच गण्डा गिन लूँगा और बोलूँगा, दूकानदार, इस हाथमें और साढ़े पाँच गडा गिन दे। गिन देगा, तब कहूँगा, माजीने कहा है दो रूँकनमें दे। तब दोनों पैसे हाथमें दूँगा, न?"

विजयाने हँसकर कहा, "हाँ, तब पैसे देना। और साथ ही दूकानदारसे पूछ लेना, उस बड़े घरमें जो नरेन्द्र बाबू रहते थे, वे कहाँ गये? कहना कि जिस मकानमें वे रहते हैं, वह मुझे पहचनवा दे सकते हो दूकानदार? क्यों रे, पूछ लेगा न?"

परेशने माथा हिलाते हिलाते कहा, "अच्छा, पैसा दो तुम। मैं दौड़कर अभी लिये आता हूँ।"

"और मैं जो पूछनेको बोली हूँ?"

परेश बोला, "सो भी पूछ लूँगा।"

"बताशे हाथमें पाकर भूल तो नहीं जायेगा?"

परेश हाथ बढ़ाकर बोला, "तुम पैसा पहले दो न, मैं दौड़ जाऊँ।"

"और तेरी मा जो पूछे, परेश, कहाँ गया था? तो क्या बोलेगा?"

परेशने अत्यन्त बुद्धिमानके समान हँसकर कहा, "सो मैं खूब बोल सकूँगा। बताशेका दोना इस प्रकार ओलीमें छिपाकर कहूँगा, माजीने भेजा था, वहाँ बाम्हनोंके यहाँ नरेन्द्रबाबूका पता लगाने।—तुम दो न जल्दी पैसा।"

विजया हँस पड़ी और बोली, " तू कैसा पगला लड़का है रे परेश ! मासे कहीं झूठी बात कही जाती है ? पूछनेपर यही कह देना कि बताशे मोल लेने गया था। लेकिन देख, दुकानदारसे वह बात पूछकर आनेकी बात न भूल जाना। नहीं तो धोती नहीं पायेगा, सो बताये दे रही हूँ।"

" अच्छा," कहकर परेशके पैसा लेकर तेजीसे चले जानेपर विजया उसी ओर शून्य दृष्टिसे देखती हुई चुप खड़ी रही। जिस संवादको जाननेके कुतूहलमें बिन्दु-भर भी अस्वाभाविकता नहीं है, जिसे वह किसी आदमीको भेजकर बहुत दिन पहले ही मजेसे जान सकती थी, वही क्यों आज उसके निकट इतने बड़े सङ्कोचका विषय बन गया है ? एक बार गहराईसे सोचनेपर इस लुकाचोरीकी लज्जासे आज वह खुद ही मर जाती। परन्तु, लज्जा सम्भवतः उसकी चिन्ताकी धारामें अनजाने ही मिलकर एकाकार हो गई थी, इसीलिए उसे अलग करके देखनेकी दृष्टि किसी भी समय उसकी आँखोंमें थी, यह आज उसे स्मरण ही नहीं हुआ।

विजयाको कई चिट्ठियाँ लिखनी थीं। समय काटनेके लिए वह टेबुलके पास कागज-कलम लेकर बैठ गई। परन्तु, बातें ऐसी अस्त व्यस्त असम्बद्ध होकर मनमें आने लगीं कि चिट्ठीके बहुतसे कागज फाड़कर फेंक देने पड़े और आखिर उसे कलम रख देनी पड़ी। परेश भी दिखाई नहीं पड़ा। मनकी चञ्चलता और न दबा सकनेके कारण विजया छतपर चढ़कर उसकी राह देखने लगी। बहुत देरमें दिखाई पड़ा कि वह जल्दी जल्दी नदीके रास्तेसे आ रहा है। विजया काँपते पैरों और शङ्कासे भरे हृदयसे नीचे उतर कर ज्यों ही बाहरके कमरेमें पहुँची त्यों ही लड़का बताशेका दोना ओलीमें छिपाये चोरके समान दबे पैर रखता हुआ आया और बोला, " दो पैसेके बारह गण्डा लाया हूँ माजी।"

विजयाने भयके साथ कहा, " और दूकानदार क्या बोला ? "

परेश फुसफुस करके बोला, " उसने पैसेमें छै गण्डेकी बात किसीको बतानेको मना कर दिया है। वह बोलता क्या था जानती हो माजी ?—"

विजयाने रोक कर कहा, " और उन बाम्हनोंके यहाँके नरेन्द्रबाबूकी बात—"

परेशने कहा, " वह वहाँ नहीं हैं, कहीं चले गये हैं। गोविन्द कहता क्या था, जानती हो माजी ? बारह गण्डा—"

विजयाने अत्यन्त विरक्त होकर रूखे स्वरमें कहा, " ले जा अपने बारह गण्डा बताशे मेरी आँखोंके सामनेसे ! " यह कहकर वह वहाँसे हट गई और खिड़कीके

सींकचे पकड़कर बाहरकी ओर देखती हुई खड़ी रही ।

इस अचिन्तनीय रूखेपनके कारण लड़केका मुँह निकल आया । वह इतनी जल्दी गया और आया, ग्यारह गण्डेकी जगह उसने कितने कौशलसे बारह गण्डेका सौदा किया, तो भी माजीको प्रसन्न न कर सका, यह सोचकर उसके क्षोभकी सीमा नहीं रही । उसने दोनों हाथोंमें दोने लिये हुए मलिन मुँहसे कहा, " इससे ज्यादा तो उसने दिये नहीं माजी । "

विजयाने इसका जवाब नहीं दिया, परन्तु, उस ओर देखे बिना भी वह लड़केकी अवस्थाका अनुभव कर रही थी । इसीलिए क्षण-भर बाद सदय कण्ठसे उसने कहा, " जा परेश, ये सब तू खा ले । "

परेशने डरते हुए पूछा, " सब ? "

विजयाने मुँह फिराये बिना ही कहा, "हाँ सब । मुझे इनकी जरूरत नहीं है ।"

परेशने समझा, यह क्रोधकी बात है । कुछ क्षण चुप खड़े रहनेपर धोतीकी बात याद आते ही और भी एक बात उसे स्मरण हो आई । उसने धीरे धीरे कहा, " भट्टाचार्जजीसे पूछ आऊँ माजी ! "

"कौन भट्टाचार्जजी ! क्या पूछ आयेगा ?" उत्सुक कण्ठसे यह प्रश्न करते करते ही विजया मुँह फिराकर रुक गई । मुँहकी बात उसके मुँहमें ही रह गई, बाहर नहीं निकली । क्योंकि बरामदेके ठीक सामने ही नरेन्द्र दिखाई पड़ गया और दूसरे ही क्षण उसने कमरेमें पैर रख कर हाथ उठाकर विजयाको नमस्कार किया ।

परेश बोला, "—कि कहाँ गये हैं नरेन्द्र बाबू—"

विजयाने प्रति नमस्कारका भी अवसर नहीं पाया, निदारुण लज्जासे सारा मुँह लाल करके वह अत्यन्त व्यग्र होकर बोल उठी, "अच्छा जा, जा, और पूछनेकी जरूरत नहीं है । "

परेशने समझा, यह भी नाराजीकी बात है । दुखी स्वरसे उसने कहा, " काने भट्टाचार्जजी तो उनके बगलके ही मकानमें रहते हैं माजी । गोविन्द दूकानदारने कहा—"

विजयाने सूखी हँसी हँस कर कहा, " आइए बैठिए । " फिर परेशकी तरफ देखकर वह बोल उठी, " तू अब जा न परेश । जरा-सी तो बात है, सो न हो और किसी दिन पूछ आना । इस समय जा । "

परेशके चले जानेपर नरेन्द्रने पूछा, " आप नरेन्द्र बाबूकी खबर जानना चाहती हैं ? वे कहाँ हैं, यही न ? "

यदि अस्वीकार कर सकती तो विजया बच जाती, लेकिन, उसे झूठ बोलनेका अभ्यास नहीं था। वह किसी प्रकार भीतरकी लज्जा दबा कर बोली, "हाँ। सो किसी और दिन जाननेसे भी चल जायगा।"

नरेन्द्रने पूछा, "क्यों? कोई जरूरत है?"

प्रश्न उसके कानोंमें ठीक उपहास-सा सुनाई पड़ा। उसने कहा, "जरूरतके बिना क्या कोई किसीकी खबर नहीं जानना चाहता?"

"कोई क्या करता है क्या नहीं करता, सो छोड़ दीजिए। परन्तु उससे तो आपका सब सम्बन्ध ख़त्म हो गया है, तब फिर क्यों उसका पता लगा रही हैं? —कर्ज क्या सब चुका नहीं है?"

विजयाके मुँहपर क्लेशका चिह्न दिखाई पड़ा, परन्तु, उसने कोई उत्तर नहीं दिया। नरेन्द्र खुद भी अपने भीतरका उद्वेग पूरी तरह छिपा नहीं सका। दुबारा उसने कहा, "यदि और भी कुछ कर्ज़ निकला हो, तो भी, मैं जहाँ तक जानता हूँ, उसके ऐसा कुछ और नहीं है जिससे वह बाकी कर्ज़ चुका सके। इसलिए अब उसका पता लगाना—"

"किसने आपसे कहा कि मैं कर्ज़के लिए ही उनका पता लगा रही हूँ?"

"इसके अतिरिक्त और क्या मतलब हो सकता है, मैं तो नहीं सोच पाता। वह भी आपको नहीं पहचानता और आप भी उसको नहीं पहचानतीं।"

"वे मुझको पहचानते हैं और मैं भी उनको पहचानती हूँ।"

नरेन्द्र हँसा। उसने कहा, "वह आपको पहचानता है, यह बात सच है, परन्तु, आप उसे नहीं पहचानतीं। मान लीजिए, मैं ही यदि कहूँ कि मेरा नाम नरेन्द्र है, तो—"

विजयाने गरदन हिलाकर कहा, "तो मैं विश्वास करती हूँ और कहती हूँ, यह सच बात बहुत दिन पहले ही आपके मुखसे निकल चुकनी चाहिए थी।"

फूँक मारकर रोशनी बुतानेपर कमरेकी सूरत जिस प्रकार बदल जाती है, विजयाके प्रत्युत्तरसे पलक मारते ही नरेन्द्रका मुँह उसी प्रकार मलिन हो गया। विजयाने उसे ही लक्ष्य करके फिरसे कहा, "अन्य परिचय देकर अपनी आलोचना सुनना और छुककर आड़मेंसे सुनना, दोनों ही काम क्या आपको एकसे नहीं लगते? मुझे तो लगते हैं। पर चूँकि हम लोग ब्राह्म हैं, इसलिए चाहे जो कहिए।"

नरेन्द्रका मलिन मुँह इस बार एकदम काला हो उठा। वह थोड़ी देर मौन रहकर बोला, "आपके साथ अनेक प्रकारकी आलोचनाओंके साथ मेरी भी

आलोचना जरूर हुई थी, परन्तु उसमें मेरा बुरा अभिप्राय तो कुछ भी नहीं था। आखिरी दिन परिचय दूँगा यह भी मैंने सोचा था, परन्तु दे नहीं सका; इससे आपको कोई नुकसान हुआ है क्या ?"

यह प्रश्न पहले ही कर बैठनेपर इस ओरसे भी उत्तर देना अवश्य कठिन होता, परन्तु, जो आलोचना एक बार शुरू हो जाती है वह अपनी झोंकमें अनेक कठिन स्थान अपने आप पार कर जाती है, इसीलिए विजया सहज ही जवाब दे सकी। उसने कहा, "नुकसान एक व्यक्तिका तो कितने ही प्रकारका हो सकता है। और यदि हुआ भी हो, तो वह तो हो ही गया है, अब आप उसका कुछ उपाय कर नहीं सकेंगे। इसलिए वह बात जाने दीजिए, पर आपके निजके सम्बन्धमें कोई बात जानना चाहूँ तो क्या—"

"नाराज होऊँगा ?—नहीं।" कहते ही उसी क्षण प्रशान्त निर्मल हँसीसे उसका सारा मुँह उज्ज्वल हो उठा। इतने दिन इतनी बातचीत होनेपर भी इस व्यक्तिका जो परिचय विजयाने नहीं पाया, इस एक क्षणकी हँसी ही वह परिचय दे गई। मालूम हुआ कि इसका समस्त अन्तर-बाह्य एकदम स्फटिकके समान स्वच्छ है। जिस व्यक्तिने सर्वस्व ले लिया है, इसके सम्मुख भी उसकी 'नहीं,' नहीं ही है, और ठीक इसीलिए जान पड़ता है कि वह उसके मुँहकी तरफ आँख उठाकर और प्रश्न नहीं कर सकी, उसने गरदन नीची करके पूछा, "इस समय आप रहते कहाँ है ?"

नरेन्द्र बोला, "मेरी दूरके सम्बन्धकी एक बुआ इस समय भी जीवित हैं, उनके ही मकानमें रहता हूँ।"

"आपके सम्बन्धमें जो सामाजिक झगड़ा झञ्झट है, सो क्या उस गाँवके लोग नहीं जानते ?"

"जानते क्यों नहीं हैं।"

"तब ?"

नरेन्द्र थोड़ा-सा सोचकर बोला, "मैं जिस कमरेमें रहता हूँ, उसे ठीक 'मकानके भीतर' नहीं जा कहा सकता, और शायद मेरी अवस्था सुनकर भी मामूली कुछ दिनोंके लिए उनके लड़के आपत्ति नहीं करते। तो भी यह ठीक है कि ज्यादा दिन ठहरकर उन्हें परेशान करनेसे काम नहीं चलेगा।" कहकर वह थोड़ा-सा रुका। फिर बोला, "अच्छा, सच तो बताइए आप यह सब पता क्यों लगा रही थीं ? पिताजीका और भी कुछ कर्ज निकल आया है ? यही न ?"

उत्तर देनेके लिए ही, जान पड़ता है, विजयाने उसके मुँहकी तरफ़ देखा। परन्तु, सहसा हॉ—ना, कोई भी बात उसके गलेसे बाहर नहीं निकली।

नरेन्द्रने कहा, "पिताका ऋण कौन नहीं चुका देना चाहता, परन्तु, आपसे सच कह रहा हूँ, अपने नामसे या पराये नामसे ऐसा कुछ भी मेरे पास नहीं है जिसे बेचकर दे सकूँ। केवल एक माइक्रोसकोप है, उसे भी जब बेचूँगा तब कहीं बरमा जानेका खर्च जुट सकेगा। बुआकी अवस्था भी खराब है,—यहाँ तक कि वहाँ खाना-पीना तक—" कहकर ही वह हठात् रुक गया।

विजयाकी ऑखोंमें ऑसू आ पड़े, उसने गरदन फिरा ली।

नरेन्द्र बोला, "आप यदि दया करें, तो मैं पिताजीका ऋण अपने नाम लिख दे सकता हूँ। उसे भविष्यमें चुका देनेके लिए प्राणपणसे यत्न करूँगा। आप रासबिहारी बाबूसे जरा-सा कह दीजिएगा तो फिर वे इस मामलेको लेकर इस समय मुझे ज्यादा तङ्ग न करेंगे।"

परेशने आकर दरवाजेके बाहरसे कहा, "माजी, अम्मा कह रही हैं, समय तो बहुत हो गया है, महाराजसे भात परोसनेको कह दें?"

सामनेकी घड़ीकी तरफ़ देखकर नरेन्द्र चौंककर खड़ा हो गया, वह लज्जित होकर बोला, "अरे बारह बज गये! आपको बहुत कष्ट हुआ।"

विजयाने ऑखोंके आँसू छिपा लिये थे, उसने कहा, "आप किस लिए आये थे, सो तो बताया ही नहीं?"

नरेन्द्र जल्दीसे बोला, "उसे जाने दीजिए।" कहकर उसके जानेका उपक्रम करते ही विजयाने पूछा, "आपकी बुआका मकान यहाँसे कितनी दूर है? इस समय वहीं तो जायँगे?"

नरेन्द्रने कहा, "हाँ। दूर तो थोड़ा है ही,—लगभग दो कोस।"

विजया अवाक् होकर बोली, "इस धूपमें अब दो कोस पैदल जाइएगा? जाते जाते ही तीन बज जायेंगे—"

"सो बजने दीजिए, सो बजने दीजिए, नमस्कार!"

कहकर नरेन्द्रके पैर बढ़ाते ही विजया जल्दीसे दरवाजेके सामने आकर खड़ी हो गई; और बोली, "आज मेरा एक अनुरोध आपको मानना होगा। इस समय बिना खाये आप किसी भी तरह नहीं जा सकते।"

नरेन्द्र अत्यन्त विस्मित होकर बोला, "खाकर जाऊँगा? यहाँ?"

"क्यों, उससे क्या आपकी भी जात चली जायेगी?"

प्रत्युत्तरमें पुनः वैसी ही प्रशान्त हँसीसे उसका मुँह आलोकित हो उठा, उसने कहा, "नहीं, दुनियामें अब वह डर मुझे नहीं रहा है। इसके अतिरिक्त भगवान् मुझपर आज बहुत प्रसन्न हैं, नहीं तो, इस समय जानेपर वहाँ क्या नसीब होता सो मैं जानता हूँ।"

"तब जरा-सा बैठिए, मैं अभी आती हूँ," कहकर उसकी तरफ देखे बिना ही वह कमरेसे निकल कर चली गई।

## ११

भोजन प्रायः समाप्त होने आया, नरेन्द्रने फिर वही बात कही। कहा, "इतने समयतक स्वय उपवास करके मुझे सामने बैठाल कर खिलानेकी कोई जरूरत नहीं थी। किसी देशमें यह चलन नहीं है।"

विजयाने हँसमुख होकर जवाब दिया, "पिताजी कहते थे, उस देशका बड़ा दुर्भाग्य है जिस देशकी नारियाँ स्वयं बिना खाये पुरुषोंको नहीं खिला पातीं, जहाँ साथ बैठकर खाना पड़ता है। मैं भी ठीक वही कहती हूँ।"

नरेन्द्रने कहा, "सो क्यों कहती हैं? दूसरे देशकी बात, न हो, छोड़ ही दी जाय, परन्तु, अपने देशमें भी तो मैंने बहुतेरोंके घर खाया है, उनमें भी तो यह प्रथा चलते देखी है।"

विजयाने कहा, "विलायती प्रथा जिन्होंने सीखी है, उनके मकानमें शायद यह चलती हो, परन्तु सबके नहीं। आप खुद उस देशमें बहुत दिन रहे इसीसे आप भूल करते हैं। नहीं तो हम पुरुषोंके सामने निकलती हैं, जरूरत पड़नेपर बातें भी करती हैं, फिर भी बिलकुल मेमसाहब नहीं बन गई हैं, और उनकी चाल भी नहीं चलती हैं।"

नरेन्द्रने कहा, "न चलती हों, पर चलना तो उचित है। जिसमें जो अच्छी बात हो, उससे वह तो ले लेनी चाहिए।"

विजया बोली, "कौन-सी अच्छी बात है, एक साथ बैठकर खाना?" फिर उसने जरा-सा हँसकर कहा, "आप क्या जानें कि नारियोंका कितना जोर इस खिलानेमें रहता है? मैं तो बल्कि अपनी जातिके अनेक अधिकार छोडनेको राजी हूँ, परन्तु यह नहीं,—अरे यह सारा दूध तो पड़ा ही रह गया!—ना, सिर हिलानेसे काम नहीं चलेगा, मैं कहे देती हूँ। अभी आपका पेट नहीं भरा है।"

नरेन्द्र हँसकर बोला, "मेरा निजका पेट भरा है या नहीं, सो भी आप बता

देंगीं ! यह तो बड़ी अद्भुत बात है ! ” और उठ खड़ा हुआ। बात सुनकर विजया खुद भी कुछ हँसी अवश्य, परन्तु, उसके मुँहका भाव देखकर समझनेको बाकी नहीं रहा कि वह उतना-सा दूध न पीनेके कारण क्षुब्ध हो गई है।

तीसरा पहर हो जानेपर विदा माँगते समय नरेन्द्र सहसा बोल उठा, “ एक बातसे आज मैं बड़े आश्चर्यमें पड़ गया हूँ। मुझे धूपमें आपने जाने नहीं दिया, बिना खिलाये छोड़ा नहीं, जरा-सा कम खाते देखकर आप दुःखी हुईं,—यह सब किस प्रकार सम्भव हुआ ? सुनकर आप दुःखित न होइएगा, मैं व्यंग्य अथवा परिहास करनेके अभिप्रायसे यह बात नहीं कह रहा हूँ,—परन्तु, मैं तबसे केवल यही सोच रहा हूँ कि ऐसा किस तरह संभव हुआ ? ”

विजया किसी उपायसे इस चर्चासे निस्तार पानेके लिए तुरन्त बाधा डालकर बोली, “ सब घरोंमें ही ऐसा ही होता है। उस बातको जाने दीजिए, आप अब कितने दिनोंके भीतर बरमा जाना चाहते हैं ? ”

नरेन्द्रने अन्यमनस्क भावसे कहा, “परसों। परन्तु, मैं तो आपके लिए एकदम पराया हूँ, मेरे दुःख-कष्टसे सचमुच ही तो आपका कुछ हानि-लाभ नहीं है, तो भी आपका आचरण देखकर बाहरका कोई नहीं कह सकता कि मैं आपका अपना व्यक्ति नहीं हूँ। कहीं कम खाऊँ, या खानेमे मामूली-सी भी त्रुटि हो जाय, इस डरसे आप खुद बिना खाये सामने बैठी रहीं। मेरे बहन नहीं है, माता भी छुटपनमें मर गई हैं। वे जीवित रहतीं तो ऐसी ही व्याकुल होतीं या नहीं, मैं ठीक नहीं जानता, परन्तु आपकी यत्न-सेवा देखकर आश्चर्यमें अवश्य पड़ गया हूँ। तिसपर, यह यथार्थमें सच हो नहीं सकता, यह मैं भी जानता हूँ, आप भी जानती हैं; बल्कि इसे सच कहनेमे आपका मजाक करना होगा—साथ ही झूठ कल्पना करनेकी भी मानो इच्छा नहीं होती। ”

विजया खिड़कीके बाहर ताक रही थी, उसने उसी ओर देखते हुए कहा, “ भलमनसाहत नामकी एक वस्तु है, उसे क्या आपने और कहीं भी नहीं देखा ? ”

“ भलमनसाहत ? वही होगी शायद। ” कहकर सहसा उसके मुँहसे एक उसाँस निकल पड़ी। उसके बाद हाथ उठाकर और एक बार नमस्कार करके उसने कहा “ जिस प्रकार भी हो, पिताजीका सारा ऋण चुक गया है, इससे मुझे बड़ी ही तृप्ति हुई है। आपके मन्दिरकी दिन दिन श्रीवृद्धि हो। आजका दिन मुझे हमेशा याद रहेगा। मैं चला। ” कहकर जब वह कमरेके बाहर निकल

आया, तब भीतरसे अस्फुट पुकार आई, "जरा ठहरिए—"

नरेन्द्रके वापस लौटकर खड़े होनेपर, विजयाने मृदु वाणीसे पूछा, "आपके माइक्रोसकोपकी क्या कीमत है?"

नरेन्द्रने कहा, "खरीदनेमें मेरे पाँच सौ रुपयोंसे ज़्यादा लगे थे, पर इस समय दो ढाई सौ सौ रुपए पानेपर भी मैं दे दूँगा। कोई ले सकता है, आप जानती हैं? एकदम नया है।"

उसके बेचनेका आग्रह देखकर मन ही मन अत्यन्त व्यथित होकर विजयाने पूछा, "इतने कममें दे दीजिएगा? क्या आपका सब काम हो चुका है?"

नरेन्द्र साँस छोड़कर बोला, "काम? कुछ भी नहीं हुआ।"

यह साँस भी विजयाकी दृष्टिसे नहीं छिपी। वह क्षण-भर चुप रहकर बोली, "मेरी निजकी भी बहुत दिनोंसे खरीदनेकी साध है, परन्तु खरीद नहीं सकी। कल क्या उसे एक बार दिखा सकते हैं?"

"दिखा सकता हूँ। मैं उसे लाकर सब कुछ आपको दिखा जाऊँगा।"

कुछ सोचकर दुबारा उसने कहा, "जँचाई करनेका समय जरूर नहीं है, परन्तु मैं ठीक कह रहा हूँ, लेनेपर आप ठगी नहीं जायेंगी।"

फिर थोड़ी देर मौन रहकर उसने कहा, "यह ऐसी चीज है कि इसका मूल्य रुपयोंसे नहीं आँका जा सकता। मेरे लिए और कोई उपाय ही नहीं है, नहीं तो—अच्छा, कल दोपहरके समय ले आऊँगा।"

चले जानेपर वह जितनी देर तक दिखाई पड़ा, विजया अपलक आँखोंसे देखती रही, उसके बाद लौटकर सामनेकी कुर्सीपर बैठ गई। कभी तो उसे ऐसा लगने लगा कि जितनी दूर दृष्टि जाती है,—सब मानो शून्य हो गया है,—किसीसे भी मानो किसी दिन उसका कोई प्रयोजन नहीं था, कुछ भी मानो मरनेके समय तक उसके किसी काम नहीं आयेगा। साथ ही उसके मनमें इसके लिए क्षोभ अथवा दुःख कुछ भी नहीं है। इस तरह शून्य दृष्टिसे बाहरके वृक्ष-पौधोंकी ओर देखती और मूर्तिके समान स्तब्ध भावसे बैठी हुई वह कैसे समय काट रही है, इसका उसे ध्यान नहीं था। कब शाम बीत गई, कब नौकर दिया जला गया,—उसे पता भी नहीं लगा। आखिर उसकी चेतनता लौटी उसकी ही आँखोंके आँसुओंसे। तुरन्त उन्हें पोंछकर उसने हाथसे देखा, अनजानेमें न जाने कबसे बूँद बूँद गिरते रहनेसे उसकी छातीका कपड़ा तक भींग गया है! छिः छिः, नौकर-चाकर आये-गये हैं,—शायद उन्होंने देख लिया हो,—न जाने वे क्या

सोचें ! लज्जाके कारण आज वह प्रयोजन होनेपर भी किसीको अपने निकट नहीं बुला सकी । वह रातको बिछौनेपर लेटकर खिड़की खोलकर बाहरके अन्धकारमें वैसे ही देखती रही । वस्तु-वर्णहीन शून्य अन्धकारके समान अपना सारा भविष्यत् उसकी आँखोंके सामने नाचने लगा । उसके बाद वह कब सो गई, उसे स्मरण नहीं रहा, परन्तु नींद जब टूटी तब प्रभातके स्निग्ध आलोकसे कमरा भर गया था । पहले ही उसे उसी व्यक्तिका स्मरण आया जिसके साथ उसने जीवनमें पाँच-छः दिनोंसे अधिक बात तक नहीं की थी । और खयाल आया कि जो अज्ञात वेदना उसकी नींदमें भी विचरण करती फिरती थी, उसीके साथ न जाने कैसे उस व्यक्तिका घनिष्ठ सयोग है ।

दिन चढ़ने लगा । परन्तु, ज्यो ही खयाल आता है कि सारे काम-काजोंमे न जाने कहाँ उसकी एक आँख और एक कान आज सारे दिनसे लगा है, त्यों ही अपने प्रति उसे बड़ी शर्म मालूम होती है। परन्तु, यह मानो कुछ भी नहीं है, यह मानो केवल उस यन्त्रको देखनेके लिए ही मनका कुतूहल है, एक बार उसे देख लेनेपर सारे आग्रहकी निवृत्ति हो जायेगी, आज नहीं तो कल हो जायगी, —इस प्रकार उसने अपनेको अपने आप अनेक बार समझाया परन्तु, कोई नतीजा नहीं निकला, बल्कि समय बढनेके साथ साथ उत्कण्ठा मानो रह रहकर आशङ्काके साथ आत्मप्रकाश करने लगी । पूसके दोपहरका सूर्य धीरे धीरे एक ओर झुक गया, आलोककी सूरतमें दिन ढलनेकी सूचना पाकर विजयाका हृदय निराश हो गया । कल जो व्यक्ति चिर दिनके लिए देश छोड़कर चला जा रहा है, आज वह यदि इतनी दूर न आ सके,—इतना समय नष्ट न कर सके तो इसमे आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं है । वह यदि अपना अन्तिम सम्बल और किसीको भी अधिक मूल्यमें बेचकर चला गया हो, तो इसमें दोष आखिर उसे कौन देगा ? अपनी आखिरी बातें वह बार बार उलट-पलट कर अत्यन्त अनुतापके साथ याद करने लगी, कि मनमें मेरे चाहे हो, मुँहसे मैंने इस सम्बन्धमें आग्रहकी अधिकता बिलकुल नहीं दिखाई । इससे मेरी अनिच्छाकी कल्पना करके ही यदि उसने इरादा बदल दिया हो, तो इस दर्पिताको उचित दण्ड ही मिला, कहकर उसके हृदयके भीतरसे जो कठिन तिरस्कार बार बार ध्वनित होने लगा, उसका उत्तर विजया किसी ओर देखकर भी नही खोज सकी । परन्तु, परेशको या और किसीको भी किसी बहानेसे उनके पास भेजा जाय या नहीं, भेजनेपर भी वह उन्हें ढूँढ़ सकेगा या नहीं, वे आना भी स्वीकार

करेंगे या नहीं,—ऐसे ही अनेक तर्क-वितर्क करके, छटपटा कर घड़ीकी तरफ देखकर और भीतर-बाहर आ-जा कर जब किसी प्रकार भी उसका समय न कट रहा था तब परेशने कमरेमें आकर ख़बर दी, "माजी, नीचे आओ, बाबू आये हैं।"

विजयाका मुँह पीला पड़ गया। उसने कहा, "कौन बाबू रे?"

परेशने कहा, "कल जो आये थे। उनके हाथमें एक बड़ा भारी चमड़ेका बाक्स है माजी।"

"अच्छा, तू बाबूको बैठनेको कह, जा, मैं आती हूँ।"

दो-तीन मिनटके बाद विजयाने कमरेमें पहुँचकर नमस्कार किया। आज उसके पहिनावेमें, माथेके कुछ रूखे बिखरे बालोंमें ऐसी एक विशेषता और सुश्रृङ्खला थी, जो किसीकी भी दृष्टि नहीं बचा सकती थी। कलके साथ आजके इस भेदके कारण नरेन्द्रके मुँहसे बात ही नहीं निकल सकी। उसकी विस्मित दृष्टिका अनुसरण करके विजयाकी निजकी दृष्टि जब अपनी ओर फिर आई, तब लज्जा-शर्मके मारे वह मानो एकदम मिट्टीमें गड़ गई। माइक्रोसकोपका बैग अभी तक उसके हाथमें ही था, उसे टेबुलपर रख कर उसने धीरेसे कहा, "नमस्कार। मैं जब विलायतमें था, तब मैंने चित्र बनाना सीखा था। आपको तो मैंने और भी कई बार देखा है, परन्तु आज आपके इस कमरेमें आते ही मेरी आँखें खुल गई हैं। मैं निश्चयपूर्वक कह सकता हूँ, जो कोई भी चित्र बनाना जानता है, उसे आज आपको देखकर लोभ हुए बिना न रहेगा। वाह, क्या सौन्दर्य है।"

विजयाने मन ही मन समझ लिया कि यह सौन्दर्यके पद-मूलमें अकपट भक्तकी स्वार्थ-गन्धहीन निर्दोष स्तुति अनजानेमें ही उच्छ्वसित हो पड़ी है और यह बात केवल इनके ही मुँहसे ही निकल सकती है। परन्तु फिर भी वह यह न सोच सकी कि अपना आरक्त मुँह आखिर वह कहाँ छिपाये, अपनी देहको सारी साज-सज्जाके साथ आखिर किस प्रकार लुप्त कर दे। परन्तु क्षण-भर बाद ही, अपनेको संवरण करके, मुँह उठाकर गम्भीर स्वरसे उसने कहा, "मुझे इस प्रकार अप्रतिभ करना क्या आपके लिए उचित है? इसके सिवा, एक वस्तु खरीदूँगी कहकर ही तो आपको बुला भेजा था, चित्र अङ्कित करनेके लिए तो बुलाया नहीं।" जवाब सुनकर नरेन्द्रका मुँह सूख गया। वह लज्जासे अत्यन्त सकुचित और कुण्ठित होकर अस्फुट कण्ठसे यह कहकर क्षमा माँगने लगा कि, "मैंने कुछ भी सोचकर नहीं कहा, मुझसे बड़ी भूल हो गई है। और कभी मैं—" इत्यादि इत्यादि। उसके अनुतापका परिमाण देखकर विजया हँस पड़ी। उसने स्निग्ध हँसीसे अपना

मुँह उज्ज्वल करके कहा, "कहाँ है, देखूँ आपका यन्त्र ?"

नरेन्द्र जी गया। "अभी लीजिए, दिखाता हूँ" कहकर वह तुरन्त आगे बढ़कर अपना बाक्स खोलने लगा। बैठनेके इस कमरेमें प्रकाश कम होता आ रहा था, यह देखकर विजयाने बगलका कमरा दिखाकर कहा, "उस कमरेमें इस समय भी प्रकाश है, चलिए, वहीं चलें।"

"वहीं चलिए," कहकर वह बाक्स हाथमें लेकर गृहस्वामिनीके पीछे पीछे बगलके कमरेमें आ उपस्थित हुआ। एक छोटी-सी तिपाईपर यन्त्रको रखकर दोनों व्यक्ति दो तरफ दो कुर्सियाँ लेकर बैठ गये। नरेन्द्रने कहा, "लीजिए, अब देखिए। उपयोग किस प्रकार किया जाता है, यह मैं इसके बाद सिखा दूँगा।"

"इस अणुवीक्षण यन्त्रको जिन्होंने अपनी आँखोंसे नहीं देखा वे कल्पना भी नहीं कर सकते कि कितना बड़ा विस्मय इस छोटी-सी वस्तुके भीतरसे देखा जा सकता है। बाहरके असीम ब्रह्माण्डके ही समान एक सीमाहीन ब्रह्माण्ड मनुष्यकी तुच्छ मुट्ठीके भीतर धरा जा सकता है, इसका आभास केवल इस यन्त्रकी सहायतासे ही मिल सकता है।" केवल इतनी भूमिका बाँधकर ही उसने विजयाका मनोयोग आह्वान किया। विलायतमें डाक्टरी सीख चुकनेके बाद उसकी ज्ञान-पिपासा इसी जीवाणु-तत्त्वकी ओर बढ़ी थी। इसीसे एक ओर जिस प्रकार इस तत्त्वसे उसका परिचय अत्यन्त घनिष्ठ हो गया था, उसी प्रकार उसका संग्रह भी अपर्याप्त हो गया था। उस सबको भी वह अपने इस प्राणाधिक यन्त्रके साथ विजयाको देनेके लिए साथ ले आया था। उसने सोचा था, यह सब न देनेसे केवल यन्त्र लेकर ही भला किसीको क्या लाभ होगा! पहले तो विजयाने कुछ भी नहीं देख पाया,—उसे केवल धुँधला और अस्पष्ट-सा कुछ दिखा। नरेन्द्र जितने ही आग्रहसे पूछता था कि क्या देख रही हो, उसे उतनी ही हँसी आती थी। उस ओर उसकी चेष्टा भी नहीं थी, मनोयोग भी नहीं था। नरेन्द्र प्राणपणसे समझानेकी चेष्टा कर रहा था कि इसे ऐसे देखना चाहिए। देखना सहज कर देनेके लिए वह प्रत्येक कल-पुरजेको अनेक प्रकारसे घुमा-फिरा कर यथाविधि यत्न कर रहा था,—परन्तु देखे कौन ! जो समझा रहा था उसके कण्ठस्वरसे दूसरे व्यक्तिका अभ्यन्तर डोल डोल उठता था, प्रबल निश्वाससे उसके बिखरे बाल उड़ उड़ कर उसके सर्वाङ्गको कण्टकित कर रहे थे, हाथ हाथोंसे टकराकर उसकी देहको अवश किये दे रहे थे,—भला यह देखनेसे उसका क्या आता-जाता था कि जीवाणुकी स्वच्छ देहके भीतर क्या है और क्या नहीं है ?—कौन मलेरियासे गाँव उजाड़ रहा है, और

कौन तपेदिकसे घर सूने कर रहा है, इसकी जानकारीसे भी उसको क्या लाभ ?—जान लेनेपर भी तो वह उनका निवारण कर नहीं सकेगी, वह तो कोई डाक्टर नहीं है! कोई दस मिनट तक बकझक और माथापच्ची करके आखिर नरेन्द्र अत्यन्त विरक्त होकर उठ बैठा। उसने कहा, "जाइए, यह आपका काम नहीं है। ऐसी मोटी बुद्धि मैंने तो अपनी जिन्दगीमें नहीं देखी।"

विजयाने प्राणपणसे हँसी दबाकर कहा, "मोटी बुद्धि मेरी है, या आप समझा नहीं सकते हैं?"

अपनी कड़ी बातसे नरेन्द्रने मन ही मन लज्जित होकर कहा, "और कैसे समझाऊँ, बोलिए? सचमुचमें आपकी बुद्धि तो मोटी नहीं है, परन्तु, मुझे निश्चित रूपसे जान पड़ रहा है, कि, आप मन नहीं लगाती हैं। मैं तो बकवास कर करके मर रहा हूँ, और आप झूठमूठ ही आँख लगाये मुँह नीचा किये सिर्फ हँस रही हैं।"

"किसने कहा, मैं हँसती हूँ?"

"मै कहता हूँ।"

"आपकी भूल है।"

"मेरी भूल? अच्छा, मान लिया, लेकिन यन्त्र तो आखिर भूल नहीं है, उसमेंसे फिर क्यों नहीं देख पातीं?"

"आपका यन्त्र ख़राब है, इससे।"

नरेन्द्र विस्मयसे अवाक् होकर बोला, "खराब! आप जानती हैं, इस प्रकारका पावरफुल माइक्रोसकोप इस देशमें ज्यादा आदमियोंके पास नहीं है। इसमें इतना साफ़ दिखता—"

यह कहकर और फिर अपनी आँखसे एक बार जाँच लेनेकी अत्यन्त व्यग्रतासे ज्यों ही वह नीचेको झुका त्यों ही उसका सिर विजयाके सिरसे टकरा गया।

'ऊः' करके विजया सिर हटाकर हाथसे सहलाने लगी। नरेन्द्र अप्रतिभ होकर कुछ बोलना ही चाहता था कि उसने खिलखिलाकर कहा, "सिर टकरा देनेसे क्या होता है, जानते हैं? सींग निकलते हैं।"

नरेन्द्र भी हँस पड़ा। उसने कहा, "निकलते हों तो आपके सिरसे ही उनका निकलना उचित है।"

"और नहीं तो क्या। आपके इस पुराने टूटे यन्त्रको मैंने अच्छा नहीं कहा, इसलिए मेरा सिर सींग निकलनेके योग्य हो गया।"

नरेन्द्र हँसा अवश्य, पर उसका मुँह सूख गया। उसने गरदन हिलाकर कहा, " आपसे सच कहता हूँ, यन्त्र टूटा नहीं है। मेरे पास कुछ है नहीं, इसीलिए आपको सन्देह हो रहा है कि मैं ठगकर रुपए लेनेका यत्न कर रहा हूँ, परन्तु इसे आप बादको देखिएगा। "

विजयाने कहा, " बादको देखकर क्या करूँगी बोलिए ? उस समय मैं आपको कहाँ पाऊँगी ? "

नरेन्द्रने तिक्त स्वरसे कहा, " तो आपने क्यों कहा, कि आप लेंगीं ? मुझे क्यों व्यर्थ कष्ट दिया ? "

विजया गम्भीर भावसे बोली, " उस समय आप ही आखिर क्यों नहीं बोले कि यह टूटा है ? "

नरेन्द्र अत्यन्त विरक्त होकर बोल उठा, " मैं सौ सौ बार कह चुका, टूटा नहीं है, तो भी आप कहे जा रही हैं, टूटा है। "

परन्तु दूसरे ही क्षण क्रोध सवरण करके वह खड़ा हो गया और बोला, "अच्छा, यही ठीक है। मैं और तर्क नहीं करना चाहता,—यह टूटा ही सही। आपने मेरा केवल इतना ही नुकसान किया कि अब कल मेरा जाना नहीं हो सकेगा। परन्तु, सब आपके ही समान अन्धे नहीं हैं। आप समझ रखिए कि कलकत्तेमें मैं इसे सहज ही बेच सकता हूँ। अच्छा, चल दिया—" कहकर वह यन्त्रको बाक्समें रखनेका उद्योग करने लगा।

विजया गम्भीर भावसे बोली, " इस समय कैसे जाइएगा ? अब तो खाकर ही जाना हो सकेगा। "

" नहीं, उसकी जरूरत नहीं है। "

" जरूरत क्यों नहीं है ? "

नरेन्द्रने मुँह उठाकर कहा, " आप तो मन ही मन हँस रही हैं। क्या मेरा परिहास कर रही हैं ? "

" कल जब खानेको कहा था, तब क्या मैंने परिहास किया था ? सो नहीं होगा, आपको खाकर ही जाना होगा। जरा-सा बैठिए, मैं अभी आती हूँ, " कहकर विजया हँसी दबाये सारे कमरेमें अपने रूपकी तरङ्ग प्रवाहित करती हुई बाहर निकल गई। लगभग पाँच मिनटके बाद ही वह अपने हाथमें भोजनका थाल और नौकरके हाथमें चायका सामान लिये वापस आ गई। तिपाई खाली देखकर उसने कहा, " इतनी ही देरमें आपने बन्द करके रख दिया, आपकी नाराजी तो

कम नहीं है।"

नरेन्द्रने उदास कण्ठसे जवाब दिया, "आप नहीं लीजिएगा, इसमें नाराजी किस बातकी? परन्तु सोचकर तो देखिए, इतनी बड़ी भारी चीज़ इतनी दूर लादकर लाने और ले जानेमें कितना कष्ट है!"

थालीको टेबुलपर रखकर विजयाने कहा, "सो हो सकता है। परन्तु, कष्ट मेरे लिए तो आपने किया नहीं, किया है अपने लिए। अच्छा, खाने बैठिए, मैं चाय तैयार कर दूँ।"

नरेन्द्रको अचल देखकर उसने दुबारा कहा, "अच्छा, न हो मैं ही ले लूँगी, आपको लादकर नहीं ले जाना पड़ेगा। आप खाना आरम्भ कीजिए।"

नरेन्द्र अपनेको अपमानित समझकर बोला, "आपसे दया करनेका अनुरोध तो मैंने किया नहीं?"

विजयाने कहा, "परन्तु उस दिन किया था जिस दिन मामाकी ओरसे बात करने आये थे।"

"वह दूसरेके लिए था, अपने लिए नहीं। यह अभ्यास मुझे नहीं है।"

बात कहाँ तक सच है, विजयासे अज्ञात नहीं। इसी कारण उसका मन कचोट उठा; उसने कहा, "जो भी हो, उसे आपको वापस नहीं ले जाना होगा। वह यहीं रहेगा। अच्छा, खाने बैठिए।"

नरेन्द्रने सन्दिग्ध स्वरसे पूछा, "इसका मतलब?"

विजया बोली, "कुछ तो है ही।"

जवाब सुनकर नरेन्द्र क्षण-भर स्तब्ध हो रहा। जान पड़ता है, उसने मन ही मन इसके कारणका पता लगा लिया और दूसरे ही क्षण सहसा अत्यन्त क्रुद्ध होकर कह दिया, "वह क्या है, सो मैं आपसे साफ़ साफ़ सुनना चाहता हूँ। आप क्या इसे खरीदनेके बहाने मँगाकर अपने पास ही रोक रखना चाहती हैं? इसे भी क्या पिताजी आपके पास बन्धक रख गये थे? तब तो, मैं देखता हूँ कि आप मुझे भी रोक कर रख सकती हैं। सहज ही कह सकती हैं कि पिताजी मुझे भी आपके निकट बन्धक रख गये हैं!"

विजयाका मुँह लाल हो उठा, उसने गरदन फिरा कर कहा, "कालीपद, तू यहाँ खड़ा खड़ा क्या कर रहा है? वह सब रखकर जा और पान ले आ।"

नौकर केटली आदि टेबुलके एक किनारे रखकर चला गया; विजया चुप-चाप नीचा मुँह किये चाय बनाने लगी और नरेन्द्र निकट ही कुर्सीके ऊपर

क्रोधके मारे हण्डीके समान मुँह बनाये बैठा रहा।

## १२

सृष्टितत्त्वका जो अज्ञेय व्यापार है, उसके सम्बन्धमें विजयाने बड़े बड़े पण्डितोंके मुँहसे अनेक चर्चाएँ और अनेक गवेषणाएँ सुनी हैं, परन्तु उसका जो अंश ज्ञेय है वह कहाँ आरम्भ हुआ है, उसका क्या कार्य है, उसकी क्या आकृति-प्रकृति है, क्या उसका इतिहास है, सो ऐसी दृढ और सुस्पष्ट भाषामें कहते उसने और भी कभी सुना है, यह उसे याद नहीं आया। जिस यन्त्रको वह अभी टूटा कहकर उपहास कर रही थी, उसकी ही सहायतासे कैसे कैसे अपूर्व और अद्भुत व्यापार उसे दृष्टिगोचर हुए! इस दुर्बल और पागलेके किस्मके व्यक्तिने डाक्टरी पास की होगी, यह भी तो विश्वास नहीं होता। परन्तु सिर्फ यही नहीं। जीवितोंके सम्बन्धमें उसके ज्ञानकी गहराई, विश्वासकी दृढता, स्मरण रखनेकी असामान्य शक्तिके परिचयसे वह स्तम्भित हो गई, साथ ही उसने देखा कि मामूली आदमियोंकी तरह उसे नाराज कर देना भी कितना सहज है! अन्तमें वह कितनी ही बातें सुन रही थी, और कितनी ही उसके कानोंमें भी प्रवेश नहीं कर रही थीं। वह केवल मुँहकी ओर ताकती चुपचाप बैठी थी। जिस समय वह अपनी झोकमें बकता जा रहा था, श्रोता सम्भवतः उस समय उसके त्याग, उसकी साधुता, उसकी सरलताकी बात मन ही मन सोच कर स्नेह, श्रद्धा और भक्तिसे विभोर हो रहा था।

सहसा नरेन्द्रकी दृष्टिमें पड़ गया कि वह व्यर्थ ही बक रहा है। उसने कहा, "आप कुछ भी सुन नहीं रही हैं?"

विजया चकित होकर बोली, "सुन तो रही हूँ।"

"क्या सुन रही हैं, बोलिए?"

"वाह! एक दिनमें ही, जान पड़ता है, सब कुछ सीख लिया जाता है?"

नरेन्द्रने हताश भावसे कहा, "नहीं, आप कुछ नहीं सीख सकेंगी। आपके समान अन्यमनस्क व्यक्ति मैंने इस जन्ममें देखा ही नहीं।"

विजया लेश-भर भी अप्रतिभ हुए बिना बोली, "एक दिनमें ही शायद आदमी सब कुछ सीख सकता है? आपने भी क्या एक दिनमें सीख लिया था?"

नरेन्द्र हो हो करके हँस उठा और बोला, "आप तो एक सौ वर्षमें भी नहीं सीख सकेंगी। इसके अतिरिक्त यह सब सिखायेगा ही आखिर कौन?"

विजयाने होंठ दबाकर हँसते हुए कहा, " आप। नहीं तो फिर यह टूटा हुआ यन्त्र लेगा कौन ? "

नरेन्द्रने गम्भीर होकर कहा, " आपको लेनेकी भी जरूरत नहीं है, मैं सिखा भी नहीं सकूँगा। "

" तो फिर चित्र अङ्कित करना सिखा दीजिए। वह तो सीख सकूँगी ? "

नरेन्द्र उत्तेजित होकर बोला, " सो भी नहीं। जिसको देखनेमें मनुष्यको नहाने खानेकी भी सुध नहीं रहती, उसीमें जब आप मन नहीं लगा सकीं, तब मन लगाइएगा चित्र अङ्कित करनेमें ? नहीं, किसी तरह नहीं लगा सकतीं। "

" तो फिर चित्र आँकना भी नहीं सीख सकूँगी ? "

" नहीं। "

विजयाने बनावटी गम्भीरताके साथ कहा, " कुछ भी न सीख सकनेपर तो सिरमें सींग निकल आयेंगे ! "

उसके मुँहके भाव और उसकी बातसे नरेन्द्र फिर ठहाका मारकर हँस पड़ा। उसने कहा, " वही आपके लिए उचित दण्ड होगा। "

विजयाने मुँह फिराकर हँसी छिपाकर कहा " जरूर। यही क्यों नहीं कहते कि आपमें सिखानेकी क्षमता ही नहीं है ?—परन्तु, नौकर चाकर क्या कर रहे हैं, उन लोगोंने रोशनी क्यों नहीं की ?—आप जरा बैठिए, मैं दिया जलानेको कह आऊँ। " यह कहकर और फुर्तीसे उठकर उसने द्वारका पर्दा हटाया ही था कि वह एका एक इस तरह थम रही जैसे कोई भूत दिख गया हो। देखा कि सामने ही बैठनेके कमरेमें दो कुर्सियोंपर दखल जमाये पिता और पुत्र रासबिहारी और विलास-बिहारी बैठे हैं। देखा कि विलासके मुँहपर किसीने काली स्याही पोत दी है। विजयाने अपनेको सवरण करके आगे बढ़कर पूछा, " आप कब आये काकाजी ? मुझे आपने बुलाया क्यों नहीं ? "

रासबिहारीने सूखी हँसी हँसकर कहा, " लगभग आधा घंटा हुआ बेटी ! तुम उस कमरेमें बातचीतमें मशगूल थीं, इसलिए मैंने बुलाया नहीं, वह शायद जगदीशका लड़का है ? क्या चाहता है ? "

विजया ऐसे मृदुस्वरसे बोली कि बगलके कमरेतक आवाज न पहुँचे, " एक माइक्रोसकोप बेचकर वे बरमा जाना चाहते हैं। उसे ही दिखा रहे थे। "

विलास मानो गरज उठा, " माइक्रोसकोप। ठगनेके लिए और कोई जगह उसे नहीं मिली ? "

रासबिहारी भार्त्सनाके भावसे लड़केसे बोले, " ऐसी बात क्यों कहते हो ? उसका उद्देश तो हम लोग जानते नहीं,—अच्छा भी तो हो सकता है ? "

उन्होंने विजयाके मुँहकी तरफ ताककर जरा-सी हँसीके साथ गरदन हिलाकर कहा, " जो जाना नहीं है, उसके सम्बन्धमें मतामत प्रकट करना मैं उचित नहीं समझता। उसका उद्देश बुरा नहीं भी तो हो सकता है—क्या कहती हो बेटी ? " कहकर जरा ठहरकर खुद ही उन्होंने फिर कहा, " अवश्य ही यह भी ठीक है कि जोर देकर कुछ भी नहीं कहा जा सकता। पर वह चाहे जो हो, उसकी हमें जरूरत क्या है ? दूरबीन होता तो वह शायद वक्त-बेवक्त दूरी-ऊरी देखनेके काममे भी आ सकता।—अरे वह कौन है, कालीपद ? उस कमरेमें रोशनी करने जा रहा है ? वहाँ बैठे हुए बाबूसे कह आना कि हम लोग खरीद नहीं सकेंगे,—वे जा सकते हैं। "

विजया डरते डरते बोली, " उनसे कह दिया है कि मैं लूँगी। "

रासबिहारीने कुछ आश्चर्यमें पड़कर कहा, " क्यों लोगी ? उसकी क्या आवश्यकता है ? "

विजया मौन रही।

रासबिहारीने पूछा, " वे कितनी कीमत माँगते हैं ? "

" दो सौ रुपए। "

रासबिहारीने दोनों भौंहें फैलाकर कहा, " दो सौ ? दो सौ रुपए चाहते हैं ? तब तो फिर बिलासने निहायत—क्या कहते हो बिलास, कालेजमें तुम लोगोंने तो एफ० ए० क्लासमें पढ़ते समय इन सब चीजोंको काफी देखा-सुना उलटा-पलटा है—दो सौ रुपए एक माइक्रोसकोपकी कीमत ?—कालीपद, जा, उनसे जानेको कह दे—यह सब चालबाजी यहाँ नहीं चलेगी। "

परन्तु जिससे कहना होगा, वह तो अपने कानसे ही सब सुन रहा था, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। कालीपदको जानेके लिए तैयार देखकर विजयाने उससे शान्त, साथ ही दृढ़ स्वरसे कह दिया, " तुम सिर्फ रोशनी करके चले आओ, जो कुछ कहना है मैं खुद ही कह लूँगी। "

विलासने अपने पितासे व्यंग्य करके कहा, "बापूजी, तुम व्यर्थ ही क्यो अपना अपमान कराते हो ? उन्हें शायद अभी कुछ और देख लेना बाकी है। "

रासबिहारी कुछ बोले नहीं, परन्तु क्रोधसे विजयाका मुँह लाल हो उठा। विलास उसपर लक्ष्य करके भी कह बैठा, " मैंने भी अनेक तरहके माइक्रोसकोप

देखे हैं, बापूजी, मगर हो हो करके हँसनेकी कोई बात किसीमें नहीं पाई।"

कलके खाना खिलानेकी बात भी वह जान गया था, और आजका ठठाकर हँसना भी उसने अपने कानोंसे सुन लिया था। विजयाकी आजकी वेष-भूषाकी सजावट भी उसकी दृष्टिसे छिपी न रही थी। ईर्ष्याके विषसे वह इस तरह जल रहा था कि अब उसे दिशा-विदिशाका ज्ञान नहीं रहा था। विजयाने उसकी तरफ बिलकुल पीठ फिरा ली और रासबिहारीसे कहा, "मुझसे आपको क्या कोई खास बात करनी है, काकाजी ?"

कोई देख न ले, इस तरह लड़केके प्रति एक क्रुद्ध कटाक्ष फेंककर रासबिहारीने स्निग्ध कण्ठसे कहा, "बात तो अवश्य करनी है बेटी, लेकिन उसके लिए जल्दी क्या है ?"

फिर कुछ ठहर कर कहा, "और, मैंने सोच कर देख लिया, उन्हें बात जब दे दी है, तब चाहे जो हो उसे लेना ही होगा। दो सौ रुपए ज्यादा हैं, या बातकी कीमत ज्यादा है ? न हो तो, उन्हें कल आकर रुपए ले जानेको कह दो न बेटी ?"

विजयाने इस प्रश्नका उत्तर दिये बिना पूछा, "आपसे क्या कल बातें नहीं हो सकतीं काकाजी ?"

रासबिहारीने कुछ विस्मित होकर कहा, "क्यों बेटी ?"

विजयाने क्षण-भर स्थिर रहनेके बाद द्विधा-सङ्कोचको बलपूर्वक रोककर कहा, "उन्हें रात हुई जा रही है, तिसपर उन्हें बहुत दूर जाना होगा। उनसे मुझे कुछ बातें करनी हैं।"

उसकी इस गुस्ताखीसे भरी हुई स्पष्टतासे वृद्धने मन ही मन स्तम्भित हो जाने पर भी बाहर लेशमात्र भी व्यक्त नहीं होने दिया। उन्होंने दृष्टि उठाकर देखा कि लड़केकी छोटी छोटी दोनों आँखें अन्धकारमें हिंस्र पशुके समान झक-झक कर रही हैं और वह कुछ कह बैठनेकी चेष्टाके साथ मानो युद्ध कर रहा है। धूर्त रासबिहारीने अवस्थाको पलक मारते ही समझ लिया और उसे इशारेसे रोककर प्रफुल्ल हँसमुख होकर कहा, "अच्छा तो है बेटी, मैं कल सबेरे ही फिर आ जाऊँगा। विलास, अँधेरा हुआ जा रहा है बेटा, चलो, हम लोग चलें," कह कर वे उठ खड़े हुए और लड़केकी बाँह हौलेसे खींच कर उसके अवरुद्ध दुर्दमनीय क्रोधके फटकर बाहर निकलनेके पहले ही उसे साथ लेकर बाहर चले गये।

विजयाने तब तक विलासकी ओर बिल्कुल नज़र नहीं डाली थी। इसलिए उसके मुँहका भाव और आँखोंकी दृष्टि अपनी आँखसे न देख पाई थी, फिर भी मन ही मन सब कुछ अनुभव करके वह बहुत देर तक काष्ठवत् खड़ी रही।

कालीपदने इस कमरेमें दिया जलाने आनेपर कहा, "उस कमरेमें बत्ती जला आया हूँ माजी।"

"अच्छा," कहकर विजया अपनेको संयत करके दूसरे ही क्षण दरवाजेका परदा हटाकर धीरेसे उस कमरेमें जा पहुँची। नरेन्द्र गरदन नीची किये हुए कुछ सोच रहा था, वह उठ खड़ा हुआ। उसकी निःश्वास दबानेकी व्यर्थ चेष्टा भी विजयाके निकट पकड़ाई दे गई। थोड़ी देर चुप रहकर नरेन्द्रने दुःखके साथ कहा, "इसे मैं साथ ही लिये जाता हूँ, परन्तु, आपका आजका दिन बहुत ख़राब बीता। क्या जाने आप किसका मुँह देखकर सबेरे उठी थीं। आपसे मैंने भी अनेक अप्रिय बातें कहीं और वे लोग भी कह गये।"

विजयाके मनके भीतर उस समय भी आग जल रही थी, मुँह ऊँचा करके देखते ही उसके अभ्यन्तरकी ज्वाला दोनों आँखोंमें दीप्त हो उठी, उसने अविचलित कण्ठसे कहा, "मैं चाहती हूँ कि उसका मुँह देखकर ही रोज मेरी नींद टूटे! आपने सारी बातें अपने कानोंसे सुन ली हैं, इसलिए ही कहती हूँ कि, आपके सम्बन्धमें उन लोगोंने जो असम्मानकी बातें की हैं, वह सब उनकी अनधिकार-चर्चा है। कल उन्हें मैं यह समझा दूँगी।"

अतिथिके असम्मानसे उसे कैसी चोट लगी, नरेन्द्रने यह समझ लिया। उसने शान्त सहज भावसे कहा, "आवश्यकता क्या है? इन सब वस्तुओंके सम्बन्धमें वे लोग कुछ नहीं जानते, इसीलिए उन्हें सन्देह हुआ है, नहीं तो मेरा अपमान करनेमें उनको कोई लाभ नहीं है। आपको स्वतः भी तो पहले अनेक कारणोंसे सन्देह हुआ था, सो क्या असम्मान करनेके लिए हुआ था? वे लोग आपके आत्मीय हैं, शुभाकांक्षी हैं, मेरे कारण उन्हें दुखी मत कीजिएगा। लेकिन अब रात हुई जा रही है,—मैं जाता हूँ।"

"कल या परसों एक बार आ सकिएगा?"

"कल या परसों? परन्तु, अब तो समय नहीं मिलेगा। कल मैं जा रहा हूँ। यद्यपि कल ही बरमा जाना न हो सकेगा, कलकत्तेमें भी कुछ दिनों ठहरना पड़ेगा, लेकिन दुबारा मिलनेका—"

विजयाकी दोनों आँखें आँसुओंसे डबडबा आईं, वह न मुँह उठा सकी, न बात

कर सकी। नरेन्द्र खुद ही कुछ हँस पड़ा और बोला, " आप खुद इतना हँसा सकती हैं, और आप ही इतनी मामूली बातसे इतनी नाराज हो गईं ? मैं ही बल्कि एक बार बिगड़कर आपको मोटी बुद्धिकी और न जाने क्या क्या कह गया हूँ, परन्तु, उससे तो नाराज हुईं नहीं, बल्कि होंठ दबाकर हँसती रहीं, जिससे मुझे और भी क्रोध आया था। परन्तु आप हमेशा मुझे याद आयेंगी, आप खूब हँसा सकती हैं।"

शान्त वर्षाकी बूँदें जोरकी हवासे जिस प्रकार पत्तोंसे झर पड़ती हैं, उसी प्रकार इस अन्तिम बातसे कई बूँद आँसू विजयाकी आँखोंसे टप टप करके मिट्टीपर झर पड़े। परन्तु इस भयसे कि हाथसे पोंछनेपर कहीं दूसरेकी दृष्टि न पड़ जाय वह निःशब्द नीचा मुँह किये खड़ी रही।

नरेन्द्र कहने लगा, " इसे ले नहीं सकीं इसलिए आप दुःखित हैं—" कह कर ही सहसा बातके बीचमें ठहर कर वह व्यवहार-ज्ञान-वर्जित वैज्ञानिक पलक मारते ही एक अजीब हरकत कर बैठा। अकस्मात् वह हाथ बढ़ाकर विजयाकी ठोड़ी पकड़कर विस्मयके साथ कह उठा, " यह क्या, आप रो रही हैं ? "

बिजलीकी गतिसे विजयाने दोनों पैर पीछे हटाकर आँसू पोंछ डाले। नरेन्द्रने हतबुद्धि होकर सिर्फ पूछा " क्या हुआ ? "

यह सब व्यापार उस बेचारेकी बुद्धिसे परे था। वह जीवाणुओंको पहचानता था, उन सबके नाम-धाम, जाति-गोत्र आदिकी कोई बात उससे अज्ञात नहीं थी। उनके कार्य-कलाप, उनकी रीति-नीतिके सम्बन्धमें कभी उससे रत्ती भर भूल नहीं हुई, उनके आचार-व्यवहारका सारा हिसाब उसके नाखूनोंपर था। लेकिन यह क्या ? जो निर्बोध कहकर गाली देनेसे छिपकर हँसती है और जो श्रद्धा और कृतज्ञतासे तद्गत होकर प्रशंसा करनेसे रो-रोकर नदी बहा देती है, ऐसे अद्भुत प्रकृतिके जीवके साथ संसारमें ज्ञानी आदमीका सहज कारबार किस तरह चल सकता है ? वह कुछ क्षण स्तब्ध भावसे खड़ा रहा, इसके बाद ज्यो ही उसने हौलेसे अपना बैग हाथमें उठाया, त्यों ही विजया रुँधे गलेसे बोल उठी, " वह मेरा है। आप रख दीजिए।" और फिर रुलाई अधिक रोक न सकनेके कारण तेजीके साथ कमरेसे चली गई।

उसे नीचे रखकर नरेन्द्र हतबुद्धि-सा होकर दो-तीन मिनट खड़ा रहा। इसके बाद उसने बाहर आकर देखा कि कहीं कोई नहीं है। और भी कुछ मिनटों तक चुपचाप राह देखकर अन्तमें वह खाली हाथ अँधेरा रास्ता पकड़कर

चला गया।

विजयाने लौट कर देखा, बैग रक्खा है, पर उसका मालिक नहीं है। वह रुपए लानेको अपने कमरेमें गई थी, परन्तु, बिछौनेमें मुँह लपेटकर रुलाई रोकनेमें कितनी देर हो गई, इसका उसे होश नहीं रहा। पुकार होनेपर कालीपद बाहर आया। प्रश्न सुनकर उसने सासारिक कामोंकी लम्बी जबानी फर्द दाखिल करके कहा, "मैं भीतर था, जानता ही नहीं, बाबू कब चले गये।" दरबान कन्हैयासिंह आकर बोला, "मैं अरहरकी दाल चूल्हेसे उतारकर रोटियाँ बना रहा था, कब मौका पाकर बाबू चुपकेसे बाहर निकल गये, मुझे मालूम भी नहीं हुआ।"

## १३

विलासबिहारीकी प्रचण्ड कीर्ति,—गँवई-गाँवमें ब्राह्म-मन्दिरकी स्थापनाका शुभ दिन समीप आ पहुँचा। एक एक करके अतिथिगण आने लगे। सिर्फ़ कलकत्तेसे ही नहीं, आसपाससे भी दो-चार व्यक्ति सपत्नीक आ पहुँचे। कल वही शुभ दिन है। आज शामको रासबिहारीने अपने निवास-भवनमें एक प्रीति-भोजका आयोजन किया है।

संसारमें स्वार्थ-हानिकी आशका किसी किसी कारबारी व्यक्तिको कितना कुशाग्र-बुद्धि और दूरदर्शी बना देती है, सो निम्नलिखित घटनासे ज्ञात हो जायगा।

आये हुए निमन्त्रित व्यक्तियोंके बीचमें बैठकर वृद्ध रासबिहारी अपनी पकी दाढीपर हाथ फेर कर अधमुँदी आँखोंसे अपने बाल्यबन्धु परलोकगत बनमालीका उल्लेख करते हुए गम्भीर कण्ठसे कहने लगे, "भगवान्‌ने उन्हें असमयमें बुला लिया। उनकी मङ्गल-इच्छाके विरुद्ध हमारी रत्ती-भर भी शिकायत नहीं है। किन्तु, वे मुझे कैसी हालतमें छोड़ गये हैं, बाहरसे देखकर इसका आप अनुमान भी नहीं कर सकिएगा। यद्यपि हम लोगोंके मिलनका दिन प्रतिदिन निकटवर्ती होता आ रहा है, इस बातका आभास मैं प्रतिमुहूर्त ही पा रहा हूँ, तथापि उन एकमात्र एवं अद्वितीय निराकार ब्रह्मके श्रीचरणोंमें यह प्रार्थना करता हूँ कि वे अपनी असीम करुणासे उस दिनको और भी सन्निकट कर दे।" यह कहकर उन्होंने कुरतेकी बाँहसे अपनी आँखोंकी कोरें पोछ लीं। उसके पश्चात् वे कुछ क्षण आत्मसमाधिमग्न भावसे मौन रहकर, अपेक्षाकृत प्रफुल्ल कण्ठसे कहने लगे। अपने बचपनके खेलने-कूदनेका, किशोर-वयके पढने गुननेका और उसके बाद यौवनमें

सत्यधर्म ग्रहण करनेका इतिहास बताकर उन्होंने कहा, "परन्तु, बनमालीका कोमल हृदय गाँवका अत्याचार सहन नहीं कर सका। वे कलकत्ते चले गये। लेकिन मैंने सारी तकलीफें सहकर गाँवमें रहनेकी ही प्रतिज्ञा की। ऊः, वह कैसा भयानक निर्यातन था! तथापि मैंने मन ही मन कहा, सत्यकी जय होगी ही। उनकी महिमासे एक दिन विजयी होऊँगा ही। वही शुभ दिन आज सामने है। इसीसे यहाँ इतने समय बाद आप लोगोंकी पद-धूलि पड़ी। आज बनमाली हम लोगोंके बीच नहीं हैं—दो दिन पहले ही वे चले गये, परन्तु, मैं आँख मूँदते ही देख पाता हूँ, वह देखिए, वे ऊपरसे आनन्दसे मृदु मृदु हँस रहे हैं।" यह कहकर वे फिर आँखें मूँदकर स्थिर हो गये।

सारे ही उपस्थित व्यक्तियोंका मन उत्तेजित हो उठा,—विजयाकी दोनों आँखोंमें आँसू डबडबा आये। रासबिहारी आँखें पोंछकर सहसा दाहना हाथ फैलाते हुए बोल उठे, "ये उनकी एकमात्र कन्या विजया हैं। पिताके सब गुणोंकी अधिकारिणी, किन्तु कर्तव्य-पालनमें कठोर और सत्य कहनेमें निर्भीक स्थिर। और यह मेरा लड़का विलासबिहारी है, वैसा ही अटल, वैसा ही दृढ़-चित्त। ये दोनों बाहरसे इस समय तक अलग हैं, फिर भी, भीतर—हाँ, और वह शुभ दिन निकट आ रहा है जिस दिन फिर आप लोगोंकी पद-धूलिके प्रसादसे इनका सम्मिलित नवीन जीवन धन्य होगा।"

एक अस्फुट मधुर कलरवसे सारी सभा मुखरित हो उठी। जो महिला निकट बैठी थीं उन्होंने विजयाका हाथ अपने हाथमें लेकर जरा-सा दबा दिया। रास-बिहारी एक गहरी लम्बी उसाँस छोड़कर बोले, "ये उनकी एकमात्र सन्तान हैं। यह शुभ प्रसग अपनी आँखोंसे देख जानेकी उनकी बड़ी साध थी, परन्तु, सारा अपराध मेरा है, आज आप सबके सामने इसे मुक्त कण्ठसे स्वीकार करता हूँ। इसके लिए मैं अकेला ही जिम्मेदार हूँ। कमलके पत्तेपर ओसकी बूँदके समान मानव जीवन है, हम लोग मुँहसे यह सिर्फ ही कहते हैं, करके नहीं दिखाते। जीवन इतनी जल्दी जा सकता है, यह खयाल ही मैंने नहीं किया।"

यह कहकर वे क्षण-भरके लिए चुप हो गये। उनके अनुतापसे बिंधे हृदयका चित्र उज्ज्वल दीपालोकमें मुँहपर फूट उठा। फिर एक लम्बी उसाँस छोड़कर शान्त गम्भीर स्वरसे वे बोले, "परन्तु अब मुझे होश आ गया है। इसीलिए अपने शरीरकी ओर देखकर इस अगले फागुनसे अधिक और देर करनेकी हिम्मत मुझे नहीं होती। कौन जानता है, कहीं मैं भी बिना देखे ही न चला जाऊँ!"

फिर एक अव्यक्त ध्वनि उठी। रासबिहारी दाहने और बॉयें देखकर विजयाको उद्देश करके कहने लगे, "जिस प्रकार बनमाली अपने यथासर्वस्वके साथ कन्याको भी मेरे हाथ सौंप गये हैं, उसी प्रकार मैं भी धर्मकी ओर दृष्टि रखकर अपना कर्तव्य पूरा कर जाऊँगा। ये दोनों भी उसी प्रकार आप लोगोंके आशीर्वादसे दीर्घ जीवन पाकर सत्यके सहारे अपना कर्तव्य-पालन करें। जिस स्थानसे इनके पिताको निर्वासित किया गया था उसी स्थानमें दृढ़ प्रतिष्ठाके साथ ये सत्यधर्मका प्रचार करें, यही मेरी एकमात्र प्रार्थना है।"

वृद्ध आचार्य दयालचन्द्र घाडा महाशयने इसपर आशीर्वादकी वर्षा की।

रासबिहारीने तब विजयाको पुकार कर कहा, "बेटी, तुम्हारे पिता नहीं हैं, तुम्हारी सती-साध्वी मा भी बहुत पहले स्वर्गधाम सिधार गई हैं, नहीं तो आज यह बात मुझे तुमसे न पूछनी पड़ती। शर्माओ मत बेटी, कह दो, जिससे आज इन पूजनीय अतिथियोंको अगले फागुनके महीनेमें ही यहॉपर फिर एक बार पद-धूलि देनेके लिए निमन्त्रण दे रक्खूँ।"

विजया क्या कहे? क्षोभसे, विरक्तिसे, भयसे उसका कण्ठावरोध हो गया। वह नीचा मुँह किये निःशब्द बैठी रही। रासबिहारीने क्षण-भर प्रतीक्षा करके ही मृदु हँसकर कहा, "दीर्घजीवी होओ बेटी, अब तुम्हें कुछ नहीं कहना होगा,—हम लोग सब समझ गये हैं।"

इसके बाद वे खडे होकर दोनों हाथ जोड़कर बोले, "मैं अगले फागुनमें ही फिर एक बार आप लोगोंकी पद-धूलिकी भीख मॉंगता हूँ।" सभी लोग बार बार अपनी अपनी सम्मति व्यक्त करने लगे। विजया और अधिक न सह सकनेके कारण अव्यक्त कण्ठसे बोल उठी, "बापूकी मृत्युके एक वर्षके ही भीतर,—" गला भर आनेके कारण वह अपनी बात पूरी न कर सकी।

रासबिहारी पलक मारते ही मामला समझकर अनुतापके साथ उसी क्षण बोल उठे, "ठीक तो कहती हो बेटी, ठीक तो कहती हो। यह तो मुझे स्मरण ही नहीं था। मगर तुम तो मेरी मा हो न बेटी, इसीसे इस बूढे लडकेकी गलती तुमने पकड़ ली।"

विजयाने चुपचाप अञ्चलसे ऑखे पोछ लीं। रासबिहारीने यह भी देख लिया। वे उसॉस छोड़कर आर्द्रस्वरसे बोले, "सब कुछ उन्हींकी इच्छा है।" फिर कुछ देर बाद बोले, "सो ही होगा। परन्तु, उसके लिए भी तो अधिक विलम्ब नहीं है।"

सबकी तरफ देखकर उन्होंने कहा, "अच्छी बात है, अगले वैशाखमें ही यह शुभ कार्य सम्पन्न होगा। आप लोगोंसे हमारी यही बात पक्की रही। विलासबिहारी, बेटा, रात हुई जा रही है, कल सबेरेसे तो कामोंकी कुछ हद नहीं रहेगी—हम लोगोंके भोजनका आयोजन—नहीं, नहीं, नौकरोंके भरोसे छोड़ना ठीक नहीं है,—तुम खुद जाओ,—चलो मैं भी चलूँ। तो फिर आप लोगोंकी अनुमति यदि हो तो मैं एक बार—" कहते कहते ही वे लड़केके पीछे पीछे भीतरकी ओर चले गये।

यथासमय प्रीति-भोजनका कार्य सम्पन्न हो गया। आयोजन काफी था, कहीं भी किसी अशमें कोई त्रुटि नहीं रहने पाई। रातको लगभग बारह बज रहे होंगे कि एक खम्भेकी आड़मे, अँधेरेमें विजया अकेली खड़ी पालकीकी प्रतीक्षा कर रही थी। रासबिहारी उसे सहसा ढूँढ़ निकालकर मानो चौंक पड़े, "यहाँ अकेली क्यों खड़ी हो बेटी? चलो चलो,—घरमें बैठो, चलो।"

विजया गरदन हिलाकर बोली, "नहीं काकाजी, मैं ठीक खड़ी हूँ।"

"लेकिन सरदी लग जायगी बेटी!"

"नहीं, नहीं लगेगी।"

रासबिहारी तब नजदीक खड़े होकर 'घरकी लक्ष्मी' आदि कहकर और एक बार आशीर्वाद देने लगे और विजया पत्थरकी मूर्तिकी तरह निर्वाक् होकर स्नेहका यह सारा नाटक सहन करने लगी।

अकस्मात् उन्हें एक बात याद आ गई। वे बोल उठे, "तुम्हें वह बात बताना तो एकदम भूल ही गया था, बेटी। उस माइक्रोसकोपकी कीमत मैंने उन्हें दे दी है।"

आठ-दस दिन हो गये, नरेन्द्र उस दिन उसे रख गया और उसके बाद फिर आया ही नहीं। विजयाके ये कई दिन किस प्रकार कटे हैं, सो सिर्फ़ वही जानती है। उसने उसकी बुआके घरकी दूरी तो जान ली थी, लेकिन वह कहाँ है, किस गाँवमें है, सो पूछ ही नहीं पाया था। यह भूल उसे प्रति क्षण तपे बर्छेकी तरह बेधती रही है, परन्तु वह कोई उपाय नहीं खोज सकी। इस समय रासबिहारीकी बातसे चकित होकर बोली, "कब दी?"

रासबिहारी जरा सोचकर बोले, "कौन जाने, सम्भवतः उसके दूसरे दिन ही दी होगी। सुना कि तुमने उसे खरीदनेकी इच्छासे रख लिया है। बात तो बात ही है। बात जब दी जा चुकी, तब ठगाई हो, या कुछ भी हो, रुपए भी दे दिये

गये—यही तो मैं सारे जीवन समझता आ रहा हूँ बेटी। देखा, उस बेचारेको बड़ी ज़रूरत है, रुपए हाथमें आते ही चला जायेगा,—जाकर जीविकाका कुछ न कुछ यत्न करेगा। हज़ार हो, फिर भी पराया तो नहीं है, बेटी, वह भी तो एक बन्धुका ही लड़का है। देखा, चले जानेके लिए बहुत विकल हो रहा है—रुपए पाते ही चला जायेगा। और तुम्हारा देना भी देना है, मेरा देना भी देना है। इसीसे मैंने उसी वक्त दे दिया। उसका धर्म उसके साथ है,—दस रुपए ज्यादा भी ले गया हो तो ले जाय।"

विजयाके मुँहमें जीभ मानो जकड़ गई,—उसे ऐसा लगा, कि मानो अब किसी प्रकार वाणी फूटेगी ही नहीं। कुछ क्षण प्रबल प्रयत्न करनेके बाद वह पूछ बैठी, "उन्हे कहाँ रुपए दिये?"

रासबिहारी, पता नहीं किस प्रकार, प्रश्नको बिलकुल और ही समझकर चौंक उठे और बोले, "नहीं नहीं, कहती क्या हो, रुपए दो बार ले गया क्या? लेकिन कैसे, ऐसा तो उसका मुँह देखकर लगा नहीं। और किसे आखिर दोष दूँ? इसी तरह लोगोंकी बातोंका विश्वास करके ठगाते ठगाते ही तो मैंने अपनी दाढ़ी पका डाली है। न हो, और दो सौ गये। सो वे रुपए मैं ही दे दूँगा,—हमेशा इसी प्रकार दण्ड सहते सहते कन्धे कड़े पड़ गये हैं बेटी, अब उनमे लगता नहीं। जाने दो—वह मैं—"

विजया और अधिक किसी तरह न सह सकनेके कारण रूखे स्वरसे बोल उठी, "क्यों आप व्यर्थ डर रहे हैं काकाजी? दो बार रुपए ले जानेवाले आदमी वे नहीं हैं, बिना खाये-पीये मर जाना पड़े तो भी नहीं। भेंट कहा हुई? रुपए कब दिये?"

रासबिहारीने अत्यन्त आश्वस्त होकर उसाँस छोड़कर कहा, "चलो, जान बची। रुपए भी तो कम नहीं थे—दो सौ! वह जानेके लिए बहुत व्यग्र था।" फिर अकस्मात् कुछ देखते ही बोले, "कौन खड़ा है? विलास? अरे पालकी-का क्या हुआ? सरदी जो लग रही है। जो काम मैं खुद नहीं देखूँगा, क्या वही नहीं होगा!" कहकर, वे बहुत नाराज होकर दूसरी तरफ़के एक खम्भेको विलास समझ कर अकस्मात् शीघ्रतासे उसी ओर बढ़ गये।

## १४

एक दिन था जब विलासके हाथ आत्म-समर्पण करना विजयाके लिए कुछ कठिन नहीं था। परन्तु आज केवल विलास ही क्यों,—इतनी बड़ी

पृथ्वीके करोड़ों लोगोंमेंसे, सिर्फ एक व्यक्तिको छोड़कर और किसीके छू लेनेकी बात तक सोचनेमें उसका सर्वाङ्ग घृणा और लज्जासे तथा सारा अन्तःकरण किसी एक गहरे पापके भयसे त्रस्त सशङ्कित हो उठता है। इस विषयको ही वह रासबिहारीके निमन्त्रणसे लौटते समय पालकीमें बैठे बैठे अनेक पहलुओंसे बहुत ही बारीकीसे आलोचना करती हुई इधर आ रही थी।

उसके सम्बन्धमें उसके पिताका मनोभाव वास्तवमें क्या था, यह जान लेनेका यथेष्ट सुयोग उसे नहीं मिला। परन्तु, उनकी मृत्युके बाद उसके निजकी भविष्यत् जीवनकी धारा विलासबिहारीके साथ मिलकर ही बहेगी, सो स्थिर हो गया था। इस सम्भावनाकी कल्पना भी किसी दिन उसके मनमें उदय नहीं हुई, कि, इसमें किसी प्रकार बाधा भी पड़ सकती है।

यह जो एक अनासक्त उदासीन व्यक्ति आकाशके न जाने कौनसे एक अदृश्य प्रान्तसे सहसा धूमकेतुके समान निकल पड़ा और पलक मारते अपनी विशाल पूँछकी प्रचण्ड ताड़नासे सब कुछ छार-खार करके, सब उलट-पुलट कर, अपने सुनिर्दिष्ट मार्गकी रेखा तक मिटाकर खुद ही कहीं सरक गया,—अपना चिह्न तक नहीं छोड़ गया,—सो सच है अथवा खालिस सपना?–विजया अपनी समस्त आत्माको जगाकर आज यही सोच रही थी। यदि वह सपना था तो उसका मोह किस प्रकार कितने दिनोंमें कटेगा, और यदि सच था तो वह जीवनमें किस प्रकार सार्थक होगा?

घर आकर वह चारपाईपर लेट गई, लेकिन नींद उसके जलते हुए मस्तकके पास भी नहीं फटकी। आज जो आशङ्का उसके मनमें बार बार उठने लगी, वह यह कि जो चिन्ता कुछ दिनोंसे उसके चित्तको दिन-रात आन्दोलित कर रही है, उसमें सत्य वस्तु भी कुछ है अथवा वह केवल उसके आकाश-कुसुमोंकी माला है, इस निदारुण समस्याकी गाँठ उसे कौन खोल देगा?

उसके मा नहीं है, पिता भी परलोकमें हैं, भाई-बहन तो किसी दिन थे ही नहीं—अपना कहनेको एक रासबिहारीके अतिरिक्त और कोई नहीं है। वे ही उसके बन्धु, वे ही मित्र और वे ही अभिभावक हैं। आज विजयाके निकट यह बात पानीके समान स्वच्छ साफ हो गई कि उन्होंने कौन-सा शुभ उद्देश सिद्ध करनेके लिए इतनी जल्दी करके उसे उसके आजन्मपरिचित कलकत्तेके समाजसे अलग करके देशमें लाकर डाल दिया है। पानीकी उस स्वच्छताके भीतर जितनी दूर तक उसकी दृष्टि गई, आज वह सब ही उसकी आँखोंके सामने बिलकुल

स्पष्ट होकर दिख गया। विदेश जानेके लिए नरेन्द्रको बिना माँगी सहायता देना, अपने घर खिलाने-पिलानेका वह आयोजन, सम्मानित अतिथियोंके सामने विवाहका प्रस्ताव, उसकी सलज्ज नीरवताका अर्थ मौन सम्मति मान कर निःसशय उसका प्रचार,—इस तरह उसे सब तरफसे बाँध लेनेकी वृद्धकी इस चेष्टा परम्पराकी कोई भी बात अब विजयासे छिपी नहीं रही।

परन्तु, रहस्यकी बात यह है कि, अत्याचार-उपद्रवका लेश-मात्र चिह्न भी रासबिहारीके किसी काममे कहीं भी मौजूद नहीं है। फिर भी वृद्धकी विनम्र स्नेह-सरस मङ्गलेच्छाकी आड़मे खड़े होकर कितना बड़ा दुर्निवार शासन उसे प्रतिपल ठेल ठेल कर जालके मुँहकी ओर बढ़ाये दे रहा है!—यह प्रत्यक्ष अनुभव करनेके साथ ही साथ अपनी उपाय-विहीनताका चित्र भी उसे ऐसा सुस्पष्ट दिखाई पड़ा कि एकान्त कमरेमे भी विजया आतङ्कसे सिहर उठी। सारी रात वह क्षण-भरके लिए भी सो नहीं सकी। वह अपने परलोकगत पिताको बार बार पुकार कर रो रो कर कहने लगी, "बापू, तुम तो इन लोगोंको पहचान गये थे, तब क्यों मुझे इस प्रकार इनके हाथमें सौंप कर चले गये?"

एक समय उसने खुद ही विलासको पसन्द किया था और उसके ही साथ मिलकर पिताकी इच्छाके विरुद्ध भी नरेन्द्रके सर्वनाशकी कामना की थी। वह कामना ही आज उसकी समस्त शुभ इच्छाओंको पराजित करके जयलाभ कर रही है, इसका खयाल करके उसका हृदय फटने लगा। वह बारबार कहने लगी कि स्नेहसे अन्धे होकर बापू इस सर्वनाशकी जड़को अपने हाथसे ही क्यों न उखाड़कर फेंक गये और क्यों मेरी ही बुद्धि-विवेचनापर सब छोड़ गये? और ऐसा ही यदि कर गये थे, तो क्यों मेरी स्वाधीनताका मार्ग इस प्रकार सब ओरसे बन्द कर गये? सारी तकिया भिगोकर वह केवल यही सोचने लगी कि इस क्रुद्ध अभिमानकी निष्फल शिकायत आज उन स्वर्गवासी पिताके कानोंमें क्या पहुँच नहीं रही है? आज प्रतिकारका उपाय क्या मेरे हाथमें रत्तीभर भी नहीं है?

दूसरे दिन परेशकी माँकी पुकारसे जिस समय विजयाकी नींद खुली, उस समय दिन चढ़ आया था। उसने उठते ही सुना कि उसका बाहरी कमरा निमन्त्रित व्यक्तियोंके अभ्यागमसे भर गया है—सिर्फ़ वही मौजूद नहीं है। वह त्रुटिको सुधारनेके लिए यथासाध्य जल्दी तो क्या करती—आज सारे दिनके उत्सवका हङ्गामा स्मरण आते ही मानो उसे एक तरहकी खीझ पैदा हो गई। शीतकालका प्रभात सूर्यालोक बगीचेके आमके पेड़ोंकी शिखा शिखा पर एकदम

फैल गया था। उनके पत्तोंकी फाँकोंमेंसे सामनेके मैदानसे होकर खेलते-कूदते और गोरू चराते हुए ग्वाल-बाल दिखाई पड रहे थे। जबसे वह देश आई है तबसे यह दृश्य देखते देखते किसी दिन भी उसके मनमें थकान नहीं आई थी। अनेक दिन अनेक ज़रूरी काम डाल रखकर भी वह बहुत देरतक इस दृश्यपर टकटकी लगाये बैठी रही है। परन्तु, आज वह सोच ही नहीं सकी कि इतने दिनोंतक इसमें कौन-सा माधुर्य था। बल्कि यह मानो एक बहुत पुरानी बासी चीजके समान उसे शुरूसे आखिर तक बेस्वाद प्रतीत हुआ। इस दृश्यसे जब उसने अपनी थकी हुई दोनों आँखें धीरे धीरे फिरा लीं, तभी देखा कि कालीपद एक डगमें तीन तीन सीढ़ियाँ पार करता हुआ ऊपर आ रहा है। आँखें चार होते ही वह बीचमें ही रुक गया और अत्यन्त व्यस्तताका इशारा करके हाथ उठाकर बोल उठा, "माजी, जल्दी कीजिए, जल्दी। छोटे बाबू बुरी तरहसे नाराज़ हो उठे हैं। आज कहीं इतनी देरी करनी चाहिए?"

किन्तु, आगकी चिनगारी बारूदके किसी ढेरमें पड़ कर जैसा विप्लव पैदा कर देती है, नौकरके इस सवादने विजयाके देह-मनमें भी ठीक वैसा ही भीषण विप्लव उत्पन्न कर दिया। उसे ऐसा मालूम हुआ, मानो उसके पैरोंके तलेसे लेकर बालोंके छोर तक एक ही क्षणमें एक प्रचण्ड अग्नि जल उठी है। लेकिन सहसा वह कोई बात कह न सकी। स्फटिकका टुकड़ा दोपहरकी सूर्य किरणोंसे जिस प्रकार ज्वलन्त तेज फैलाता है, उसी प्रकार उसकी दोनों जलती आँखोंसे भी असह्य ज्वाला निकलने लगी। कालीपद उन आँखोंकी ओर देख कर भयसे सूख गया। वह फिर कुछ कहना चाहता था कि विजयाने अपनेको सँभाल लिया और "तुम नीचे जाओ कालीपद!" कहकर उँगलीसे उसे नीचेकी तरफ इशारा कर दिया।

विजया जानती थी कि इस मकानमें 'छोटे बाबू' कहनेसे बिलासबिहारी और 'बडे बाबू' कहनेसे उसके पिताका बोध होता है। लेकिन, ये दोनों पिता-पुत्र यहाँ इतने बड़े बन बैठे हैं कि उनके गुस्सेकी गुरुता आज नौकर-चाकरोंके निकट मकानके मालिक तकको पार कर गई है, यह बात विजयाको आज ही पहले पहल मालूम हुई। आज उसने साफ साफ देखा कि इतने ही समयमें विलास यहाँका असली मालिक बन गया है और वह उसकी आश्रिता और सिर्फ अनुग्रहपर जीनेवाली है। यह कहना व्यर्थ ही है कि इस तथ्यने उसके मनकी आगमें जलधारा नहीं सींची।

आधे घण्टेके बाद वह जब हाथ-मुँह धोकर, कपड़े बदल कर तैयार हो गई और नीचे उतर आई, तब लोग चाय पी रहे थे उपस्थित सभी व्यक्तियोंने प्रायः उठ कर और खड़े होकर प्रणाम किया और उसके मुँह तथा आँखोंकी शुष्कता देखकर अनेक अस्फुट-कण्ठोंसे उद्विग्न प्रश्न ध्वनित हो उठे। किन्तु सहसा विलासबिहारीके तीव्र कटु-कण्ठमें वे सब डूब गये। वह अपना चायका प्याला टेबुलपर पटककर बोल उठा, " इस समय भी नींद न खुलती तो भी चल जाता ! मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि तुम्हारे व्यवहारसे क्रमशः डिस्गस्टेड ( तंग ) हो उठा हूँ। "

यह ठीक है कि उसे नाराजी प्रकट करनेका अधिकार था। लेकिन, बाहरके इतने लोगोंके सामने भावी पतिकी इस कर्तव्यपरायणताने अत्यन्त अधिक अभद्रताके रूपमें ही सबको विस्मित और व्यथित कर दिया। लेकिन विजयाने उसकी तरफ़ आँख उठाकर भी नहीं देखा। मानो कुछ भी न हुआ हो, ऐसे भावसे वह सबको ही प्रति-नमस्कार करके जहाँ बूढ़े आचार्य दयालबाबू बैठे थे, उस तरफ़ बढ़ गई। वृद्ध अत्यन्त सकुचित हो उठे। विजयाने उनके पास जाकर शान्त कण्ठसे कहा, " आपके चाय पीनेमें कोई विघ्न तो नहीं हुआ ? मुझसे अपराध हो गया—आज मैं जल्दी न उठ सकी। "

वृद्ध दयाल स्नेहार्द्र स्वरसे एकदम ' बेटी ' शब्दसे सम्बोधित करके बोल उठे, " नहीं बेटी, हममेंसे किसीको कोई असुविधा नहीं हुई। विलासबाबू और रासबिहारीबाबूने कहीं कोई त्रुटि नहीं होने दी। लेकिन, तुम तो उतनी अच्छी नहीं दिखाई पड़ रही हो बेटी, तबीयत तो कुछ खराब नहीं हो गई है ? "

ये हमेशा कलकत्तेमें नहीं रहते, इस लिए विजया पहलेसे इन्हें नहीं पहचानती थी। कल भी उसने इन्हें अच्छी तरह लक्ष्य करके नहीं देखा था। लेकिन आज कमरेमें पैर रखते ही इस वृद्धकी शान्त सौम्य मूर्तिने मानो बिलकुल अपने आदमीकी तरह उसे आकर्षित कर लिया। इसीलिए सबको बाद देकर वह इनके निकट आ खड़ी हुई। इस समय उनके ही स्निग्ध कोमल कण्ठ-स्वरसे उसके हृदयका दाह मानो आधा शान्त हो गया और सहसा उसे प्रतीत हुआ, न जाने कैसे उनके इस कण्ठ-स्वरमें उसके पिताके कण्ठ-स्वरका आभास मौजूद है।

दयाल एक कोचपर बैठे थे, बगलमें थोड़ी-सी जगह थी। उन्होंने उसी स्थानकी ओर निर्देश करके कहा, " खड़ी क्यों हो बेटी, बैठो यहाँ, तबीयत तो कुछ ख़राब नहीं हो गई ? "

विजया बगलमें बैठ अवश्य गई, लेकिन उत्तर न दे सकी, गरदन घुमाकर

दूसरी तरफ देखने लगी। आँसुओंको रोकना उसके लिए उत्तरोत्तर कठिन होता जा रहा था। वृद्धने फिर वही प्रश्न किया। प्रत्युत्तरमें इस बार विजयाने सिर हिलाकर किसी प्रकार केवल ' ना ' कह दिया।

रुँधे गलेका यह संक्षिप्त उत्तर वृद्धसे छिपा नहीं रहा। वे मुहूर्त-भरके लिए चुप रहकर, मामला समझ कर, मन ही मन कुछ हँसे। जो इस मकानके मालिककी जगहपर कुछ पहलेसे ही दखल जमा बैठा है, वह यदि अपनी प्रणयिनी गृहस्वामिनीसे कुछ कडुई बात करता है तो अनाड़ियोंको वह चाहे जैसी रूखी प्रतीत हो, परन्तु जो ज्ञानवृद्ध लोग यौवनका इतिहास पढ़कर ख़त्म कर चुके हैं, वे यदि मन ही मन कुछ हँसें, तो उन्हें दोष नहीं दिया सकता।

उस समय वृद्ध अपने समीप बैठी इस नवीना अभिमानिनीको सुस्थिर होनेका समय देनेके लिए खुद ही धीरे धीरे बातें करने लगे। इतनी थोड़ी उम्रमें इस सत्य-धर्मके प्रति उन लोगोंकी अविचलित निष्ठा और प्रीतिकी असंख्य प्रशंसा करके अन्तमें वे बोले, "भगवान्‌के आशीर्वादसे तुम लोगोंके महत् उद्देशकी दिन दिन श्रीवृद्धि हो। लेकिन बेटी, जिस मन्दिरकी तुमने अपने गाँवमें प्रतिष्ठा की है, उसे बनाये रखनेके लिए तुम लोगोंको बहुत परिश्रम, और बहुत स्वार्थत्याग करना पड़ेगा। मैं खुद भी तो गँवई-गाँवमें रहता हूँ, मैंने अच्छी तरह देख लिया है कि यह धर्म इस समय भी गँवई-गाँवका रस खींचकर मानो जीवित नहीं रह सकता। इसीलिए मुझे प्रतीत होता है कि यदि इसे वास्तवमें जीवित रख सको बेटी, तो, इस देशमें सचमुच एक बड़ी समस्याकी मीमांसा हो जाय। मैं सोच ही नहीं सकता कि तुम लोगोंके इस उद्यमको मैं क्या कह कर आशीर्वाद दूँ।"

विजयाके मुँह तक आ जाता था, कह दे कि, इस मन्दिर-प्रतिष्ठामें मुझे कोई उत्साह नहीं है, मैं इसकी लेशमात्र सार्थकता नहीं देखती। लेकिन इसे दबाकर उसने मृदु स्वरसे पूछा, " आप यह क्यों कह रहे हैं कि एक जटिल समस्याका समाधान हो जायगा ?"

दयालने कहा, "और नहीं तो क्या बेटी! मेरा आन्तरिक विश्वास है, बङ्गालके गाँवोंके करोड़ो कुसंस्कारोंसे सिर्फ हमारा यह धर्म ही मुक्ति दिला सकता है। लेकिन, साथ ही यह भी जानता हूँ कि जिसका जहाँ स्थान नहीं है, जिसका जहाँ प्रयोजन नहीं है, वहाँ वह बचता नहीं। परन्तु चेष्टा और यत्नसे यदि एकको भी बचाया जा सके, तो, वह क्या एक भारी आशा-भरोसाका आश्रय नहीं होगा ? अपने बङ्गाली घरोंके दोष-गुणकी बात तुम खुद भी तो कम नहीं जानतीं बेटी! उन

सबके विषयमें अपने हृदयमें अच्छी तरह थोड़ी गहराईसे तो सोचकर देखो।"

विजया और प्रश्न न करके मौन होकर सोचने लगी। स्वदेशकी मङ्गल-कामना उसमें सचमुच स्वभावसे ही थी, आचार्यकी अन्तिम बातसे वह आलोड़ित हो उठी। मन्दिर-प्रतिष्ठाके सिलसिलेमें भारी नाम कमानेकी आड़में ही विलास उसके हृदयके अत्यन्त व्यथाके स्थानको बार बार आघात कर रहा था। वह वेदनासे छटपटा रही थी, फिर भी प्रतिघात करनेका कोई उपाय नहीं था, इसलिए उसका पूरा मन इस सारे मामलेके विरुद्ध विद्वेषसे प्रायः अन्धा हो उठा था। लेकिन दयालने जब अपनी प्रशान्त मूर्ति और स्नेहयुक्त वाणीके आह्वानसे विलासकी चेष्टाकी इस विशेष दिशाकी ओर ऑख खोलकर देखनेके लिए अनुरोध किया, तब विजयाने सचमुच ही अपना भ्रम देख पाया। उसे प्रतीत होने लगा, विलास वास्तवमें हृदयहीन और क्रूर नहीं है, उसकी कठोरता शायद धर्मके प्रति प्रबल अनुरक्तिको ही प्रकट करती है। मनुष्यके इतिहासमें इस प्रकारके दृष्टान्तोंका अभाव नहीं है। उसे स्मरण आया, उसने कहीं मानो पढ़ा है कि संसारमें बड़े कार्य भी किसी न किसीके लिए हानिकर होते हैं। जो लोग यह कार्य-भार अपनी इच्छासे ग्रहण करते हैं, वे अनेकके मङ्गलकी दृष्टिसे साधारण हानिकी ओर ऑख उठाकर देखनेका अवसर नहीं पाते। इसी लिए अनेक स्थलोंपर संसार उन्हें निर्दय निष्ठुर आदि कहता है। चिरकालकी शिक्षा और संस्कारके कारण विजयाके मनमें ब्राह्म-धर्मके प्रति किसीकी भी अपेक्षा कम अनुराग नहीं था। उस धर्मके विस्तारपर देशका इतना अधिक मङ्गल निर्भर करता है, यह जानकर, उसका उच्चशिक्षित सत्यप्रिय अन्तःकरण उसी क्षण विलासको मन ही मन क्षमा किये बिना रह नहीं सका। यहाँ तक कि, वह अपने आप ही कहने लगी 'संसारमें जो लोग बड़े काम करनेको आते हैं, उनका व्यवहार हमारे समान साधारण लोगोंके साथ यदि अक्षर अक्षर न मिले, तो उन्हें दोष देना असङ्गत है, यहाँ तक कि, अन्याय है; और अन्यायको अन्याय समझकर मैं किसी भी तरह आश्रय न दे सकूँगी।'

समय अधिक हो जानेसे सब लोग एक एक करके उठ रहे थे। विजया भी उठकर खड़ी हो गई। रासबिहारीने लड़केको अलग बुलाकर कुछ कहा और तब वह इस सुयोगके लिए मानो प्रतीक्षा ही कर रहा था, इस प्रकार समीप आकर बोला, "तुम्हारी तबीयत क्या आज सबेरेसे अच्छी नहीं है विजया?"

आध घण्टे पहले भी शायद इस प्रश्नकी एकदम उपेक्षा करके कोई भी एक

बात कह देनेसे काम चल जाता, लेकिन इस समय विजयाने मुँह उठाकर देखा और सहज भावसे कहा, "नहीं, अच्छी ही हूँ। कल रातको नींद नहीं आई इसी लिए जान पड़ता है, कुछ अस्वस्थ दिखाई पड़ रही हूँ।"

विलासका मुँह आनन्दसे उज्ज्वल हो उठा। ऐसे बहुतसे लोग हैं जो आघातके बदले प्रतिघात किये बिना किसी तरह नहीं रह सकते। अपनी भारी हानि समझकर भी नहीं रह सकते। विलास उन्हींमेंसे एक था। उसके प्रति विजयाका आचरण जितना ही अप्रीतिकर होता था, उसका निजका आचरण भी उतना ही अधिक निष्ठुर होता जा रहा था।

इस प्रकार जब घात-प्रतिघातकी आग प्रतिक्षण प्राणलेवा होने लगी थी, और पके बालोंके ज्ञानी पिताका पुनः पुन अत्यन्त आग्रहयुक्त अनुयोग, सहिष्णुताके परम लाभ और चरम सिद्धिके सम्बन्धमें गुरु-गम्भीर उपदेश अज्ञानी उद्धत लड़केके किसी भी काम नहीं आ रहे थे, तब विजयाके मुँहके इस एक कोमल वाक्यने विलासके स्वभावको मानो बदल दिया। उसने अपना स्वाभाविक कर्कश कण्ठ जहाँतक सम्भव हो सकता था करुण करके कहा, "तो फिर अब तुम इस वक्त धूपमें बाहर मत निकलना। जल्दी ही स्नान भोजनसे निबट कर थोड़ा सो लेनेका प्रयत्न करो। सीजन-चेञ्जका समय अच्छा नहीं होता—कहीं तबीयत खराब न हो जाय।" यह कहकर और चेहरेसे उत्कण्ठा व्यक्त करके जान पड़ा कि शायद अपने व्यवहारके लिए वह क्षमा माँगनेको भी उद्यत हुआ, लेकिन, यह बात उसके स्वभावमें शायद बिलकुल ही नहीं थी, इसीलिए और कुछ न कह कर वह तेजीके साथ आगत सज्जनोंका अनुसरण करके बाहर निकल गया।

जितनी दूर दिखाई पड़ा, विजया उसकी ओर देखती रही। उसके बाद एक उसाँस लेकर धीरे धीरे अपने ऊपरके कमरेमें चली गई। कुछ समयसे जो अव्यक्त पीड़ा काँटेके समान उसके मनमें प्रतिक्षण चुभ रही थी, आज उसे अकस्मात् जान पड़ा कि उसका मानो अब पता ही नहीं है।

सन्ध्या उत्तीर्ण होनेपर मन्दिरकी प्रतिष्ठा यथारीति सम्पन्न हो गई। भीतरके एक विशेष स्थानमें दो अच्छी कुर्सियाँ पास पास रक्खी गई थीं, उनमेंसे एकमें जब विजयाको अत्यन्त समारोहके साथ बैठाया गया तब बगलका दूसरा आसन किसके द्वारा पूर्ण होनेकी प्रतीक्षा कर रहा है, यह समझनेमें किसीको देर नहीं लगी। एक क्षणके लिए विजयाके मनके भीतर हू हू अवश्य कर उठा, किन्तु, पश्चात् ही जब विलासने आकर अपना निर्दिष्ट स्थान ग्रहण कर लिया तब उस

ज्वालाके शान्त होनेमें भी अधिक समय नहीं लगा।

## १५

जले हुए अनारदानेके खोलकी तरह तुच्छ वस्तुके समान इस ब्राह्म-मन्दिरसे भी कहीं समारोहका अन्त होनेपर लोगोंकी दृष्टि अवज्ञापूर्वक हट न जाय, इस आशङ्काके कारण विलासबिहारी उत्सवका सिलसिला किसी तरह समाप्त ही करना नहीं चाहता था। लेकिन, जो लोग निमन्त्रण पाकर आये थे, उनके घर-द्वार थे, काम-काज था, दूसरेके खर्चपर केवल आनन्द मनाते पड़े रहनेसे उनका काम नहीं चल सकता था, इसलिए एक दिन उत्सवका अन्त करना ही पड़ा। उस दिन बूढ़े रासबिहारी छोटी-सी एक वक्तृता देकर अन्तमें बोले, "जिनकी असीम करुणासे हम लोग पौत्तलिकताके* घोर अन्धकारसे आलोकमें आ सके हैं, उन्हीं एकमेवाद्वितीयम् निराकार परब्रह्मके पाद-पद्ममें यह मन्दिर जिन लोगोंने उत्सर्ग किया है, उनका कल्याण हो। मैं सर्वान्तःकरणसे प्रार्थना करता हूँ कि निकट भविष्यमें ये दोनों निर्मल नवीन जीवन चिरकालके लिए सम्मिलित हों और वह शुभ मुहूर्त देखनेके लिए भगवान् हम लोगोंको जीवित रक्खें।" यह कहकर उन्होंने उन दोनों नवीन जीवनोंके प्रति दृष्टिपात करके कहा, "बेटी विजया, विलास, तुम इन सबको प्रणाम करो। आप लोग भी हमारी सन्तानोंको आशीर्वाद दें।"

विजया और विलासने पृथ्वीपर पास ही पास सिर टेक कर बड़े बूढ़े ब्राह्मोंको प्रणाम किया, उन लोगोंने भी अस्फुट कण्ठसे इन्हें आशीर्वाद दिया। इसके बाद सभा भङ्ग हो गई।

शामके बाद विजया जब घर आ पहुँची तब उसके मनमें कोई विरोध, कोई चञ्चलता नहीं थी। धर्मके आनन्द और उत्साहसे उसका हृदय ऐसा परिपूर्ण हो उठा था कि वह अपने आप ही कहने लगी 'पार्थिव सुख ही एकमात्र सुख नहीं है—बल्कि धर्मके लिए, दूसरोंके लिए उस सुखकी बलि देना ही एकमात्र श्रेय है।'

यह बात उसने अपने मनको जोर देकर समझाई कि भले ही विलासके साथ उसके मतका और कहीं मेल न हो, पर धर्मके सम्बन्धमें हमारे बीच किसी दिन विरोध उत्पन्न नहीं होगा। बिछौनेपर लेटकर वह बार बार यही सोचने लगी—यह अच्छा ही हुआ कि विलासके समान एक स्थिरसङ्कल्प, धर्मपरायण, कर्तव्यनिष्ठ

*बुतपरस्ती, मूर्तिपूजा।

व्यक्तिके साथ मेरा जीवन चिरदिनके लिए मिलने जा रहा है। भगवान मेरे द्वारा अपने अनेक काम पूरे करा लेंगे इसीलिए उन्होंने मेरे मनकी गति बदल दी है।

दूसरे दिन विलासने सबसे हाथ जोड़ कर निवेदन किया, "आप लोग यदि महीनेमें कमसे कम एक बार भी आकर मन्दिरकी मर्यादा बढ़ा जाया करें तो हम लोग आजीवन कृतज्ञ रहेंगे।" अनेक व्यक्ति इस अनुरोधको स्वीकार करके ही घर लौटे।

रासबिहारी आकर बोले, "बेटी विजया, तुम लोग यदि अपने मन्दिरका स्थायित्व चाहते हो तो दयाल बाबूको यहाँ रखनेका यत्न करो।"

विजयाने विस्मित और पुलकित होकर पूछा, "यह क्या सम्भव है काकाजी?"

रासबिहारीने हँसकर कहा, "सम्भव नहीं होता तो कहता कैसे बेटी? उन्हें मैं लड़कपनसे जानता हूँ,—एक प्रकारसे मेरे बाल्यबन्धु ही हैं। गरीब होनेपर भी दयाल खालिस आदमी हैं। तुम्हारी जमींदारीमें कोई एक काम देकर उन्हें सहज ही रक्खा जा सकता है। मन्दिरके मकानमें भी कमरोंकी कमी नहीं है, दो-चार कमरे लेकर वे मजेसे सपरिवार रह सकते हैं।"

इन वृद्ध सज्जनके प्रति विजयाको सच्ची श्रद्धा हो गई थी। उनकी सांसारिक हीन अवस्थाकी बात सुनकर उस श्रद्धामें करुणाने योग दिया। वह उसी क्षण रासबिहारीके प्रस्तावका सानन्द अनुमोदन करके बोली, "उन्हें यहीं रखिए। मैं सचमुच ही बहुत खुश होऊँगी काकाजी।"

वही हुआ। दयालने आकर सपरिवार आश्रय ग्रहण कर लिया।

दिन कटने लगे। पूस समाप्त होकर आधा माघ भी बीत गया। जमींदारी और मन्दिरका काम सिलसिलेसे चलने लगा। कहीं भी कोई विरोध या अशान्ति है, यह किसीकी कल्पनामें भी उदय नहीं हुआ।

नरेन्द्रकी कोई खबर नहीं मिली। मिलती भी क्या? सिर्फ दो दिनके लिए वह देश आया था, दो दिनके बाद चला गया। तो भी, ज्यों ही उस माइक्रोसकोपकी ओर विजयाकी दृष्टि जाती थी त्यों ही एक व्यथा उसके मनमें जाग उठती थी। वह सोचती थी, यदि उसके उस नितान्त दुःसमयमें इस चीजका मूल्य कुछ अधिक दे दिया जाता तो अच्छा होता। और एक बात स्मरण आनेपर उसे जितना आश्चर्य होता, उतनी ही वह कुण्ठित भी हो उठती थी। दो दिनकी जान-पहचानसे ही न जाने कैसे इस व्यक्तिके प्रति उसे इतना स्नेह उत्पन्न हो गया था! भाग्यवश

वह प्रकाशित नहीं हुआ। नहीं तो मिथ्या मोह एक दिन मिथ्यामें तो मिल ही जाता,—लेकिन, उसकी लज्जाके छुपानेके लिए जीवनभर कहीं जगह न मिलती। इसीलिए उन दो दिनोंके स्नेह-ममताके पात्रकी ज्यों ही उसे याद आती त्यों ही वह प्राणपणसे उसे दूर ठेल देती। इस तरह माघका महीना भी बीत गया।

फागुनके आरम्भमें ही सहसा अत्यन्त गरमी पड़ी और चारों तरफ बुखार फैलने लगा। दो दिनसे दयालबाबू बुखारमें पड़े थे। आज सबेरे उन्हें देखने जानेके लिए विजया कपड़े पहनकर बिल्कुल तैयार होकर नीचे उतरी थी। बूढा दरवान कन्हैयासिंह लाठी लानेके लिए अपने कमरेमें गया था और इसी अवकाशमें बाहरके कमरेमें बैठकर वह एक प्याला चाय पी रही थी।

"नमस्का–र।"

विजयाने चौंककर मुँह उठाकर देखा, नरेन्द्र कमरेमें आ रहा है।

उसके हाथका प्याला हाथमें ही रह गया, वह अभिभूतके समान निःशब्द आँखे खोले देखती रही। न उसने प्रति-नमस्कार किया और न बैठनेको कहा।

एक कुर्सीकी पीठसे नरेन्द्रने अपना डण्डा टिका दिया और वह एक कुर्सी खींचकर बैठ गया। उसने कहा, "इस कामसे तो मैं भी नहीं निबट पाया हूँ। और एक प्याला चाय लानेका हुक्म दे दीजिए।"

"देती हूँ" कहकर विजया हाथका प्याला नीचे रखकर बाहर चली गई। लेकिन, कालीपदसे कह देकर ही उसी क्षण लौटकर नहीं आ सकी। वह ऊपर चढनेकी सीढ़ीकी रेलिंग पकड़कर चुपचाप खड़ी रह गई। उसका अन्तस्तल भीषण तूफानसे समुद्रके समान पागल हो उठा था। यह वह जानती ही न थी कि किसी भी कारणसे मनुष्यका हृदय इस प्रकार हिल उठ सकता है।

फिर भी वह साफ़ साफ समझ रही थी कि जब तक यह आन्दोलन शान्त नहीं हो जाता है, तब तक किसीसे भी सहज भावसे बातचीत करना असम्भव है। पाँच-छः मिनट चुपचाप खड़ी रहकर जब उसने देखा कि कालीपद चाय लेकर जा रहा है, तब उसने भी उसके पीछे पीछे कमरेमें प्रवेश किया।

कालीपदके चले जानेपर नरेन्द्रने विजयाके मुँहकी ओर देखकर कहा "आप मन ही मन बहुत विरक्त हो रही होंगी कि आप कहीं बाहर जा रही थीं, और मैंने बीचमें आकर बाधा डाली। लेकिन, मै आपको पाँच मिनटसे अधिक न रोकूँगा।"

विजयाने कहा, "अच्छा, पहले आप चाय पीजिए।" सहसा पश्चिम दिशाकी खिड़कीकी ओर दृष्टि जाते ही उसने आश्चर्यमें पड़कर पूछा, "उस

खिड़कीको कौन खोल गया ? ”

नरेन्द्र बोला, “ कोई नहीं, मैंने ही खोला है। ”

“ किस तरह खोला ? ”

“ जिस तरह सब लोग खोलते हैं—खींचकर। क्या कोई अपराध हो गया ? ”

विजयाने सिर हिलाकर कहा “ नहीं, ” और फिर कुछ क्षणों तक उसकी लम्बी पतली उंगलियोंकी ओर देखते हुए कहा, “आपकी उँगलियाँ क्या लोहेकी हैं ? इस खिड़कीके बन्द होनेपर पीछेसे जोरसे धक्का मारे बिना सिर्फ खींचकर खोल सके, ऐसा आदमी मैंने तो नहीं देखा। ”

यह सुनकर नरेन्द्रने हो हो करके अट्टहास करके घर भर दिया। यह वही हँसी है, स्मरण आनेपर विजयाका सर्वाङ्ग कण्टकित हो उठा। हँसी रुकनेपर नरेन्द्रने सहज भावसे कहा, “सचमुच, मेरी अँगुलियाँ बड़ी कड़ी हैं। यदि जोरसे दबा कर पकड़ लूँ तो मैं समझता हूँ कि किसी भी व्यक्तिका हाथ टूट जा सकता है। ”

विजयाने हँसी दबाकर गभीर मुँहसे कहा, “ और आपका सिर इनसे भी कड़ा है। टक्कर लगनेसे—”

बात समाप्त होनेके पहले ही नरेन्द्र फिर उसी प्रकार उच्च हास्य कर उठा। इस व्यक्तिकी हँसी प्रभातके आलोकके समान ऐसी मधुर, ऐसी उपभोगकी वस्तु है कि उसके सुननेका किसी प्रकार लोभ संवरण ही नहीं किया जा सकता।

नरेन्द्रने पाकेटसे दो सौ रुपयोंके नोट निकालकर टेबुलपर रख दिये और कहा,“ उसीके लिए आया हूँ। मैं चालबाज हूँ, ठग हूँ, इस तरहकी और भी न जाने कितनी गालियाँ इन थोड़ेसे रुपयोंके लिए आपने कहला भेजी थीं। लीजिए अपने रुपए, और दीजिए मेरी चीज। ”

विजयाका मुँह पलक-भरमें लाल हो उठा, किन्तु, उसी समय अपनेको सँभालकर वह बोली “ और क्या क्या कहला भेजा था बताइए तो ? ”

नरेन्द्रने कहा, “ इतना मुझे याद नहीं है। उसे लानेके लिए कह दीजिए, मैं साढ़े नौकी गाड़ीसे ही कलकत्ते लौट जाऊँगा। अच्छा हुआ कि मैं कलकत्तेमें ही एक अच्छी नौकरी पा गया हूँ, मुझे उतनी दूर नहीं जाना पड़ा। ”

विजयाका मुँह उज्ज्वल हो उठा, उसने कहा, “आपका भाग्य अच्छा है।”

नरेन्द्र बोला, “ हाँ। लेकिन, मेरे पास अधिक समय नहीं है, नौ बज रहे हैं। ” निमेष-भरमें ही विजयाके मुँहकी दीप्ति बुझ गई; लेकिन, नरेन्द्रने उस

ओर लक्ष्य ही नहीं किया, और कहा, " मुझे अभी जाना होगा,—उसे लानेको कह दीजिए।"

विजया उसके मुँहकी तरफ आँखे उठाकर बोली, "क्या आपसे यही शर्त हुई थी कि आप दयापूर्वक रुपए लाये हैं, इसलिए तुरन्त ही मुझे उसे लौटा देना होगा ?"

नरेन्द्रने लज्जित होकर कहा, " नहीं, ऐसा तो नहीं है, लेकिन आपको तो उसकी कोई आवश्यकता नहीं है।"

" यह आपसे किसने कहा कि इस वक्त नहीं है, इसलिए और किसी दिन भी आवश्यकता न होगी ?"

नरेन्द्रने सिर हिलाकर कहा, " मैं कहता हूँ, वह वस्तु आपके किसी भी काम नहीं आयेगी। पर मेरे—"

विजयाने उत्तर दिया, " परन्तु बेचकर जानेके समय तो आपने कहा था कि इससे मेरा बड़ा उपकार होगा। और मेरे यह कहला भेजनेसे कि आप मुझे ठग ले गये हैं आप नाराज़ हो रहे हैं! उस समय एक तरहकी बात, और अब दूसरे तरहकी बात ?"

नरेन्द्र लज्जासे एकदम मलिन हो गया। जरा देर चुप रहकर बोला, "देखिए, तब मैंने सोचा था कि इस बढ़िया चीजको आप व्यवहारमे लायेंगी, इस प्रकार न डाल रक्खेंगीं। अच्छा, आप तो चीज़ गिरो रखकर भी रुपए उधार देती हैं, तब इसे भी क्यों न ऐसा ही समझ लीजिए। मैं इन रुपयोंका सूद देता हूँ।"

विजयाने कहा, " कितना सूद दीजिएगा ?"

नरेन्द्र बोला, " जो कुछ वाजिब सूद हो, मैं देनेको राजी हूँ।"

विजयाने गरदन हिलाकर कहा, " पर मैं राजी नहीं हूँ। कलकत्तेमे जँचवाकर देखा है, इसे मैं चार सौ रुपयेंमें सहज ही बेच सकती हूँ।"

नरेन्द्रने सीधे खड़े होकर कहा, " तो वही कीजिए, जाइए, मुझे आवश्यकता नहीं है। जो दो सौ रुपयोंमें चार सौ रुपए चाहता है, उससे मैं कुछ भी नहीं कहना चाहता।"

विजयाने मुँह नीचा करके, प्राणपणसे हँसी दबाकर जिस समय मुँह उठाया उस समय केवल इस व्यक्तिको छोड़कर संसारमें और किसीके भी सामने, जान पड़ता है, वह अपने मनका भाव न छिपा सकती। लेकिन उस ओर नरेन्द्रकी दृष्टि ही न थी, इसलिए उसने तीक्ष्ण भावसे कहा, " यदि मैं जानता कि आप ऐसी

शाईलाक हैं, तो मैं कभी न आता।"

विजयाने भले आदमीकी तरह कहा, "कर्जेकी अदायगीमें जब मैंने आपका सब कुछ हड़प कर लिया था, उस समय भी नहीं जाना?"

नरेन्द्रने कहा, "नहीं। क्योंकि, उसमें आपका हाथ नहीं था। वह काम आपके पिता और मेरे पिता दोनों कर गये थे। उसके लिए हम कोई अपराधी नहीं हैं। अच्छा, अब मैं चला।"

विजयाने कहा, "खाकर नहीं जाइएगा?"

नरेन्द्रने उद्धत भावसे कहा, "नहीं, खानेके लिए नहीं आया।"

विजयाने शान्त भावसे पूछा, "अच्छा, आप तो डाक्टर हैं,—आप हाथ देखना जानते हैं?"

इस बार उसके ओठोंमें हँसीकी रेखा पकड़ाई दे गई। नरेन्द्र गुस्सेसे जल कर बोला, "क्या मैं आपके उपहासका पात्र हूँ? रुपए आपके पास ढेरों हो सकते हैं, लेकिन उनके बलपर यह अधिकार किसीको नहीं मिल जाता सो समझ रखिए। आप ज़रा हिसाबसे बात करिए," कह कर उसने डण्डा उठा लिया।

विजयाने कहा, "नहीं तो, आपके शरीरमें बल है और हाथमें डण्डा है, यही न?"

नरेन्द्र डण्डा फेककर हताश भावसे कुर्सीपर बैठ गया और बोला, "छि छि, आप जो मुँहमें आता है, वही कह देती हैं। आपसे मैं नहीं जीत सकता।"

"लेकिन देखिए, इस बातको याद रखिएगा।" यह कहकर वह अपनेको और न सँभाल सकनेके कारण हँसी दबाती हुई फुर्तीसे चल दी।

सूने कमरेमें नरेन्द्र हतबुद्धिके समान कुछ क्षण बैठे रहनेके बाद अन्तमें अपना डण्डा हाथमें ले ज्यों ही उठ कर खड़ा हुआ, त्यों ही विजयाने कमरेमें आकर कहा, "आपके ही कारण मुझे देर हो गई, इसलिए अब आप भी नहीं जा सकेंगे। आप हाथ देखना जानते हैं, चलिए मेरे साथ।"

नरेन्द्रने जानेकी बातपर विश्वास नहीं किया। तथापि पूछा, "हाथ देखने कहाँ जाना होगा?"

उसके मुँहकी ओर लक्ष्य करके विजया इस बार गम्भीर हो गई। उसने कहा, "यहाँ अच्छे डाक्टर नहीं हैं। हम लोगोंके जो नये आचार्य होकर आये हैं,—उनपर मेरी अत्यन्त श्रद्धा है—आज दो दिन हुए, उन्हें बहुत बुखार आ रहा है, चलिए एक बार देख आइए।"

"अच्छा, चलिए।"

विजयाने कहा, " तो जरा खड़े रहिए। उस परेश लड़केको तो आप पहचानते हैं,—परसोंसे उसे भी बुखार है। मैंने उसे उसकी मासे यहाँ ले आनेको कह दिया है।"

इतनेमें ही परेशकी मा लड़केको आगे करके दरवाजेके पास आकर खड़ी हो गई। नरेन्द्रने उसकी ओर थोड़ी देर दृष्टिपात करके कहा, " अपने लड़केको ले जाओ माई, मैंने उसे देख लिया है।"

लड़केकी मा और विजया दोनों चकित हो रहीं। माने विनतीके स्वरमें कहा, "सारे शरीरमें भयानक दर्द है बाबू, नाड़ी देखकर कोई दवाई-अवाई दे देते-"

" दर्द मैं समझता हूँ माई, अपने बच्चेको घर ले जाओ, हवा अवा मत लगा देना। दवाई मैं भेजे देता हूँ।"

मा कुछ दुखी होकर लड़केको लेकर चली गई। तब नरेन्द्रने विजयाके विस्मित मुँहकी ओर देखकर कहा, " इस ओर चेचक बहुत फैली है और इस लड़केके मुँहपर भी चेचकके स्पष्ट चिह्न हैं। ज़रा सावधानीसे रखनेको कह दीजिएगा।"

विजयाका मुँह काला पड़ गया,—" चेचक ! चेचक क्यों होगी ?"

नरेन्द्रने कहा, " क्यों होगी, सो लम्बी कथा है। लेकिन हुई है। आज ही यद्यपि अच्छी तरह दिखाई नहीं पड़ेगी, लेकिन कल उसकी ओर देखते ही जान लीजिएगा। मुझे जान पड़ता है, आपके आचार्य महाराजको देखनेकी भी अब विशेष आवश्यकता नहीं है। उनकी बीमारीका भी सम्भवतः कल तक ठीक पता लग जायगा।"

डरके मारे विजयाका सारा शरीर सनसना उठा। वह अवश निर्जीवके समान कुर्सीपर टिककर बैठ गई और अस्फुट कण्ठसे बोली, " मुझे भी निश्चय चेचक निकलेगी नरेन्द्र बाबू, मुझे भी कल रातको बुखार आया था, मेरी देहमें भी भयानक पीड़ा है।"

नरेन्द्र हँसा, उसने कहा, " पीड़ा भयानक नहीं है, भयानक है आपका डर। यदि बुखार कुछ आ ही गया हो, तो उससे क्या होता है ? आस पास चेचक दिखाई पड़ रही है इसलिए गाँव-भरके सब लोगोंके चेचक निकल आयगी, इसका तो कोई मतलब नहीं है।"

विजयाकी दोनों आँखें छल छल कर उठीं, " निकलेगी तो मेरी देख-भाल कौन करेगा ? मेरा कौन है ?"

नरेन्द्रने फिर हँसकर कहा, " देख-भाल करनेवाले लोग बहुत मिल जायँगे,

उसकी चिन्ता नहीं है, " लेकिन आपको कुछ भी नहीं होगा।"

विजया हताश भावसे सिर हिलाकर बोली, " न हो, सो ही अच्छा है। लेकिन कल रातको मुझे सचमुच ही बहुत बुखार हो गया था। तो भी सबेरे ज़बर्दस्ती उसे झाड़-फेंककर दयाल बाबूको देखने जा रही थी। इस समय भी मुझे थोड़ा थोड़ा बुखार है, यह देखिए।" कहकर उसने दाहना हाथ बढ़ा दिया। नरेन्द्रने निकट जाकर उसका कोमल शिथिल हाथ अपने शक्तिमान् हाथमें लेकर और कुछ देर बाद छोड़ देकर कहा, " आज अब कुछ खाइएगा नहीं, चुपचाप पड़ी रहिए। कोई डर नहीं है, कल-परसों मैं फिर आऊँगा।"

" आपकी दया ", कहकर विजया आँखें मूँदकर मौन हो गई। लेकिन, बात तीरके समान नरेन्द्रके मर्म-मूलमें जाकर बिंध गई। अवश्य प्रत्युत्तरमें और कोई बात उसने नहीं कही, लेकिन चुपचाप डण्डा उठाकर जब वह कमरेसे बाहर निकल गया, तब इस भयार्त रमणीके असहाय मुखकी दया-भिक्षा उसके बलिष्ठ पुरुष-चित्तको एक किनारेसे दूसरे किनारे तक मथने लगी।

दूसरे दिन कामकी भीड़में किसी प्रकार भी वह कलकत्ता नहीं छोड़ सका। लेकिन उसके दूसरे दिन सबेरे नव बजेके भीतर ही वह गाँवमें आ पहुँचा। मकानमें पैर रखते ही कालीपदने तुरन्त आकर कहा, " माजीको बहुत बुखार है बाबू, आप एक बार ऊपर चलिए।"

नरेन्द्र जिस समय विजयाके कमरेमें जाकर उपस्थित हुआ, उस समय वह तेज बुखारके मारे शय्यापर पड़ी छटपटा रही थी। एक प्रौढ़ा नारी घूँघटसे मुँह ढँककर सिरहानेके निकट बैठी पखेसे हवा कर रही थी और समीप ही कुर्सियोंपर पिता-पुत्र रासबिहारी और विलासबिहारी असाधारण रूपसे गम्भीर मुँह किये बैठे थे। यह बतलानेकी जरूरत नहीं कि दोनोंमेंसे किसीका भी चित्त डाक्टरके आगमनसे आशा और आनन्दसे नहीं नाच उठा। विलासबिहारीने भूमिकाको लेशमात्र बढ़ाये बिना सीधे ही पूछा, " आप ही तो परसों आकर चेचकका डर दिखा गये थे ! "

बात इतनी अधिक झूठ थी कि सहसा उसका कोई जवाब ही नहीं दिया जा सकता था। लेकिन प्रश्न सुनकर विजयाने अपनी लाल आँखें खोलकर देखा। पहले वह मानो कुछ समझ ही नहीं सकी, उसके बाद दोनों बाँहें बढ़ाकर उसने कहा, " आइए।"

निकट और कोई आसन न होनेके कारण नरेन्द्र उसकी शय्याके ही एक

छोरपर जाकर बैठ गया। निमेष-भरमें ही विजयाने दोनों हाथोंसे जोरके साथ उसका हाथ दबाकर कहा, "आप कल आ जाते तो आज मुझे इतना बुखार न होता। मैं सारे दिन राह ताकती रही।"

नरेन्द्र डाक्टर ठहरा, उसे समझनेमें देर नहीं लगी कि तेज बुखार उग्र शराबके नशेके समान अनेक आश्चर्यप्रद बातें मनुष्यके भीतरसे खींच लाता है; लेकिन स्वस्थ अवस्थामें उसका अस्तित्व, न मुँहमें न हृदयमें, कहीं भी शायद नहीं रहता। लेकिन उन्हें सुनकर समीप ही बैठे दुर्भागी पिता-पुत्रके सिरके बाल तक क्रोधसे कण्टकित हो उठे। नरेन्द्रने सहज सान्त्वनाके स्वरमें प्रसन्नमुखसे कहा, "डर क्या है, बुखार दो दिनमें ही अच्छा हो जायेगा।"

विजयाने उसका हाथ एकदम हृदयके ऊपर खींचकर अत्यन्त करुण सुरसे कहा, "लेकिन मैं जब तक अच्छी न हो जाऊँ, बोलो, कि तुम तब तक कहीं नहीं जाओगे—तुम चले गये तो मैं शायद बचूँगी नहीं।"

जवाब देनेको उद्यत नरेन्द्रके मुँह खोलते ही दो जोड़ी भीषण आँखोंसे उसकी आँखें लड़ गईं। उसने देखा कि जिस प्रकार भूखा बाघ अत्यन्त निकटवर्ती निःशङ्कचित्त शिकारको फाँद पड़नेके पहले देखता है, विलासबिहारी भी ठीक उसी प्रकार दो प्रदीप्त आँखें खोले उसकी तरफ देख रहा है।

## १६

नरेन्द्र अवाक् होकर देखता रहा,—विजयाके प्रश्नका उत्तर नहीं दिया जा सका। आँखोंकी हिंस्र दृष्टि केवल मनुष्य ही नहीं, बहुतसे जानवर तक समझ जाते हैं, इसलिए वह चाहे जितना सीधा व्यक्ति हो और ससारकी जानकारी उसे चाहे जितनी कम हो, इस बातको वह पलक मारते ही जान गया कि उन कुर्सियोंपर बैठे पिता-पुत्रकी दृष्टि और चाहे जो भाव व्यक्त करती हो, हृदयकी प्रीति व्यक्त नहीं करती। वह जानता था कि ये लोग मुझपर प्रसन्न नहीं हैं, विजयाको जब वह माइक्रोसकोप दिखाने लाया था तब अपने कानोंसे भी उनकी अनेक बातें सुन गया था और जिस दिन रासविहारी अपने हाथसे कीमत देने उसके मकानपर गये थे, उस दिन भी हितोपदेशके छलसे वे कम कड़ी बातें सुना कर नहीं लौटे थे। लेकिन, वह यह नहीं सोच सका कि जब विजया ठगी नहीं गई और चीज जब दो सौकी जगहपर चार सौमें बिक सकती है, जाँच हो चुकी है, तब उस ओरसे क्यों अब भी उनका रोष बना हुआ है। अब रहा चेचकका

डर दिखा जाना। सो वह डर दिखाकर तो गया नहीं,—बल्कि बात इससे एकदम उलटी है। यह झूठ और किसीने फैलाया, या विजयाके निजके मुँहसे ही फैला, यह निश्चित करनेके पहले ही विलासबिहारी और एक बार चीत्कार कर उठा। कालीपदने, जान पड़ता है, केवल कुतूहलवश ही थोड़ा-सा पर्दा हटाकर मुँह बढ़ाया था कि विलासकी दृष्टि उसपर पड़ गई और वह एकाएक हिन्दीमें गरज उठा। बहुत सम्भव है, हिन्दी भाषा अधिक क्रोध व्यक्त कर सकती हो। उसने कहा, " अरे ओ सुअरके बच्चे, एक कुर्सी ले आ। "

कमरेके सभी लोग चौंक उठे। कालीपद ' सुअरके बच्चे ' और ' ले आ ' शब्दका अर्थ तो समझ गया, लेकिन ' कुर्सी ' आखिर क्या चीज है, सो अन्दाज न कर पानेके कारण कमरेमें कभी इस ओर, और कभी उस ओर मुँह घुमाकर देखने लगा। वृद्ध रासबिहारीने अपनेको सवरण कर लिया था, उन्होंने गम्भीर स्वरसे कहा, " उस कमरेमेंसे एक चेयर ले आओ कालीपद, और बाबूको बैठनेके लिए दो। " कालीपदके शीघ्रतासे चले जाने पर, वे लड़केकी तरफ मुखातिब होकर अपने शान्त उदार कण्ठसे बोले, "यह रोगीका कमरा है—ऐसे हेस्टी* मत बनो विलास। ×टेम्पर लूज़ करना किसी भी भले आदमीको शोभा नहीं देता। "

लड़केने उद्धत भावसे जवाब दिया, " मनुष्यका ऐसी हालतमें ' टेम्पर लूज़ ' न होगा तो और कब होगा, बताइए? हरामजादे नौकरने वगैर पूछेताछे ऐसे एक असभ्य आदमीको लाकर बिठा दिया जो भद्र महिलाका सम्मान रखना तक नहीं जानता। "

अकस्मात् भारी धक्का लगनेपर जिस प्रकार नशेसे चूर व्यक्तिका नशा उतर जाता है, ठीक उसी प्रकार विजयाकी ज्वरकी बेहोशी दूर हो गई। उसने चुपचाप नरेन्द्रका हाथ छोड़कर दीवालकी तरफ मुँह करके करवट बदल ली।

कालीपदके तुरन्त एक कुर्सी लाकर रख जाते ही नरेन्द्र बिछौनेसे उठकर उसपर बैठ गया। रासबिहारीने विजयाके मुँहका भाव लक्ष्य करनेमें भूल नहीं की। वे प्रसन्नतासे कुछ हँसकर लड़केकी ओर ही लक्ष्य करके बोले, "मैं सब कुछ समझता हूँ विलास। यह भी मानता हूँ कि इस सम्बन्धमें तुम्हारा नाराज़ होना अस्वाभाविक नहीं है, वरन् अत्यन्त स्वाभाविक है, लेकिन तुम्हें यह सोचना उचित था कि सब कोई जान-बूझकर अपराध नहीं करते। सब ही यदि सब प्रकारकी रीति-नीति, आचार-व्यवहार जानते होते, तो फिर चिन्ता ही क्या थी? इसीलिए

* उतावले। × ' टेम्पर लूज़ ' करना=मिजाज़ खो देना।

क्रोध न करके शान्त भावसे ही मनुष्यकी भूल-चूक सुधार देनी पड़ती है।"

यह किसीको भी समझनेमें देर नहीं लगी कि भूल-चूक किसकी थी। विलासने कहा, "नहीं बाबू जी, इस प्रकारका इम्पर्टिनेन्स* सहन नहीं होता। इसके अतिरिक्त हमारे इस घरके नौकर-चाकर जैसे अभागे हैं, वैसे ही बदजात भी हो गये हैं। कल ही मैं सबको निकाल बाहर करूँगा तब दम लूँगा।"

रासबिहारीने फिर थोड़ा हँसकर स्नेहपूर्वक तिरस्कारकी भङ्गीसे इस बार, जान पड़ता है, कमरेकी दीवालोंको सुना कर कहा, "जब इसका मन खराब होता है तब यह क्या क्या कह बैठता है, कुछ ठिकाना ही नहीं। और सिर्फ़ लड़केको ही आखिर दोष क्या दूँ, मैं बूढ़ा आदमी हूँ, फिर भी बीमारीकी बात सुन कर कितना घबड़ा गया था! एक तो मकानमें ही एक व्यक्तिको चेचक निकली है, और फिर ये भय दिखा गये!"

इतनी देर तक नरेन्द्रने कोई बात नहीं की थी; इस बार उसने बाधा देकर कहा, "नहीं, मैं किसी प्रकारका भय दिखाकर नहीं गया।"

विलासने ज़मीनपर पैर पटक कर तेज़ीके साथ कहा, "निःसन्देह भय दिखला गये थे। कालीपद गवाह है।"

नरेन्द्रने कहा, "कालीपदने गलत सुना है।" प्रत्युत्तरमें विलास और न जाने कौन-सी बेहूदगी करने जा रहा था कि उसके पिताने रोककर कहा, "अरे यह क्या करते हो विलास। जब वे अस्वीकार कर रहे हैं, तब क्या कालीपदका विश्वास किया जायेगा? निश्चय ही उनकी बात सच है।—"

विलासके कुछ कहनेकी चेष्टा करते ही वृद्धने इशारेसे मना करके कहा, "इस मामूली बीमारीसे ही बुद्धि मत खो बैठो, विलास, स्थिर होओ। मङ्गलमय जगदीश्वर केवल हमारी परीक्षा करनेके लिए ही विपत्ति भेज देते हैं। मैं तो सोच ही नहीं सकता कि विपत्तिमें पड़नेपर तुम लोग सबसे पहले यह बात क्यों भूल जाते हो?"

थोड़ा ठहरकर उन्होंने फिर कहा, "और यदि इन्होंने गलत बीमारीकी बात कह ही दी तो उससे भी क्या होता है? बहुतसे पासशुदा अच्छे अच्छे बुद्धिमान् डाक्टरोंसे भी भूल हो जाती है, फिर ये तो लड़के हैं।" इसके बाद नरेन्द्रकी तरफ मुँह करके बोले, "खैर, बुखार तो तब बहुत मामूली ही आप बता रहे हैं?

* ढिठाई, गुस्ताखी।

चिन्ता करनेका कोई कारण नहीं है, यही तो आपका मत है ?"

नरेन्द्रने आनेके समयसे अब तक अनेक अपमान चुपचाप सह लिये थे, लेकिन इस बार वह एक टेढ़ा जवाब दिये बिना न रह सका। उसने कहा, "मेरे कहनेसे क्या आता-जाता है, बताइए ? मुझपर तो आप निर्भर हैं नहीं, बल्कि इससे अच्छा तो यह है कि आप किसी अच्छे पासशुदा विचक्षण डाक्टरको दिखाकर उसकी सम्मति-असम्मति ले लीजिए।"

जवाबमें कटाक्ष भले ही हो पर वह जवाब देनेका उसे अधिकार था। लेकिन विलास एकदम उछल पड़ा और मारनेको उद्यत होकर चिल्ला उठा, "मैं कहे देता हूँ कि तुम किसके साथ बात कर रहे हो, यह खयाल रखकर बात करो। यदि यह कमरा न होता, अगर और कहीं तुम होते तो तुम्हारा यह कटाक्ष करना—"

इस व्यक्तिका बात-बेबातमें शुरूसे ही झगड़ा पैदा करके भयानक घटना घटित कर देनेका प्राणपण प्रयत्न देखकर नरेन्द्र विस्मयसे स्तम्भित हो गया। लेकिन क्यों, किस कारण, कहाँ उसके व्यवहारमें कौन-सा अपराध घटित हो रहा है, कुछ भी तो वह किसी प्रकार स्थिर नहीं कर सका। असल कारण यह था कि नरेन्द्र यह अब भी नहीं जानता था कि उस आदमीका अन्तर्दाह किस जगह है। विजयाके यहाँ आनेके साथ साथ ही गाँवके अनुसन्धित्सु पड़ोसियोंका दल जब विलासके और उसके भविष्य-सम्बन्धकी चर्चा करके समयका सद्व्यवहार करता था, तब इस भिन्न-ग्रामवासी नवीन वैज्ञानिकका अखण्ड मनोयोग कीटानुकीटके सम्बन्ध-निरूपणमें ही निमग्न रहता था, गाँवकी जनश्रुति उसके कानोंतक पहुँची ही नहीं। उसके बाद ब्राह्म-मन्दिर-प्रतिष्ठाके दिन जब बात पक्की होकर सर्वत्र प्रसिद्ध हो गई, तब वह कलकत्ते चला गया। आज पिता-पुत्रकी बातचीतके ढङ्गसे बीच बीचमें उसे एक अनिर्देश्य और अस्पष्ट व्यथाके समान कुछ खटक अवश्य रहा था, लेकिन विचारके द्वारा उसे सुस्पष्ट करनेका न तो उसे समय मिला और न इसका प्रयोजन ही उसे था। ठीक इसी समय विजयाने इस ओर मुँह फिराया और नरेन्द्रके मुँहकी तरफ व्यथित-उत्पीड़ित दोनों आँखें गड़ाकर कहा, "मैं जितने दिन जीऊँगी, आपके निकट कृतज्ञ रहूँगी। लेकिन इन लोगोंने जब दूसरे डाक्टरके द्वारा ही मेरी चिकित्सा कराना स्थिर किया है, तब आप और निरर्थक अपमान सहन मत कीजिए। लेकिन लौटते वक्त दयाल बाबूको एक बार देखते जाइएगा, मेरी सिर्फ यह विनती स्वीकार कर लीजिए।" कहकर प्रत्युत्तरकी प्रतीक्षा किये बिना ही

उसने मुँह फिरा लिया। रासबिहारीने बहुत पहले ही असल मामला समझ लिया था, वे उसी क्षण बोल उठे, "विलक्षण बात है! जिसे तुमने बुला भेजा है, भला उसका अपमान करनेकी किसमें ताकत है!"

उसके बाद लड़केकी अनेक प्रकारसे भर्त्सना करके वे बार बार इसी बातका प्रचार करने लगे कि भारी बीमारी समझकर व्याकुलताके कारण विलासका हिताहित-ज्ञान लुप्त हो गया है। साथ ही साथ एकमात्र और अद्वितीय निराकार परब्रह्म परमेश्वरके उद्देशके सम्बन्धमे भी उन्होंने अनेक आध्यात्मिक और निगूढ़ तत्त्वकी बातोंका मर्म उद्‌घाटित करके दिखा दिया। नरेन्द्रने कोई बात नहीं कही, वह पिता और पुत्रके पाससे तत्त्व-कथा और अपमानका बोझ बिना कुछ बोले दोनों कन्धोंपर लादे उठ खड़ा हुआ और छड़ी और छोटा बैग हाथमें लेकर उसी प्रकार चुपचाप बाहर निकल गया। रासबिहारीने पीछेसे पुकार कर कहा, "नरेन्द्र बाबू, आपसे एक जरूरी बातकी चर्चा करनी है" और तब तुरन्त उठकर लड़केको अप्रतिद्वन्द्वी, एकमात्र और अद्वितीय रूपसे विजयाके कमरेमें प्रतिष्ठित करके वे उसके पीछे पीछे नीचे उतर गये।

नरेन्द्रको बगलके एक कमरेमें बैठाल कर उन्होंने भूमिकाके बहाने कहा, "पाँच आदमियोंके सामने तुम्हे बाबू कहूँ या कुछ भी कहूँ बेटा, लेकिन यह नहीं भूल सकता कि तुम हमारे उसी जगदीशके लड़के हो! बनमाली और जगदीश दोनों ही स्वर्गवासी हो गये, सिर्फ मैं ही बचा हूँ। हम तीनों क्या थे, उसका आभास तो तुम्हें उस दिन ही मैंने दे दिया था, लेकिन खोलकर नहीं बतला सका नरेन्द्र, मेरा हृदय मानो फट जाना चाहता है।"

वास्तवमें, उस दिन माइक्रोसकोपकी कीमत देते समय उन्होंने अनेक बातें की थीं। नरेन्द्र चुपचाप सुनता रहा।

सहसा रासबिहारी मानो उस दिनकी बातें याद आ जानेसे बोल उठे, "उस आवश्यक यन्त्रको बेच देनेके कारण मैं सचमुच ही तुमपर बहुत असन्तुष्ट हो गया था नरेन्द्र।" फिर कुछ हँसकर बोले, "लेकिन देखो बेटा, 'असन्तुष्ट हो गया था' प्रयोग अत्यन्त रूखा है। दुनियादारीके लिहाजसे 'असन्तुष्ट नहीं हुआ' कहना ही अच्छा होता—कहने सुननेमें सब तरफसे निरापद,—लेकिन जाने दो।" फिर एक उसाँस लेकर बहुत कुछ आत्मगत भावसे ही कहने लगे, "मेरे द्वारा जो असाध्य है, उसके लिए दुःख करना वृथा है। न जाने कितने लोगोंके निकट बुरा बनता हूँ, न जाने कितने लोग गालियाँ देते हैं। हितैषीगण कहते हैं,

'अच्छा, तुम झूठ किसी समय भी नहीं बोल सकते रासबिहारी, सो झूठ बोलनेके लिए हम लोग भी नहीं कहते, लेकिन कुछ घुमा फिराकर बोलनेसे ही यदि गाली-गलौजसे छुट्टी मिल जाती है, तो वैसा ही क्यों नहीं करते ?' मैं सुनकर अवाक् होकर सोचने लगता हूँ बेटा, कि जो हुआ नहीं उसे बनाकर घुमा फिराकर कैसे कहा जा सकता है ? यह जानता हूँ कि लोग मेरा भला ही चाहते हैं, किन्तु मङ्गलमय भगवानने मुझे जिस सामर्थ्यसे वञ्चित कर रक्खा है, वह असाध्य-साधन आखिर मैं किस प्रकार करूं ? जाने दो बेटा,—अपने सम्बन्धमें चर्चा करना मैंने कभी पसन्द नहीं किया—इससे मुझे बड़ी अरुचि है। बादको तुम दुःखी न होओ, इसीलिए इतनी बातें कहनी पड़ीं। फिर उदास नेत्रोंसे क्षण-भर छतकी कड़ियोंकी ओर देखते रहकर आँखें नीची करके बोले, "और एक बात जानते हो नरेन्द्र ? इस ससारमें चिरकालसे रहा अवश्य हूँ, बाल भी इसीमें पका डाले हैं, लेकिन क्या करनेसे और क्या कहनेसे यहाँ सुख-सुविधा मिलती है, सो आज तक भी मेरे इस पके सिरमें न सूझ सका। नहीं तो यह बात तुम्हारे मुँहपर ही कहकर कि तुमसे मैं असन्तुष्ट हुआ था, क्यों तुम्हें क्लेश पहुँचाता ?—"

नरेन्द्र विनयके साथ बोला, "जो सच है, वही आप कह रहे हैं। इसमें दुखी होनेकी तो कोई बात नहीं है।"

रासबिहारी गरदन हिलाते हिलाते बोले, "नहीं नहीं, यह बात मत कहो नरेन्द्र, कठोर बातकी ठेस लगती ही है। जो सुनता है उसे तो ठेस लगती ही है, जो कहता है, उसको भी कम ठेस नहीं लगती बेटा। जगदीश्वर !"

नरेन्द्र नीचा मुँह किये चुप बैठा रहा। रासबिहारी हृदयका मर्मोच्छ्वास सयत कर लेनेके बाद कहने लगे, "लेकिन उसके बाद फिर चुप नहीं रह सका। मैंने सोचा, यह कैसी बात है ! वह बहुत दुःखमें ही अपनी यह आवश्यकताकी वस्तु बेच गया है। उसकी कीमत जो भी हो, लेकिन बात जब दी जा चुकी है, तब, और कुछ तो सोचा ही नहीं जा सकता। कीमत देनेमें भी देर नहीं की जा सकती। मैंने मन ही मन कहा, हमारी विजया बेटीकी जब इच्छा हो और जितने दिनोंमें देनेकी इच्छा हो, रुपए दे, लेकिन मैं अभी जाऊँ और खुद जाकर दे आऊँ। वह बेचारा जब ये रुपए पाकर ही विदेश जा सकेगा, तब एक दिनकी भी देरी करना उचित नहीं है। और फिर जब कि वह हमारे जगदीशका लड़का है !"

नरेन्द्रने उस समयकी कई बातें स्मरण करके वेदनाके साथ पूछा, "क्या उनकी दाम देनेकी इच्छा नहीं थी ?"

वृद्धने गम्भीर होकर कहा, "नहीं, वह बात मेरे मनमे तो नहीं आई नरेन्द्र। लेकिन तुम तो जानते हो—नहीं, जाने दो।" कहकर वे सहसा मौन हो गये।

चार सौ रुपएमें ऊँचाई हो चुकनेकी बात एक बार नरेन्द्रके मुँह तक आ गई, किन्तु, उसी समय न जाने कैसा एक कष्ट-सा होने लगनेसे इस सम्बन्धमे फिर उसने कोई बात नहीं कही।

रासविहारीने इस बार मतलबकी बात छेड़ी। वे आदमी पहचानते थे। नरेन्द्रकी आजकी बातचीत और व्यवहारसे उन्हें घोर सन्देह उत्पन्न हो गया था कि अब तक भी यह असल बात नहीं जानता, और इस प्रकारके अन्यमनस्क और उदासीन प्रकृतिके लोग होते ही ऐसे हैं कि जब तक इनकी आँखोंमें उँगली देकर न दिखा दिया जाय, ये खुद अनुसन्धान करके भी कभी कुछ नहीं जानना चाहते। वे बोले, "विलासके आचरणसे मैं जितना दुःखी हुआ हूँ, उतनी ही लज्जा भी मैंने अनुभव की है। उस माइक्रोसकोपकी बात ही कहता हूँ। विजया विलासकी सलाह लेकर यदि उसे खरीदती तब तो कोई बात ही नहीं उठ सकती थी। तुम्हीं बताओ भला, यह क्या उसका कर्तव्य नहीं था?"

विजयाका कर्तव्य ठीक तरहसे न समझ सकनेके कारण नरेन्द्र जिज्ञासु-मुखसे ताकता रहा। रासबिहारीने कहा, "उसकी बीमारीकी खबर पाकर ही विलास कितना व्याकुल हो उठा है, यह तो हमें समझनेको बाकी ही नहीं है। होना ही स्वाभाविक है। सारी भलाई-बुराई, सारी जिम्मेदारी केवल उसीके सिरपर ही तो है। चिकित्सा और चिकित्सक स्थिर करना भी तो उसीका काम है। उसकी रायके बिना तो कुछ भी हो नहीं सकता। विजयाने खुद भी तो अन्तमें यह समझ लिया, लेकिन दो दिन पहले ही सोच लेती, तो ये सब अप्रिय घटनायें न हो पातीं। वह बिलकुल लड़की नहीं है—सोचना तो उचित था।"

आख़िर क्यों उचित था, यह तब तक समझ न पानेके कारण नरेन्द्र वृद्धके प्रश्नका अनुमोदन न कर सका। लेकिन फिर भी उसके अन्तस्तलमें आशङ्कासे उथल-पुथल होने लगी। और, समझ लेने जैसी बात भी उसके कण्ठसे बाहर नहीं निकली। वह केवल दोनों शङ्कित आँखें वृद्धके मुँहकी ओर खोले चुपचाप देखता रहा।

रासबिहारी बोले, "लेकिन बेटा, तुम, विलासके मनकी अवस्था समझकर अपने मनमें कोई ग्लानि नहीं रख सकोगे। मेरा एक अनुरोध और है नरेन्द्र,—इन लोगोंका विवाह बैसाखमें होगा, यदि कलकत्तेमें ही रहो तो यह अभी कहे रखता

हूँ कि इस शुभकार्यमे तुम्हें योग देना होगा।"

नरेन्द्र बात नहीं कर सका, उसने सिर्फ गरदन हिलाकर बताया, "अच्छा।"

रासबिहारी तब पुलकित चित्तसे अनेक बातें कहने लगे। एक तो यह, कि यह विवाह मङ्गलमयकी एकान्त इच्छासे हो रहा है, और दूसरे यह सम्बन्ध वर-कन्याके जन्म-कालमें ही स्थिर हो गया था। इस प्रसङ्गमें विजयाके परलोकगत पितासे कौन-कौन-सी बातें हुई थीं, इत्यादि बहुत पुराने इतिहासका विवरण करते करते सहसा वे बोल उठे, "अच्छी बात है, तो कलकत्तेमें ही क्या अब रहना होगा? काम मिलनेकी कुछ आशा-वाशा है?"

नरेन्द्रने कहा, "हाँ। एक विलायती दवाइयोंकी दूकानमें मामूली-सा काम पा गया हूँ।"

रासबिहारी खुश होकर बोले, "अच्छी बात है, अच्छी बात है, दवाइयोंकी दूकानमें—कचा पैसा है! टिककर रह सके तो आखिर सिलसिला जमा लोगे।"

नरेन्द्र तो इस इशारेके पाससे भी नहीं फटका। उसने कहा, "जी हाँ।"

सुनकर रासबिहारी अब कुतूहलको और न दबा सके। कुछ इधर-उधर करके पूछ बैठे, "तो फिर वेतन कितना देते हैं?"

नरेन्द्रने कहा, "बादको कुछ अधिक दे सकते हैं। इस समय तो सिर्फ चार सौ रुपए देते हैं।"

"चार सौ!" रासबिहारी विवर्ण मुखसे आँखें कपालपर चढ़ाकर बोले, "आहा, अच्छा अच्छा। सुनकर बहुत सुखी हुआ।"

इस ओर दिन चढ़ते देखकर नरेन्द्र उठ खड़ा हुआ। दयालबाबूको दो-चार चेचकके दाने दिखाई पड़े थे, उन्हें भी देखने जाना था। उसने पूछा, "परेश अब कैसा है, आप बता सकते हैं?"

रासबिहारीने अम्लान मुँहसे बताया, "उसे उसके गाँवके घर भिजवा दिया है। कैसा है, सो नहीं कह सकता।"

दोनों ही कमरेसे बाहर निकल आये। लेकिन रासबिहारीको फिर ऊपर जाना था। लड़का प्रतीक्षा कर रहा होगा। उसने चिकित्साका क्या प्रबन्ध किया, इसका भी पता लगाना आवश्यक था। बरामदेके अन्त तक आकर नरेन्द्र क्षण-भरके लिए थम गया, उसके बाद धीरे धीरे वापस आकर रासबिहारीसे बोला, "आप मेरी ओरसे विलासबाबूसे एक बात कह दीजिए कि, तेज बुखारमें मनुष्यका आवेग अत्यन्त साधारण कारणसे भी उच्छ्वसित हो उठ सकता है। विजयाके

सम्बन्धमें डाक्टरके मुँहकी इस बातपर वे अविश्वास न करें।" यह कहकर वह मुँह फिराकर कुछ तेज़ चालसे चला गया।

स्नान नहीं, आहार नहीं, सिरपर कड़ी धूप—मैदान पार करता हुआ नरेन्द्र दिघड़ाकी ओर चला जा रहा था। लेकिन उसे कुछ भी अच्छा नहीं लग रहा था। इसीलिए चलते चलते वह अपने आपसे ही बार बार प्रश्न कर रहा था 'मेरी क्या गरज़ है? किसी स्त्रीने अपने एक श्रद्धा-पात्रको देखनेके लिए अनुरोध कर दिया है, इसीलिए, जिसे कभी आँखोंसे देखा नहीं, उसे देखनेके लिए ही तो ऐसी धूपमें ये खेतोंके ढेले फोड़ता जा रहा हूँ?' यह खयाल करके कि यह अन्याय्य अनुरोध करनेका उसे जरा भी अधिकार नहीं था, उसका सर्वाङ्ग जलने लगा और वह यह भी अपने आपसे बार बार कहने लगा कि इस अनुरोधकी रक्षा करने जानेमें आत्म-सम्मानकी हानि है, फिर भी वह मुँह फिराकर लौट न सका। एक एक पैर बढ़ाता हुआ उसी दिघड़ाकी ओर अग्रसर होने लगा और थोड़ी ही देरमें उस नितान्त स्पर्द्धापूर्ण अनुरोधकी रक्षा करनेके लिए अपने मकानके दरवाजेपर जा पहुँचा।

## १७

कागजके एक टुकड़ेपर नरेन्द्रने अपने नामके साथ अपना विलायती डाक्टरी खिताब जोड़कर भीतर भेज दिया। उसे पढ़कर दयाल बहुत ही घबड़ा उठे। इतना बड़ा डाक्टर पैदल चल कर उसे देखने आया है, यह उन्हें अपनी अशोभनीय ढिठाई और अपराध-सा लगा और यह वे नहीं सोच सके कि इस डाक्टरको ही वञ्चित करके जब वे स्वतः इस मकानमें रह रहे हैं, तब इस लज्जाके कारण किस प्रकार उसे अपना मुँह दिखायेंगे। क्षण-भरके बाद ही एक गौरवर्ण, दीर्घकाय, छरहरा युवक जब उनके कमरेमें आ पहुँचा तब वे मुग्ध नेत्रोंसे अवाक् होकर ताकते रह गये। उन्हें ऐसा लगा कि मुझे व्याधि चाहे जो हो और चाहे जितनी भी बड़ी हो, अब डर नहीं है,—इस बार मैं बच गया। यह आश्वासन पाकर कि वास्तवमें रोग बहुत मामूली है, चिन्ताका कोई भी कारण नहीं है, वे उठ कर बैठ गये, यहाँ तक कि, डाक्टर साहबको रेलगाड़ीमें बिठाल आनेके लिए स्टेशन तक साथ जाना सम्भव होगा या नहीं, यह भी सोचने लगे। विजया खुद चारपाईपर पड़ी है, फिर भी उन्हें भूली नहीं, उसने ही अनुरोध करके इन्हें भेज दिया है, यह सुनकर कृतज्ञतासे और आनन्दसे दयालकी आँखें छलछला आईं।

देखते देखते इस नये चिकित्सक और पुराने आचार्यमें बातचीतका रंग जम गया। नरेन्द्रके चित्तमें आज बहुत ग्लानि जमा हो उठी थी, किन्तु वृद्धके सन्तोष, उनकी सहृदयता और अन्तस्तलकी पवित्रताके सम्पर्कसे वह आधेके लगभग धुल गई। बातों बातोंमें उसने समझा, यद्यपि इस व्यक्तिका धर्म-सम्बन्धी पठन-पाठन अत्यन्त ही अल्प है, किन्तु धर्म-वस्तुको वृद्ध प्राण भर कर प्रेम करता है, और इस अकृत्रिम प्रेमने ही मानो धर्मकी सत्य दिशाके प्रति उसकी आँखोंकी दृष्टिको असाधारणरूपसे स्वच्छ कर दिया है। किसी भी धर्मके विरुद्ध उनकी कोई शिकायत नहीं है, और यदि मनुष्य विशुद्ध है, तो सभी धर्म उसे विशुद्ध वस्तु दे सकते हैं, यही वे अकपट रूपसे विश्वास करते हैं। यदि उनका इस प्रकारका असाम्प्रदायिक मतवाद विलासबिहारीके कानों तक पहुँच जाता, तो उनका आचार्य-पद बहाल रहता या नहीं, इस विषयमें घोर सन्देह है, लेकिन वृद्धकी शान्त, सरल और विद्वेष-लेशहीन बात सुन कर नरेन्द्र मुग्ध हो गया। रासबिहारी और विलास-बिहारीका भी उन्होंने बहुत गुण गान किया। वे जिसकी भी बात करते, उसीके सम्बन्धमें कहते कि वैसा साधु पुरुष जगत्में उन्होंने दूसरा देखा ही नहीं! वृद्धकी मनुष्य पहचाननेकी यह अद्भुत शक्ति देखकर नरेन्द्र मन ही मन खूब हँसा। अन्तमें विलासके प्रसङ्गमें ही उन्होंने बहुत ही परितृप्तिके साथ कहा कि अगले वैसाखमें ब्याह है, और विजयाकी अभिलाषा है कि उस समय आचार्यपद मैं ही ग्रहण करूँ। और इस प्रकारकी सम्मति प्रकाशित करनेसे भी वे विरत नहीं हुए कि यह विवाह ही ब्राह्म समाजमें विवाहका यथार्थ आदर्श होगा।

लेकिन, यदि वृद्ध सौभाग्य और आनन्दकी अधिकतासे स्वतः इतने अधिक विह्वल न हो उठते, तो अत्यत सुगमतासे देख पाते कि यह अन्तिम चर्चा किस प्रकार उनके श्रोताके मुँहपर स्याहीपर स्याही ढोल रही है।

स्नान-आहारके लिए वे नरेन्द्रको अत्यन्त आग्रह करके भी किसी प्रकार राजी नहीं कर सके। लगभग डेढ़ घण्टेके बाद नरेन्द्र जब यथार्थ श्रद्धाके साथ नमस्कार करके बाहर निकल गया, तब उसे यह समझना बाकी न रहा कि उसके कहाँपर व्यथा है, क्यों उसका सारा मन विह्वल-विपर्यस्त है और क्यों सारा ससार उसके लिए इस प्रकार तिक्त, और बेस्वाद हो गया है। नदी पार होते ही बाईं ओर बहुत दूर जमींदार-भवनके शिखरपर नजर पड़ जानेसे उसकी दोनों आँखें फिर जल उठीं। वह मुँह फिराकर सीधे मैदानके मार्गसे रेलवे स्टेशनकी ओर तेजीसे चलने लगा। आज अकस्मात् इतना बड़ा आघात न लगता तो वह शायद इतनी

जल्दी अपने मनको पहचान ही न सकता। इतने दिनों तक वह जानता था कि इस जीवनमें उसके हृदयने केवल विज्ञानको ही चाहा है। वहाँ किसी कालमें और किसी वस्तुको जगह नहीं मिलेगी, इस बातपर वह निःसशय विश्वास करता था, इसीलिए जगत्की और दूसरी सब कामनाकी वस्तुएँ उसके निकट एकदम तुच्छ हो गई थीं। किन्तु आज चोट खाकर जब मालूम हुआ कि उसके हृदयने उसके अनजानेमें और एक वस्तुको उतने ही एकान्त भावसे प्रेम किया है, तब वह केवल व्यथा और विस्मयसे ही नहीं चौंक उठा, बल्कि अपने निकट खुद ही मानो अत्यन्त छोटा हो गया। आज किसी बातका यथार्थ अर्थ समझनेमें उसे रुकावट नहीं हुई। विजयाका सारा आचरण,—उसकी सारी बातचीत ही मानो छिपा हुआ उपहास था और यह कल्पना करके उसका सर्वाङ्ग लज्जाके मारे बार बार सिहर उठने लगा कि इसीको लेकर विलासके साथ न जाने वह कितनी हँसी है। अभी उस दिनकी ही तो बात है कि जब उसने उसका सर्वस्व छीनकर बाहर निकाल देनेमें भी रत्ती-भर सङ्कोच न किया था! उसके ही पास दीनता दिखाकर अपना अन्तिम सम्बल तक बेचने जानेकी चरम दुर्मति उसमें किस महापापसे उत्पन्न हुई थी! अपनेको हजार बार धिक्कार देकर वह बार बार यही कहने लगा, 'यह मेरे लिए ठीक ही हुआ है। जो लज्जाहीन उस निष्ठुर रमणीकी एक मामूली-सी बातसे अपना सब काम-काज छोड़कर इतनी दूर दौड़कर आ सकता है, उसके उपयुक्त ही यह दण्ड हुआ है। अच्छा किया, जो विलासने मेरा अपमान करके मकानके बाहर निकाल दिया।'

स्टेशन पहुँचकर उसने देखा, जो माइक्रोसकोप इतने दुःखकी जड़ है, कालीपद उसे ही लिये खड़ा है। वह नज़दीक आकर बोला, "डाक्टर बाबू, माजीने इसे आपके पास भेज दिया है।"

नरेन्द्रने तीखे स्वरसे कहा, "क्यों?"

क्यों, सो कालीपद जानता नहीं था। लेकिन चीज डाक्टर बाबूकी है और इसे ही लक्ष्य करके जो अनेक अप्रिय घटनाएँ घट चुकी थीं, सामने और भीतरसे वे सब कालीपदसे छिपी नहीं थीं। उसने गाँठकी बुद्धि खर्च करके हँसमुख होकर कहा, "आपने वापस जो माँगा था।"

नरेन्द्रने मन ही मन और अधिक क्रुद्ध होकर कहा, "नहीं, मैंने नहीं माँगा। मेरे पास देनेके लिए रुपए नहीं हैं।"

कालीपदने समझा यह रूठ जानेकी बात है। वह बहुत दिनोंका नौकर था,

रुपए-पैसेके सम्बन्धमें विजयाके मनके भाव और आचरणके बहुतसे दृष्टान्त उसने आँखोंसे देखे थे। अपने ज्ञानको और थोड़ा-सा फैलाकर, थोड़ा-सा हँसकर, थोड़ी-सी उपेक्षाके भावसे वह बोला, "ऊँ —बड़ी भारी कीमत है न! माजीके लिए दो-चार सौ रुपए भी कोई रुपए हैं! ले जाइए आप। जब रुपयोंका प्रबन्ध हो जाय तब भेज दीजिएगा,—"

रुपयोंके सम्बन्धमें उसके प्रति विजयाके इस अयाचित विश्वाससे नरेन्द्रका क्रोध कुछ नरम जरूर हुआ, फिर भी वह अपने कण्ठ-स्वरका तीखापन दूर नहीं कर सका। इसीसे, उसने जब दो सौके बदलेमें चार सौ देनेमे असमर्थता प्रकट करके कहा, " नहीं नहीं, तू लौटा ले जा कालीपद, मुझे जरूरत नहीं है। मैं दो सौ रुपयोंके बदले चार सौ दे नहीं सकूँगा, " तब कालीपद अनुनयके स्वरमें बोल उठा, "नहीं डाक्टर बाबू, सो नहीं होगा—आप साथ ले जाइए—मै गाड़ीमे रखकर ही जाऊँगा।"

इस वस्तुके सम्बन्धमे उसकी खुदकी एक खास गरज थी। विलासको वह फूटी आँखों नहीं देख सकता था। उसके प्रति विद्वेष होनेके कारण ही नरेन्द्रके प्रीत उसे एक प्रकारकी सहानुभूति उत्पन्न हो गई थी। इसीलिए दरबानके द्वारा भेज देनेका हुक्म होनेपर भी कालीपद खुद याचना करके यह भारी बाक्स लाद लाया था। नरेन्द्र इधर उधर कर रहा है, यह कल्पना करके वह और भी कुछ नजदीक जाकर गला साफ करके बोला, " आप ले जाइए डाक्टर साहब, माजी अच्छी होनेपर चाहे तो आपसे कीमत भी न लेंगीं!"

यह इशारा सुनकर नरेन्द्र आग-बबूला हो उठा।—ठीक है! उसने बुलाया और विलासने अपमान किया!—जान पड़ता है यह भी उसीकी कृपाका पुरस्कार है!

लेकिन प्लेटफार्मके ऊपर और भी मनुष्य थे, इसलिए कालीपदकी यह अलफ टल गई। नरेन्द्रने किसी प्रकार अपनेको सँभाल लिया, उसने सिर्फ बाहरके रास्तेकी ओर इशारा करके कहा, " चले जाओ मेरी आँखोंके सामनेसे।" और वह मुँह फिराकर एक तरफ चला गया। कालीपद काठकी तरह हतबुद्धि विह्वल होकर खड़ा रह गया। मामला आखिर क्या हुआ, वह समझ ही न सका। लगभग पन्द्रह मिनटके बाद गाड़ी आनेपर, नरेन्द्र जब उसमें बैठ गया, तब कालीपदने धीरे धीरे फर्स्ट क्लास कमरेकी खिड़कीके नज़दीक जाकर पुकारा, "डाक्टर साहब!"

नरेन्द्र दूसरी तरफ देख रहा था, मुँह फिराते ही उसकी आँखें कालीपदके मलिन-

मुँहपर जा पड़ीं। नौकरसे निरर्थक कड़ा व्यवहार करके वह मन ही मन कुछ पछ-ताया था; इसीलिए थोड़ा-सा हँसकर सदय कण्ठसे बोला, "अब क्यों आया रे?"

वह एक टुकड़ा काग़ज़ और पेन्सिल निकाल कर बोला, "आप यदि अपना पता—"

"मेरा पता लेकर क्या करेगा रे?"

"मैं कुछ नहीं करूँगा। माजीने कहा था—"

माजीके नामसे इस बार नरेन्द्र अपने आपेमें नहीं रहा। अकस्मात् वह जोरसे डाँटकर बोल उठा, "दूर हो जा सामनेसे! पाजी बदमाश कहींका!"

कालीपद चौंककर दो पग हट गया और उसके दूसरे ही क्षण गाड़ी सीटी बजाकर चल दी।

लौटकर जब वह ऊपरके कमरेमें पहुँचा, तब विजया खाटकी बाजूमें सिर रक्खे आँखें मूँदे टिकी बैठी थी। पैरोंकी आहटसे उसके आँखें खोलते ही कालीपदने कहा, "लौटाल दिया—लिया नहीं।"

विजयाकी दृष्टिमें वेदना अथवा विस्मय कुछ भी दिखाई नहीं पड़ा। कालीपद हाथका काग़ज़ और पेन्सिल टेबुलपर रखते रखते बोला, "बाबा रे, क्या गुस्सा है! ठिकाना पूछनेपर बिगड़कर मारने दौड़े!" इसके उत्तरमें भी विजयाने बात नहीं की।

सारे रास्ते कालीपद अपने आप ही घोखता हुआ आया था कि मालिकके आग्रहके उत्तरमें वह क्या बोलेगा। लेकिन उस तरफसे लेशमात्र उत्साह न पाकर उसने आँखें उठाकर देखा, विजयाकी दृष्टि वैसी ही निर्विकार, वैसी ही शून्य है। सहसा उसके मनमें आया कि जान-बूझकर ही विजयाने यह फिजूलका काम उसे सौंपा था। इसीसे वह अप्रतिभ भावसे कुछ क्षण चुपचाप खड़े रहकर धीरे धीरे बाहर चला गया।

## १८

यद्यपि पाँच छः दिनमें विजयाका रोग चला गया लेकिन शरीर ठीक होनेमें देर होने लगी। विलासने अच्छे डाक्टरके द्वारा बलकारक ओषधि और पथ्यका प्रबन्ध करनेमें त्रुटि नहीं की, लेकिन दुर्बलता प्रतिदिन बढ़ती ही जाने लगी। इस ओर फागुन समाप्त होनेको आया, बीचमें सिर्फ चैतका महीना बाकी रह गया। रासबिहारीका सङ्कल्प था कि वैसाखके पहले हफ्तेमें ही लड़केका

विवाह कर देंगे, लेकिन यह देखकर कि पात्र तो दिन दिन कान्तिमान् और परिपुष्ट हो रहा है, और कन्या दुबली और मलिन होती जा रही है रासबिहारी प्रति दिन एक बार आकर व्याकुलता व्यक्त कर जाने लगे। प्रयत्नमें किसी ओरसे रत्ती-भर भी त्रुटि नहीं हो रही है,—फिर भी यह क्या हो रहा है ? उस माइ-क्रासकोपके सम्बन्धकी घटना बाहरसे न जाने किस प्रकार कुछ चढ़-बढ़कर पिता-पुत्रके कानोंमें पहुँची थी। सुनकर लड़का जितना ही उछलने-कूदने लगा, बाप उतना ही उसे ठण्डा करने लगा। अन्तमें लड़केको उन्होंने विशेष रूपसे सतर्क कर दिया कि ये सब छोटी-मोटी बातें लेकर ऊधम मचाते घूमना केवल निष्प्रयोजन ही नहीं है, विजयाकी बीमारीकी देहपर इससे कुछ हितके विपरीत हो जाना भी असम्भव नहीं है। विलास पृथ्वीके और चाहे जितने व्यक्तियोंको तुच्छ उपेक्षणीय माने, पिताकी पक्की बुद्धिकी वह मन ही मन कदर करता था। क्योंकि, ऐहिक कामोंमें उस बुद्धिकी श्रेष्ठताकी इतनी नज़ीरें मौजूद थीं कि, उसकी प्रामाणिकताके सम्बन्धमें सन्देह करना एक प्रकारसे असम्भव था। इसलिए, इसे लेकर उसके हृदयके भीतर चाहे जितना विष सग्रह हो उठा हो, खुले तौरसे विरोध करनेका साहस उसने नहीं किया। लेकिन उससे अब और नहीं सहा गया। उस दिन सहसा एक बहुत ही तुच्छ कारणसे वह कालीपदको ले बैठा। पहले तो वह मारने दौड़ा और अन्तमें उसने गुमाश्ताको वेतन चुका देनेकी आज्ञा देकर उसे डिस्मिस कर दिया।

चिकित्सकने विजयाके लिए सबेरे-शाम थोड़ा-सा घूमने-फिरनेकी व्यवस्था की थी। उस दिन सबेरे वह नदीके किनारे थोड़ा-सा घूम फिर कर लौटी ही थी कि कालीपद अश्रु-विकृत स्वरमें बोला, "माजी, छोटे बाबूने मुझे जवाब दे दिया है।"

विजयाने आश्चर्यमें पड़कर पूछा, "क्यों ?"

कालीपद रो पड़ा और बोला, "मालिक स्वर्ग चले गये, उनसे कभी गाली नहीं खाई माजी, लेकिन आज—" कहकर वह बार बार आँखें पोंछने लगा। उसके बाद रोना बन्द करके उसने जो कुछ कहा, उसका मर्म यह है—यद्यपि उसने कोई अपराध नहीं किया है, तिसपर भी छोटे बाबू उसे फूटी आँखों नहीं देख सकते। डाक्टर बाबूके पास वह बाक्स देने जानेकी बात क्यों मैंने खुद उन्हें नहीं बताई, क्यों मैं उन्हें घरमें बुला लाया था,—इत्यादि इत्यादि।

विजया कुर्सीपर बहुत कड़ी होकर बैठी रही, बहुत देर तक उसने एक बात भी नहीं कही। बादको पूछा, "वे कहाँ हैं ?" कालीपद बोला, "कचहरीमें

बैठे कागज देख रहे हैं।"

विजयाने क्षण-भर इधर-उधर करके कहा, "अच्छा, जरूरत नहीं—अभी तू जा, काम कर।" और वह खुद भी चली गई। लगभग एक घण्टेके बाद उसने खिड़कीसे देखा कि विलास कचहरीसे निकलकर घर चला गया। उसने समझ लिया कि क्यों आज वह खबर लेनेके लिए इस ओर नहीं आया।

दयाल आरोग्य होकर फिर नियमित रूपसे अपने कामपर आने लगे थे। शामके पहले मकान लौटते समय किसी किसी दिन विजया उनके साथ हो लेती थी और बात करते करते कुछ दूर तक पहुँचा कर फिर लौट आती थी।

नरेन्द्रके प्रति दयालका अन्तःकरण आदरसे, कृतज्ञतासे एकदम भर गया था। बीमारीकी बात उठनेपर वृद्ध इस नये चिकित्सककी उच्छ्वसित-प्रशंसासे सहस्र-मुख हो उठते थे। विजया चुप रहकर सुनती रहती, लेकिन किसी तरहका आग्रह न दिखाती, इसीलिए, दयाल मुँह खोलकर नहीं कह सकते थे कि उनकी एकान्त इच्छा है कि उन्हें ही बुलाकर विजयाकी बीमारीकी बात पूछी जाय। भीतरका रहस्य उस समय तक भी उनके लिए बिलकुल अज्ञात था, इसीलिए विजयाकी मौन उपेक्षासे वे मन ही मन कष्ट अनुभव करते और हजार तरहके इशारों द्वारा बताना चाहते कि वह लड़का जरूर है, लेकिन जो सब ख्यातनामा विज्ञ चिकित्सक तुम्हारी व्यर्थ चिकित्सा करके रुपए और समय नष्ट कर रहे हैं, उनकी अपेक्षा वह बहुत अधिक बुद्धिमान् है, यह मैं शपथपूर्वक कह सकता हूँ।

लेकिन इस गुप्त रहस्यका आभास पानेमें उन्हें अधिक दिन नहीं लगे। पाँच-छः दिनके बाद ही एक दिन सहसा वे विजयाके कमरेमें आकर बोले, "काली पदको अब तो मैं मकानमें रख नहीं सकता बेटी।"

विजयाको यह सन्देह पहलेसे था, फिर भी उसने पूछा, "क्यों?"

दयालने कहा, "जिसे तुम मकानमें नहीं रख सकीं, मैं उसे किस साहससे रक्खूँ, बताओ तो भला बेटी?"

विजयाने मन ही मन अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहा, "लेकिन वह भी तो मेरा ही मकान है?"

दयाल लज्जित होकर बोले, "सो तो जरूर है। हम सभी तो तुम्हारे आश्रित हैं बेटी। लेकिन—"

विजयाने पूछा, "उन्होंने क्या आपसे रखनेको मना किया है?"

दयाल चुप हो रहे। विजयाने बात समझ लेनेपर कहा, "तो फिर कालीपदको

मेरे पास ही भेज दीजिए। वह हमारे बापूका नौकर है, उसे मैं बिदा नहीं कर सकती।"

दयालने क्षण-भर मौन रह कर सङ्कोचके साथ कहा, "काम अच्छा नहीं होगा बेटी। उनकी अवहेलना करना भी तुम्हारा कर्तव्य नहीं है।"

विजया सोच कर बोली, "तब फिर मुझे क्या करनेको कहते हैं?"

दयालने कहा, "तुम्हें कुछ भी करना नहीं होगा। कालीपद खुद ही घर जाना चाहता है। मैं कहता हूँ, कुछ दिनोंके लिए वह चला ही क्यो न जाय?"

विजया अनेक क्षण मौन रहकर एक लम्बी साँस छोड़कर बोली, "तो फिर चला जाये। लेकिन जानेके पहले उसे एक बार यहाँ भेज दीजिएगा।"

लम्बी साँसकी आवाजसे चकित होकर वृद्ध मुँह उठाते ही इस तरुणीके मलिन मुँहपर एक गहरी घृणाका चित्र देखकर स्तम्भित रह गये। पर उस दिन इस सम्बन्धमें और कोई बात कहनेका साहस उन्हें नहीं हुआ।

उसके बाद चार-पाँच दिन तक दयाल फिर नहीं दिखाई पड़े। विजयाने कचहरीमें पता लगाकर जाना कि वे कामपर ही नहीं आते। इससे उद्विग्न होकर जब वह सोच ही रही थी कि आदमी भेजकर पता लगाना आवश्यक है अथवा नहीं, उसने दरवाजेके बाहर उनका खाँसना सुना। वह आनन्दपूर्वक उठ खड़ी हुई और उसने आदरपूर्वक उन्हें कमरेमें लाकर बैठाया।

दयालकी स्त्री सदा बीमार रहती है। सहसा उसीकी बीमारी बढ़ जानेके कारण वे बाहर नहीं निकल सके थे। उन्हें खुद ही रसोई बनानी पड़ती थी। उनके निरुद्वेग मुँहकी चेष्टासे विजयाने यह तो समझ लिया कि विशेष कोई डर नहीं है। तथापि प्रश्न किया, "अब वे कैसी हैं?"

दयाल बोले, "आज अच्छी हैं। नरेन्द्र बाबूको चिट्ठी लिखी थी। वे कल तीसरे पहर आकर दवाई दे गये हैं। कैसी अद्भुत चिकित्सा है, बेटी! चौबीस घण्टे के भीतर ही बीमारी मानो बारह आने आरोग्य हो गई है।"

विजया ओंठ दबाकर हँसी और बोली "अच्छी क्यों न होगी? आप सबका क्या साधारण विश्वास है उनपर?"

दयाल बोले, "यह सच है। लेकिन विश्वास तो यों ही हो नहीं जाता बेटी! हमने परीक्षा करके देख लिया है न। ऐसा लगता है कि घरमें पैर रखते ही सब बीमारी अच्छी हो जायेगी।"

"जरूर हो जाती होगी," कहकर विजया फिर मुसकिरा दी। इस बार दयालने

खुद भी थोड़ा-सा हँसकर कहा, "वे केवल उसकी ही चिकित्सा नहीं कर गये हैं, बेटी, और भी एक व्यक्तिकी व्यवस्था कर गये हैं।" और उन्होंने एक कागज टेबुलके ऊपर खोलकर रख दिया।

वह एक प्रेस्क्रिप्शन था। ऊपर विजयाका नाम लिखा था। लिखावटपर आँख पड़ते ही वे थोड़ेसे अक्षर मानो आनन्दके वाण बनकर विजयाके हृदयमें आ लगे। एक पलके लिए उसका सारा मुँह लाल होकर एकदम राखके समान फीका पड़ गया। वृद्ध अपनी सफलताके आनन्दसे ऐसे विभोर हो गये थे, कि उन्होंने उस ओर देखा तक नहीं। वे बोले, "तुम्हें उपेक्षा करने न दूँगा बेटी। तुम्हें औषधिकी परीक्षा करके देखना ही होगा।"

विजयाने अपनेको सँभालकर कहा, "लेकिन यह तो अँधेरेमें ढेला फेंकना है—"

वृद्धने गर्वसे प्रदीप्त होकर कहा, "यह तुम क्या कहती हो ! इन्हें क्या तुमने अपने नेटिव डाक्टरों जैसा समझ लिया है बेटी, जो दक्षिणा देते ही व्यवस्था लिख देते हैं ! ये तो विलायतसे पास करके आये हुए बड़े भारी डाक्टर हैं। रोगीको अपनी आँखोंसे देखे बिना ये कुछ भी नहीं बतलाते। इन्हें अपनी जिम्मेदारीका क्या साधारण ज्ञान है बेटी !"

विजयाने अकृत्रिम विस्मयसे दोनों आँखें फैलाकर कहा, "अपनी आँखोंसे देखकर कैसे ! किसने कहा, वे मुझे देख गये हैं ? सिर्फ उन्होंने आपके मुँहकी बात सुनकर ही यह औषधि लिख दी है।"

दयाल बार बार सिर हिलाते हुए कहने लगे, "नहीं, नहीं, नहीं। कदापि नहीं। कल जब तुम अपने बगीचेकी रेलिंग पकड़कर खड़ी थीं, तब ठीक तुम्हारे सामनेके मार्गसे ही वे पैदल चलकर गये थे और तुम्हे अच्छी तरह देख गये थे। जान पड़ता है, तुम उस समय दुचित्ती थीं, इसीलिए—"

विजयाने सहसा चौंककर कहा, "उनकी साहबी पोशाक थी क्या ? सिरपर हैट था ?"

दयाल कौतुककी प्रबलतामें हाः हाः करके हँसते हुए कहने लगे, "कौन कह सकता था कि वे असल साहब नहीं हैं ! कौन कह सकता था, वे हमारे स्वजातीय बङ्गाली हैं ? मैं खुद भी तो सहसा चौंक गया था, बेटी !"

सामनेसे होकर गये, ठीक आँखोंके आगेसे गये, उसे देखते देखते गये— फिर भी एक बारसे अधिक उनकी ओर देखा तक नहीं ! बल्कि यह सोचकर कि

पुलिसका कोई अँग्रेज कर्मचारी होगा, उसने अवज्ञासे आँखें नीची कर लीं ! वृद्धको इसका कोई पता ही नहीं चला कि उसके हृदयके भीतर कैसा तूफान मच गया ! वे अपने आप ही कहते चले गये, " बीचमें सिर्फ चैतका महीना बाकी है। बैसाखके पहले, अथवा अधिकसे अधिक दूसरे हफ्तेमें ही, विवाह है। मैंने कहा, ' बिटियाका शरीर अच्छा ही नहीं हो रहा है डाक्टरबाबू, कोई ऐसी ओषधि दीजिए जिससे'—" उनके मुँहकी बात यहींपर असमाप्त रह गई !

इस प्रकार अकस्मात् रुक जानेसे विजयाने मुँह उठाकर उनकी दृष्टिका अनुसरण करते ही देखा, विलास कमरेमें आ रहा है। कमरेमें प्रवेश करते ही उसने अनुभव किया कि जो आलोचना चल रही थी, उसके आ जानेसे बन्द हो गई। इससे विलासके नेत्र और मुँह क्रोधसे काले हो उठे। लेकिन अपनेको यथाशक्ति सँभाल कर वह निकट आकर एक कुर्सी खींचकर बैठ गया। ठीक सामने ही प्रेस्क्रिप्शन पड़ा था। दृष्टि पड़ते ही उसने उसे टेबुलके ऊपरसे उठा लिया और शुरूसे आखिरतक तीन-चार बार पढ़कर फिर यथास्थान रख देनेके बाद कहा, " नरेन्द्र डाक्टरका प्रेस्क्रिप्शन जान पड़ता है ! यह आया किस तरह, शायद डाकसे ? "

किसीने भी इस बातका उत्तर नहीं दिया। विजया कुछ मुँह फिरा कर खिड़कीके बाहर देखने लगी।

विलास ईर्ष्यासे जलता हुआ जरा-सा हँसकर बोला, " डाक्टर तो बस नरेन्द्र डाक्टर हैं ! इसीसे, जान पड़ता है, इनसे दवाई पियी नहीं जाती ! शीशीकी दवाई शीशीमें ही सड़ती रहती है और उसके बाद फेंक दी जाती है ! खैर, यह सब हुआ, लेकिन, इन कलिकालके धन्वन्तरिने यह कागज़ भेजा किस प्रकार, सो तो सुनूँ ? डाकसे भेजा है ? "

इस प्रश्नका भी किसीने जवाब नहीं दिया।

तब उसने दयालकी तरफ देखकर कहा, " आप तो अब तक खूब लेक्चर झाड़ रहे थे—सीढ़ीसे ही सुनाई पड़ रहा था—पूछता हूँ, आप कुछ जानते हैं ?"

इस जमींदारी सरिश्तेमें जबसे विलासबिहारीके अधीन काम करना शुरू किया है, दयाल मन ही मन उसे बाघके समान डरते हैं। इसके सिवाय कालीपदके मुँहसे सुननेको भी कुछ बाकी नहीं रहा था। इसलिए उसके प्रेस्क्रिप्शन हाथमें ले लेनेके समयसे ही उनका हृदय बाँसके पत्तेके समान काँप रहा था। अब प्रश्न सुनकर मुँहके भीतर उनकी जीभ ऐसी जकड़ गई कि बात बाहर नहीं निकली।

विलासने कुछ देर ठहरकर डाँटकर कहा, " एकदम भीगी बिल्ली बन गये !

मैं पूछता हूँ, जानते हैं कुछ ?"

चाकरी जानेका भय भाराक्रान्त दरिद्रको कितना ओछा बना डालता है, यह देखकर क्लेशका अनुभव होता है। दयाल चौंक उठे और अस्फुट स्वरसे बोले, "जी हाँ। मैं ही लाया हूँ।"

"ओः, यही बात है! कहाँ पा गये उसे ?"

दयालने तब रुक रुक कर किसी प्रकार मामलेका ब्योरा सुना दिया।

विलासने स्तब्ध भावसे कुछ क्षण बैठे रहकर कहा, "पिछले वर्षका हिसाब आपसे पूरा करनेको कहा था, वह पूरा हो गया ?"

दयालने विवर्ण मुँहसे कहा, "जी, दो दिनके भीतर ही पूरा कर डालूँगा।"

"हुआ क्यों नहीं ?"

"घरमें बड़ी विपत्ति थी,—रसोई बनानी पड़ती थी,—आ ही नहीं सका।"

प्रत्युत्तरमें विलासने कुत्सित कटु कण्ठसे दयालकी रुक रुक कर कहनेकी नकल करते हुए हाथ हिला कर कहा, "आ ही नहीं सका! तब और क्या, मुझे आपने राजा बना दिया है!" फिर तीव्र स्वरसे कहा, "मैंने तभी पिताजीसे कहा था, इन सब बूढ़े आदमियोंसे मेरा काम नहीं चलेगा।"

इतनी देरके बाद विजयाने मुँह फिरा कर देखा। उसके मुँहका भाव प्रशान्त गम्भीर था, लेकिन दोनों आँखोंसे मानो आग निकल रही थी। उसने धीमे कठिन कण्ठसे कहा, "दयाल बाबूको यहाँ किसने बुलाया है, जानते हैं? आपके पिताजीने नहीं,—मैंने।"

विलास रुक गया। विजयाका इस प्रकारका कण्ठ-स्वर उसने और कभी नहीं सुना था। इस प्रकारकी आँखोंकी दृष्टि भी और कभी नहीं देखी थी। लेकिन झुकनेवाला व्यक्ति वह नहीं था। इसीलिए उसने केवल पल-भर स्थिर रहकर जवाब दिया, "जो भी लाये, मुझे यह जाननेकी जरूरत नहीं है। मैं काम चाहता हूँ। कामसे मेरा सम्बन्ध है।"

विजयाने कहा, "जिनके घरपर विपत्ति है, वे किस प्रकार काम करने आयेंगे ?"

विलास उद्धत भावसे बोला, "इस तरह तो सभी विपत्तिकी दुहाई दे सकते हैं। लेकिन उसे सुननेसे हमारा काम नहीं चलता। मैंने जरूरी काम समाप्त कर रखनेका हुक्म दिया था, सो क्यों नहीं हुआ, उसकी ही कैफियत चाहता हूँ! विपत्तिकी खबर नहीं जानना चाहता।"

विजयाके ओष्ठाधर काँपने लगे। उसने कहा, "सभी झूठी विपत्तिकी दुहाई नहीं देते; कमसे कम मन्दिरका आचार्य नहीं देता। सो जाने दीजिए, लेकिन मैं आपसे ही पूछती हूँ, जब आप जानते हैं कि आवश्यक काम होना ही चाहिए तब आपने ही उसे क्यों नहीं पूरा करके रक्खा? आपने क्यों चार दिन काममें गैरहाजिरी की? कौन-सी विपत्तिमें पड़ गये थे आप, सुनूँ?"

विलासने विस्मयसे प्रायः हतबुद्धि होकर कहा, "मैं खुद खाता पूरा करके रक्खूँ! मैंने क्यों गैरहाजिरी की!"

विजयाने कहा, "हाँ, यही। महीने महीने दो सौ रुपए वेतन आप लेते हैं। वे रुपए तो मैं आपको खाली यों ही देती नहीं, काम करनेके लिए देती हूँ।"

विलासने मशीनके पुतलेकी तरह सिर्फ इतना ही कहा, "मैं नौकर हूँ? मैं तुम्हारा अमला हूँ?"

असह्य क्रोधसे विजयाका हिताहित ज्ञान प्रायः लुप्त हो गया था, उसने अधिक तीव्र कण्ठसे उत्तर दिया, "काम करनेके लिए जिसे वेतन दिया जाता है, उसे इसके सिवा और क्या कहते हैं? आपके असख्य उत्पात मैं निःशब्द सहती आ रही हूँ, लेकिन मैंने जितना ही सहन किया है, अन्याय और उपद्रव उतना ही बढ़ता गया है। जाइए, नीचे जाइए। मालिक-नौकरके सम्बन्धके सिवा आजसे आपके साथ मेरा और कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा। जिस नियमसे मेरे दूसरे कर्मचारी काम करते हैं, ठीक उसी नियमसे काम कर सकिए, कीजिए, नहीं तो आपको मैंने जवाब दिया, अब मेरी कचहरीमें घुसनेकी चेष्टा मत कीजिएगा।"

विलास उछल पड़ा और दाहने हाथकी तर्जनी कँपाता हुआ चिल्लाकर बोला, "तुम्हारा इतना दुःस्साहस!"

विजयाने कहा, "दुःस्साहस मेरा नहीं, आपका है। मेरी स्टेटमें ही नौकरी कीजिएगा, और मेरे ही ऊपर अत्याचार कीजिएगा? मुझे 'तुम' कहनेका अधिकार किसने आपको दिया है? मेरे नौकरको मेरे ही मकानमें जवाब देनेका, मेरे अतिथिका मेरी ही आँखोंके सामने अपमान करनेका यह सब साहस कहाँसे आपमें पैदा हुआ?"

विलास क्रोधसे प्रायः पागल होकर अपने चीत्कारसे घर-भरको कँपाकर बोला, "अतिथिके बापका पुण्य था जो उस दिन उसके शरीरपर मैंने हाथ नहीं लगाया और उसका एक हाथ नहीं तोड़ दिया! निर्लज्ज, बदमाश, चोर, लोफर कहींका! अब यदि कभी उसे देख पाऊँ—"

चीत्कारकी आवाज़से डरकर गोपाल कन्हैयासिंहको बुला लाया। दरवाजेपर उसका चेहरा देख लेनेके कारण विजयाने लज्जित होकर अपना कण्ठ-स्वर संयत और स्वाभाविक करके कहा, "आप जानते नहीं, लेकिन मैं जानती हूँ कि यह आपका ही बहुत बड़ा सौभाग्य है जो उनके शरीरपर हाथ लगानेका अति-साहस आपने नहीं किया। वे उच्च-शिक्षित, बड़े डाक्टर हैं। उस दिन उनके शरीरपर हाथ लगानेपर भी शायद वे एक बीमार नारीके कमरेके भीतर विवाद न करते और सहन करके ही चले जाते, लेकिन मेरे इस उपदेशकी भूलकर भी अवहेलना मत कीजिएगा कि भविष्यत्‌मे उनके शरीरपर हाथ लगानेका शौक यदि आपको हो, तो या तो पीछेसे लगाइएगा, नहीं तो अपने समान और भी पाँच-सात व्यक्तियोंको साथ लेकर तब सामनेसे लगाइएगा। लेकिन बहुत हो-हल्ला हो चुका, अब रहने दीजिए। नीचेसे नौकर-चाकर, दरबान तक डर कर ऊपर चढ़ आये हैं। जाइए, नीचे जाइए।" कहकर वह उत्तरकी प्रतीक्षा तक किये बिना बगलके दरवाजेसे दूसरे कमरेमें चली गई।

## १९

लड़केके मुँहसे सारा मामला सुनकर क्रोधसे, विरक्तिसे और आशा भङ्ग होनेकी कठिन निराशासे रासबिहारीका ब्रह्मज्ञान और उसके सम्बन्धका नकली चेहरा एक क्षणमे खिसककर गिर गया। वे तीखे-कड़ुए स्वरसे बोल उठे, "अरे भाई, हिन्दू जो हम लोगोंको नीची जात कहते हैं, सो झूठ थोड़े ही कहते हैं। हम ब्राह्म हों, या चाहे जो हों,—आखिर कैवर्त्त ( धीवर ) ही तो हैं! कोई ब्राह्मण-कायस्थका लड़का होता तो भलमनसाहत भी सीखता, अपना भला-बुरा किससे होता है, किससे नहीं होता, यह व्यवहार-ज्ञान भी उसे पैदा हो गया होता! जाओ, अब खेतोंमें हल-बैल लेकर अपने कुलका काम करो जाकर। उठते बैठते तोतेके जैसा पढ़ा कर सिखाया कि भले भले यह ब्याह हो जाने दे, उसके बाद जो जीमें आये करना, लेकिन तुझसे सन्तोष नहीं किया गया, तू चला उसपर हुकम चलाने! वह ठहरी रायवंशकी लड़की,—हरि रायकी नातिन, जिसके डरसे शेर-बकरी एक घाट पानी पीते थे। तू हाथ बढ़ाकर गया उसकी नाकमें नकेल डालने! मूरख कहींका! मान-इज्जत गई, इतनी बड़ी जमींदारीका आशा-भरोसा गया, महीने महीने दो सौ रुपया वेतनके नामपर वसूल हो रहा था, वह भी गया!—जा, अब खेतिहरका लड़का, खेती-पाती करके गुजर कर! अब तू

मेरे पास आया है आँखें रँग कर उसके नाम शिकायत करने ? जा जा, मेरे सामनेसे चला जा अभागे, बदमाश, शैतान ! ”

विलास खुद भी समझता था कि यह घटना यदि न घटती तो बहुत ही अच्छा होता, तिसपर पितृदेवकी यह भीषण उग्रमूर्ति देखकर उसकी सारी तेज उछल-कूद बुझकर पानी हो गई। फिर भी उसने कुछ कैफियत देनेका यत्न करना चाहा, परन्तु तब तक क्रुद्ध पिता तेजीके साथ अपने निजके कमरेमें चले गये। लेकिन रासबिहारी क्रोधसे भरे मस्तिष्कमें लड़केसे कह चाहे जो दें, पर कामके समय रोषकी उत्तेजनामें भी जल्दबाजी करके काम मिट्टी नहीं करते थे, आलस्य करके भी कभी इष्ट नष्ट नहीं करते थे। इसीलिए उस दिन वे धैर्य धारण करके, विजयाको शान्त होनेका समय देकर, दूसरे दिन अपने निजकी शान्ति और अविचलित गम्भीरता लेकर विजयाके बैठकखानेमें दिखाई पड़े और कुर्सी खींचकर बैठ गये।

विजयाके क्रोधकी उन्मत्तता धीरे धीरे मिट गई थी। वह अपनी असयत रूक्षता और निर्लज्ज ढिठाईका स्मरण करके लज्जासे मरी जा रही थी। मकानके नौकर-चाकर और कर्मचारियोंके सामने उच्च कण्ठसे जो नाटकका अभिनय हो चुका था, सभवतः वह इसी बीच अनेक आकारोंमें पल्लवित होकर और चढ़-बढ़कर गाँवके पुरुषोंमें घर घर कहा-सुना जाता होगा और तालाबों और नदीके घाटोंपर स्त्रियोंकी हँसी-तमाशेका विषय बन गया होगा ! उसकी कदर्यताकी कल्पना करके विजया उस समयसे फिर घरसे बाहर ही नहीं निकल सकी। उसकी यह लज्जा यह सोचकर और भी सौ गुनी बढ़ गई कि इस खबरका फैलना भी कहीं बाकी नहीं रहा है कि आज जिसे उसने नौकर कहकर सबके सामने अपमानित करनेमें सङ्कोच नहीं किया, दो दिनके बाद स्वामी मानकर उसके ही गलेमें वर-माला पहनानी होगी।

इसलिए रासबिहारीने जब धीरे धीरे कमरेमें आकर निःशब्द, प्रसन्न-मुखसे आसन ग्रहण कर लिया, तब विजया मुँह उठाकर उनके मुँहकी तरफ देख तक न सकी। लेकिन इसके लिए उसने प्रत्येक क्षण प्रतीक्षा की थी और जिन सब युक्ति-तर्कोंकी लहर और अप्रिय चर्चा उठनेको थी, उसका कच्चा मसौदा कलसे ही तैयार कर रक्खा था। इससे वह एक प्रकारसे स्थिर होकर ही बैठी रही। लेकिन वृद्धने उससे ठीक उलटा सुर निकाल कर विजयाको अवाक् कर दिया। वे कुछ क्षण स्तब्ध भावसे ठहर कर एक उसाँस लेकर बोले, “बेटी विजया, सुननेके क्षणसे मुझे कितना ही आनन्द हुआ है, सो बतानेके लिए मैं कल ही दौड़कर आता यदि मुझे अम्लकी पुरानी पीड़ा बिछौनेपर न डाल देती। दीर्घजीवी होओ बेटी,

मैं यही तो चाहता हूँ । यही तो तुमसे आशा करता हूँ।" इसके बाद बहुत ऊँचे ढगकी एक लम्बी उसाँस छोड़कर उन्होंने कहा, "उन सर्वशक्तिमान् मङ्गलमयसे सिर्फ़ यही प्रार्थना करता हूँ कि वे मुझे सुखमें, दुःखमें, भलेमें, बुरेमें जो धर्म है, जो न्याय है, उसीके प्रति ही अविचलित श्रद्धा रखनेकी सामर्थ्य दें।" यह कहकर उन्होने दोनों हाथ माथेपर लगाकर और आँखें बन्द करके, जान पड़ता है, उन सर्व शक्तिमान्‌को ही प्रणाम किया।

बादको आँखे खोलकर सहसा उत्तेजित भावसे कहने लगे, "लेकिन यह बात मैं किसी प्रकार भी सोच नहीं पाता विजया, कि विलास मेरे समान सीधे भोले उदासीन व्यक्तिका लड़का होकर इतना बड़ा पक्का कामकाजी कैसे बन बैठा? जिसके पितामें आज भी संसारके काम-काजका ज्ञान, लाभ-हानिकी धारणा पैदा नहीं हुई, वह इतनी-सी उम्रमें ही ऐसा दृढ़कर्मी किस प्रकार हो गया! क्या उनका खेल है, क्या ससारका रहस्य है, कुछ भी तो समझनेका उपाय नहीं है बेटी!" कहकर और एक बार आँखें मूँदकर उन्होंने माथा झुका दिया।

विजया चुपचाप बैठी रही। रासबिहारी और थोड़ा-सा मौन रहकर कहने लगे, "लेकिन किसी बातकी भी तो अति अच्छी नहीं होती। जानता हूँ, कार्य-साधन ही विलासका प्राण है। उस स्थानपर वह अन्धा है। कर्तव्य-कर्मकी अवहेलना उसके हृदयमें शूलके समान चुभती है, लेकिन इसीलिए क्या मानीका मान नहीं रक्खा जायेगा? दयालके समान व्यक्तिकी भी गलती क्षमा करना क्या आवश्यक नहीं है? जानता हूँ, अपराध छोटे-बड़े, धनी-निर्धनका विचार नहीं करता। लेकिन इसीसे क्या उसे अक्षर अक्षर मान कर चलना होगा? सब समझता हूँ। काम न करना भी दोष है, खबर बिना दिये गैरहाजिर रहना भी अत्यन्त अन्याय है, आफिसका डिसिप्लिन भङ्ग करना भी आफिसके अधिकारीके पक्षमें बड़ा अपराध है; लेकिन दयालको भी क्या,—नहीं बेटी, हम बूढ़े आदमी हैं, हममें वह तेज भी नहीं है—वह जोर भी नहीं है। साहब लोग विलासकी कर्तव्य निष्ठा की चाहे जितनी प्रशसा करें, उसे चाहे जितना बड़ा समझें,— हम लोग लेकिन इसे किसी प्रकार भी अच्छा नहीं कह सकेंगे। अपना लड़का है, इसलिए तो इस मुँहसे झूठ निकलेगा नहीं बेटी। मैं कहता हूँ, काम न हो दो दिन बाद ही हो जाता, न हो दस रुपयोंका नुकसान ही हो जाता, लेकिन इतनेसे ही क्या मनुष्यकी भूल-चूक-दुर्बलता क्षमा नहीं करनी चाहिए? तुम्हारी जमींदारीके भले-बुरेपर ही विलासका पूरा मन लगा रहता है। यह उसकी प्रत्येक बातसे

समझमें आ जाता है। लेकिन मुझे गलत मत समझो बेटी, मैं स्वतः ससार-विरागी होने पर भी यह स्वीकार करता हूँ कि धन-सम्पत्तिकी रक्षा करना गृहस्थका परम धर्म है, उसकी उन्नति करना और भी अधिक धर्म है, क्योंकि उसके बिना ससारका हित नहीं किया जा सकता। और विलासके हाथसे तुम्हारी दोनों व्यक्तियोंकी जमींदारी यदि सुनूँगा कि दुगुनी, चौगुनी, यहाँ तक कि दसगुनी हो गई है तो मुझे उसमें बिन्दुमात्र आश्चर्य नहीं होगा।—और देखता हूँ, कि हो भी यही रहा है। सब ठीक है, सब सच है, लेकिन इसीसे धन-सम्पत्तिकी उन्नतिमें कहीं भी एक साधारण-सी बाधा पहुँचते ही धैर्य खो दिया जाय, यह भी तो बुरा है। मैं इसीसे उन अद्वितीय, निराकारके श्रीपादपद्मोंमें बार बार भीख माँगता हूँ, बेटी, कि उसके उद्धत अविनयके लिए जो दण्ड तुमने दिया है, उसके द्वारा ही वह आगेके लिए सचेत हो जाय।—काम! काम! ससारमें क्या हम सिर्फ़ काम करने ही आये हैं? कामके चरणोंमें क्या दया-माया भी विसर्जित कर देनी होगी? अच्छा ही हुआ बेटी, आज उसने तुम्हारे ही हाथसे सर्वोत्तम शिक्षा-लाभ करनेका सुयोग पाया।"

विजयाने कोई बात ही नहीं कही। रासबिहारीने कुछ क्षण मानो अपने आपमें ही मग्न रह कर बादको मुँह उठाया। जरा हँसकर कोमल कण्ठसे वे फिर कहने लगे, "मेरी दोनों सन्तानोंमें एक प्रचण्डकर्मा है और एकका हृदय स्नेह-ममता करुणाका निर्झर है! एक व्यक्ति जैसे काममें उन्मत्त है, दूसरा उसी प्रकार दया मायासे पागल है! मैं कलसे स्तब्ध होकर केवल यही सोच रहा हूँ कि भगवान् जब इन दोनोंकी जोड़ी मिलाकर रथ चलायेंगे, तब दुःखके ससारमें स्वर्ग ही उतर आयेगा। मेरी और एक प्रार्थना है बेटी, कि इस अलौकिक वस्तुको आँखोंसे देखनेके लिए वे मुझे कमसे कम एक दिनके लिए जरूर जीवित रखें।" कह कर इस बार उन्होंने टेबुलपर मस्तक टेककर प्रणाम किया। फिर मस्तक उठाकर कहा, "और आश्चर्य है, कि धर्मके प्रति भी उसका साधारण अनुराग नहीं है! मन्दिर-प्रतिष्ठाके लिए उसने कितना प्राणान्त परिश्रम किया है! जो उसे जानता नहीं, वह मनमें समझेगा, विलासका ब्राह्मधर्मको छोड़कर शायद ससारमें और कोई उद्देश ही नहीं है। सिर्फ इसीके लिए वह शायद जीवित है। इसे छोड़कर और शायद वह कुछ जानता ही नहीं। लेकिन कैसी भूल है, देखो बेटी, मैं अपने लड़केकी कथामें ऐसा अभिभूत हो गया हूँ कि तुमको ही समझा रहा हूँ। जैसे मेरी अपेक्षा तुम उसे कम समझती हो! जैसे मेरी अपेक्षा उसकी

तुम कम मङ्गलाकाङ्क्षिणी हो !" फिर मृदु मृदु हँसकर कहा, "मेरा इतना आनन्द सिर्फ इसीलिए है बेटी ! मैं तो तुम्हारे हृदयको आरसीके समान स्पष्ट देख पा रहा हूँ । तुम्हारे कल्याणका हाथ बहुत उज्ज्वल दिखाई पड़ रहा है ! और यह भी कहता हूँ कि तुमको छोड़कर यह काम कर ही कौन सकता है, करेगा ही आखिर कौन ? उसके धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष सबकी तुम ही तो सङ्गिनी हो ! तुम्हारे हाथ ही तो उसकी सारी भलाई निर्भर है ! उसकी शक्ति, तुम्हारी बुद्धि । वह भार वहन करके चलेगा, तुम मार्ग दिखाओगी । तब ही तो दोनोंका जीवन सार्थक होगा बेटी । इसी कारण तो आज मेरे सुखकी सीमा नहीं है । आज मैंने आँखोंके सामने देख पाया है कि विलासको अब डर नहीं है, उसके भविष्यके लिए मुझे एक मुहूर्तके लिए भी अब सन्देह करनेकी आवश्यकता नहीं है ! लेकिन पूछता हूँ, इतनी चिन्ता, इतना ज्ञान,—भविष्य-जीवन सफल बना सकनेकी इतनी बड़ी बुद्धि, तुमने अपने इतनेसे मस्तकमें इतने दिन कहाँ छिपा रक्खी थी बेटी ! आज मैं तो एकदम अवाक् हो गया हूँ ।"

विजयाका सर्वाङ्ग चंचल हो उठा, लेकिन वह निःशब्द ही बैठी रही । रासबिहारी घड़ीकी तरफ देखकर चौंककर बोले, "अरे, दस बज गये ! मुझे तो अभी दयालकी स्त्रीको देखने जाना है ।"

विजयाने धीरे धीरे पूछा, "अब वे कैसी हैं ?"

"अच्छी ही हैं," कहकर दरवाजेकी तरफ दो-एक पैर बढ़ाकर सहसा रुककर बोले, "लेकिन असल बात तो अभी कही ही नहीं ।" इसके बाद लौट आये और अपने स्थानपर बैठकर मृदुस्वरसे बोले, "अपने इस बूढ़े काकाजीका एक अनुरोध तुम्हें मानना होगा विजया !—बोलो, मानोगी ?" फिर उसके मुँहका भाव ताड़कर बोले, "सन्तानका यह दुलार माको रखना ही होगा । बोलो, रक्खोगी ?"

विजयाने अस्फुट स्वरसे कहा, "बोलिए ।"

रासबिहारीने कहा, "उसने सिर्फ अपनी नींद ही नहीं त्याग दी है,—वह अनुतापसे भी जला जा रहा है । लेकिन, तुमको बेटी, इस सम्बन्धमें थोड़ा कड़ा होना होगा । कल अभिमानसे वह नहीं आया, लेकिन आज नहीं रह सकेगा—आ ही पड़ेगा; लेकिन क्षमा माँगते ही तुम माफ़ कर दो, सो न हो ! यही मेरा एकमात्र अनुरोध है कि अन्यायका जो दण्ड तुमने उसे दिया है, उस दण्डको कमसे कम एक दिन और वह भोग ले ।"

यह कहकर विजयाके मुँहपर विस्मयका चिह्न देखकर वे कुछ हँसे । फिर

स्नेहसे भीगे स्वरसे बोले, "तुम्हें खुद कितना कष्ट हो रहा है, यह क्या मुझसे छिपा है बेटी ? तुम्हें क्या मैं पहचानता नहीं ? तुम मेरी ही तो बेटी हो। बल्कि मैं जानता हूँ कि तुम उसकी अपेक्षा भी अधिक कष्ट पा रही हो। लेकिन अपराधका पूरा दण्ड मिले बिना प्रायश्चित्त नहीं होता। यह गभीर दुःख वह और एक दिन सहन न करेगा तो मुक्त नहीं होगा! यदि कहीं न बन सको, तो उससे साक्षात् मत करो, लेकिन आज वह विफल होकर लौट जाय। यह यन्त्रणा और भी कुछ समय उसे भोग लेने दो। यही मेरा एकान्त अनुरोध है विजया।"

रासबिहारीके चले जानेपर विजया अकृत्रिम विस्मयसे आविष्टकी नाईं स्तब्ध होकर बैठी रही। इन सब बातोंकी,—इस प्रकारके व्यवहारकी उसने बिलकुल प्रत्याशा नहीं की थी। बल्कि इससे ठीक उल्टेकी आशका करके उसके आते ही उसने अपनेको कड़ा बना लेनेकी मन ही मन चेष्टा की थी। विलास अकेला चोट खाकर चला गया है, लेकिन बदला लेते समय वह अकेला नहीं आयेगा। और तब रासबिहारीके साथ उसे एक बहुत ही कड़े ढगका समझ-बूझ लेनेका मौका आयेगा। उसकी सारी बीभत्सताकी नङ्गी मूर्तिकी कल्पना करके विजयाके मनमें तिल-भर भी शान्ति नहीं रही थी।

जब वृद्ध धीरे धीरे बाहर चला गया तब उसके हृदयपरसे सिर्फ भयका ही एक भारी पत्थर नहीं उतर गया, बल्कि—इस व्यक्तिको किसी समय वह आन्तरिक श्रद्धा करती थी, यह बात भी उसे याद आ गई और क्यों इतनी बड़ी श्रद्धा धीरे धीरे चली गई,—उसके धुँधले आभास मनमें आ आकर उसे कष्ट देने लगे। ऐसा भी एक सशय उसके मनमें उझकने लगा कि हो न हो, वृद्धका यथार्थ सङ्कल्प न समझकर ही मैंने उनके प्रति मन ही मन अविचार किया है और परलोकगत पिताकी आत्मा अपने बाल्य-बन्धुके प्रति किये गये अन्यायसे दुखी हो रही है। वह बार बार अपने आप ही कहने लगी, 'कहाँ, उन्होंने तो सच्चे अपराधके वक्त अपने लड़केको भी क्षमा नहीं किया। बल्कि वे तो बार बार यह अनुरोध कर गये हैं कि मैं कहीं उसे सहज ही क्षमा करके उसके दण्ड-भोगके परिमाणको कम न कर दूँ।'

और एक बात है। वृद्धके सब अनुरोध-उपरोध, आन्दोलन-आलोचनके भीतर जो इशारा सबकी अपेक्षा छिपा रह कर भी सबसे अधिक स्पष्ट हो उठा था वह था विलासका असीम प्रेम और उसका ही अवश्यम्भावी फल—प्रबल ईर्ष्या।

यह वस्तु विजयाके निजके समीप भी अज्ञात नहीं थी, लेकिन बाहरके

आलोड़नसे मानो वह एक नई तरङ्ग उठाकर उसके हृदयमें आकर लगी। इतने दिनों तक जो सिर्फ उसके हृदयके तलदेशमें ही थिराकर पड़ी थी, वही बाहरके आघातसे ऊपर आ गई और और हृदयके ऊपर बिखर कर पड़ने लगी। इसीसे रासबिहारीके बहुत पहले चले जानेपर भी उनकी बातचीतकी झङ्कार उसके दोनों कानोंमें गूँजती रही और विजया वैसी ही निःस्तब्ध खिड़कीके बाहर देखती हुई विभोर बैठी रही। यह सत्य है कि ईर्ष्या वस्तु संसारमें सदैवसे निन्दित है, तथापि उसी निन्दित द्रव्यने आज विजयाकी आँखोंमें विलासकी बहुत सी निन्दाको फीका कर दिया और जिन लोगोंको प्रतिपक्षी कल्पना करके इन दोनों पिता-पुत्रोंकी हजार प्रकारकी प्रतिहिंसाकी भयानकता कलसे उसे प्रति पल निरुद्यम और निर्जीव किये डाल रही थी, आज फिर उन लोगोंको ही अपना आदमी समझनेका सुभीता पानेसे मानो उसकी जान बच गई।

कालीपद आकर बोला, "माजी, तो फिर घरको और एक चिट्ठी लिखवा दूँ कि अब मेरा आना न हो सकेगा?"

विजया इधर-उधर करके बोली, "अच्छा—"

कालीपद जा ही रहा था कि विजयाने उसे बुलाकर लज्जा और दुविधाके साथ कहा, "न हो, मैं यह कहती हूँ कालीपद कि चिट्ठी जब लिख ही भेजी गई है, तब महीने-भरके लिए एक बार घर हो ही न आओ। उनकी बात भी रहे; तुम्हारा भी एक बार घर जाना—बहुत दिनोंसे गये भी नहीं हो, क्या कहते हो?"

कालीपद मन ही मन चकित हो गया, लेकिन सम्मत होकर बोला, "अच्छा तो मैं महीने-भरके लिए घूम ही आता हूँ माजी!" उसके चले जानेपर अपनी इस दुर्बलतासे विजयाको न जाने कैसी भारी लज्जा लगने लगी। लेकिन फिर भी वह उसे लौटाकर मना नहीं कर सकी। इसमें भी उसे शरम मालूम हुई।

## २०

दीवारके किनारेके कमरोंमें विजयाकी जमींदारीका काम-काज चलता था, उनके सामने ही घने पत्तोंकी लीचीके पेड़ोंकी कतार थी। इस कारण रहनेके घरके ऊपरके बरामदेसे वहाँका प्रायः कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था। इसके सिवा, पूर्व दिशाकी दीवारमें एक छोटा-सा दरवाजा था जिसमेंसे जाने-आनेपर कर्मचारियोंमेंसे कौन कब आ-जा रहा है, सो कुछ भी न जाना जा सकता था।

उस दिनसे दयाल फिर नहीं आये। काम करने कचहरीमें आते हैं या नहीं, सङ्कोचवश यह पता भी विजयाने नहीं लगाया। और विलासबिहारी इस ओर पैर नहीं रखते, यह किसीसे पूछे बिना ही उसने स्वतःसिद्धके समान मान लिया। बीचमें सिर्फ एक दिन सबेरे दस मिनटके लिए रासबिहारी मिलने आये थे, लेकिन साधारण भावसे दो-चार बीमारीकी बातें छोड़कर उनसे और कोई बात ही नहीं हुई।

मनुष्यके अन्तरकी बात तो अन्तर्यामी ही जानें, लेकिन, जो प्रसन्नता और सहृदयता लेकर उस दिन रासबिहारी पुत्रके विरुद्ध वकालत कर गये थे, किसी अज्ञात कारणसे वह भाव उनका बदल गया है, यह निश्चित समझकर विजयाने उद्वेग अनुभव किया था। मोटे हिसाबसे सब कुछ मिलाकर एक प्रकारकी अतृप्ति और अशान्तिमें ही उसके दिन कट रहे थे। इस तरह और भी कई दिन कट गये।

आज तीसरे पहर विजया अपने घरके ही निकट नदी-किनारे थोड़ा-सा टहल आनेके लिए अकेली बाहर निकल रही थी, कि वृद्ध नायब कुछ बही-खाते बगलमें दबाये सामने आ खड़े हुए और भक्ति भावसे प्रणाम करके बोले, "कहाँ जा रही हैं मा? कन्हैयासिंह कहाँ है?"

विजयाने हँसकर कहा, "यहीं नजदीक ही थोड़ा-सा नदीके किनारे टहल आनेके लिए जा रही हूँ। दरबानकी जरूरत नहीं है। क्या आपको मेरी कोई आवश्यकता है?"

नायबने कहा, "हाँ, थोड़ा-सा काम था। पर न हो, कल ही हो जायेगा।" उसके लौटनेको उद्यत होते ही विजयाने दुबारा हँसकर पूछा, "यदि थोड़ा सा ही काम है तो आज ही कहिए न। इतने बही-खाते लेकर कहाँ चले हैं?"

नायबने उन सबको दिखाकर कहा, "आपके पास ही आया हूँ। पिछले सालका हिसाब तैयार हो गया है, देख-दाखकर इसपर दस्तखत कर देने होंगे। इसके सिवा, छोटे बाबूने हुक्म दिया है कि चालू सालके हररोजके जमा खर्चमें भी आपकी सही लेनी चाहिए।"

विजया बहुत ही विस्मित होकर लौट आई और बाहरके कमरेमें आकर बैठ गई। नायबने साथ ही आकर उन सबको टेबुलपर रख दिया। ज्यों ही वह बही-खाते खोलने लगा त्यों ही विजयाने बाधा देकर प्रश्न किया, "यह हुक्म छोटे बाबूने कब दिया?"

"आज ही सबेरे दिया है।"

"आज सबेरे वे आये थे?"

"वे तो रोज ही आते हैं।"

"इस समय कचहरीमें हैं?"

नायबने गरदन हिलाकर कहा, "मुझे भेजकर वे अभी अभी गये हैं।"

उस दिनका हङ्गामा किसी भी कर्मचारीसे छिपा नहीं था। नायबने विजयाकी बातका इशारा समझकर धीरे धीरे तमाम बातें कहीं, "विलासबिहारी रोज ठीक ग्यारह बजे कचहरीमें उपस्थित होते हैं, किसीसे कोई विशेष बातचीत नहीं करते, एकाग्रतासे काम करके पाँच बजे घर लौट जाते हैं। दयाल बाबूको तब तकके लिए छुट्टी दे दी गई है जब तक उनके घरकी बीमारी अच्छी न हो जाय। उनके आनेकी आवश्यकता नहीं है।"

विजयाने लज्जित मुँहसे चुपचाप सब कहानी सुनकर समझ लिया कि विलासने ये नये नियम अत्यन्त अभिमानके कारण या रूठकर ही जारी किये हैं। तथापि उसने यह बात नहीं कही कि इतने दिनो जिनकी सहीसे काम चलता था, अब भी चलेगा, उसकी निजकी सही अनावश्यक है। बल्कि वह बोली, "इन्हें रहने दीजिए, कल सबेरे आकर मेरी सही ले जाइएगा।" इस तरह नायबको विदा करके वह उसी स्थानपर स्तब्ध बैठी रही। बाहर दिनका प्रकाश क्रमशः मन्द होने लगा और पडोसियोंके घरोंके शङ्खोंके शब्दसे सन्ध्याका शान्त आकाश चञ्चल हो उठा, फिर भी उसके उठनेके लक्षण दिखाई नहीं दिये। कहा नहीं जा सकता कि और भी कितनी देर वह उसी प्रकार एक भावसे बैठकर काट देती, लेकिन जब बेयरा हाथमें दीपक लेकर कमरेमें घुसा और सहसा अन्धकारमें मालकिनको अकेला देखकर चौंक उठा, तब विजया भी लज्जित होकर उठ खड़ी हुई और बाहर आते ही एकदम स्तम्भित हो गई।

क्यों कि जिसे उसने अपनी आँखोंसे देखा वह उसकी अत्यन्त दूरकी कल्पनासे भी परे था। क्या वह किसी कारणसे,—किसी छलसे भी फिर इस मकानमें पैर रख सकता है! फिर भी उस धुँधले अँधेरेमें उसे स्पष्ट दिखाई पड़ा, उस दिनके उस साहबने ही हैटसमेत प्रायः साढ़े छः फुट लम्बी देहके साथ गेटके भीतर प्रवेश किया है। और साधारण बङ्गालीसे कमसे कम अढाई गुने लम्बे डग रखता हुआ वह इस ओर ही आ रहा है।

आज उसे किसी पुलिस-कर्मचारीका भ्रम नहीं हुआ, किन्तु, आनन्दकी उस अपरिमित दीप्त रेखाको जैसे उसकी आकाश-पाताल तक व्याप्त निराशा और

भयके अन्धकारने पलक मारते ही लील लिया। वृक्ष-लताओंसे घिरे टेढ़े-तिरछे रास्तेसे उसकी देह अवश्य अदृश्य होने लगी लेकिन रास्तेके कङ्कड़ोंमेंसे उसके जूतेकी आवाज क्रमश. ही अधिक निकट आने लगी। विजयाने मन ही मन सोचा कि उसे आदर करके बिठालना भारी अन्याय है, लेकिन दरवाजेके बाहरसे अवहेलना-पूर्वक विदा कर देना भी तो असाध्य है!

इस अवस्था-सङ्कटसे मुक्ति पानेका उपाय उसे किसी ओर खोजनेपर भी न मिला। जिस क्षण रास्तेके मोड़पर कामिनी-वृक्षके निकट वह लम्बी सरल सुन्दर देह उसके सामने आ पड़ी, उसी क्षण वह पीछे फिर कर तेजीके साथ अपने कमरेमें चली गई। वृद्ध नायब अपनी धुनमें चला जा रहा था, अकस्मात् साहबको देखकर घबड़ा उठा। लेकिन साहबके प्रश्नसे उसने पहचान लिया और तब आश्वस्त तथा निरापद होकर जवाब दिया, "हाँ, वे बाहरकी बैठकमें ही हैं।" इसके बाद ही वह चला गया। प्रश्न और उत्तर दोनों ही विजयाने सुने। क्षण-भर बाद ही कमरेमें पहुँचकर नरेन्द्रने नमस्कार किया। उसने छड़ी और टोपी टेबुलपर रखकर हँसते हुए कहा, "मैं देखता हूँ, मेरी दवाईका आश्चर्यजनक फल हुआ है, वाह!"

एक क्षणके पहले ही विजयाने मन ही मन सोचा था कि आज जान पड़ता है वह आँखें उठाकर देख भी नहीं सकेगी।—एक बातका जवाब तक उसके मुँहसे नहीं निकल सकेगा। लेकिन आश्चर्य है कि इस व्यक्तिका केवल कण्ठस्वर सुनते ही न सिर्फ उसका द्विधा-सङ्कोच ही इन्द्रजालके समान लुप्त हो गया, बल्कि उसके हृदयके अँधेरे, अज्ञात कोनेमें सुरबँधी बीणके तारोंके ऊपर किसीने मानो बिना जाने उँगली फेर दी और पल-भरमें ही विजया अपना सारा विषाद भूलकर बोल उठी, "किस प्रकार जाना? मुझे देखकर, या किसीसे सुन कर?"

नरेन्द्र बोला, "सुन कर क्यों, आपने क्या दयाल-बाबूसे सुना नहीं, कि, मेरी दवाई खानी भी नहीं पड़ती, सिर्फ प्रेस्क्रिप्शनके ऊपर एक बार आँखें फिरा कर उसे फाड़ कर फेंक देनेपर भी आधा-सा काम हो जाता है!" और अपने इस मज़ाकसे प्रफुल्ल होकर उसने अट्टहास्यसे सारा कमरा कँपा दिया।

विजयाने समझा, ये दयालसे सब कुछ सुन कर ही आज व्यंग्य करने आये हैं। इसीलिए इस असङ्गत उच्चहास्यसे मन ही मन नाराज़ होकर तानेज़नी करते हुए कहा, "ओ,—इसीलिए शायद बाकी आधा अच्छा करनेके लिए दया करके फिर दवाई लिख देनेके लिए आये हैं!"

खोचा खाकर नरेन्द्रकी हँसी थम गई। उसने कहा, "वास्तवमें यह खूब तमाशा हुआ!"

विजयाने कहा, "इसीलिए, जान पड़ता है इतने खुश हो रहे हैं?"

नरेन्द्रका मुँह गम्भीर हो गया। उसने कहा, "खुश हुआ हूँ? बिलकुल नहीं। अवश्य यह बात एकदम अस्वीकार नहीं कर सकता कि सुनते ही पहले थोड़ा आमोद प्रतीत हुआ था, लेकिन उसके बाद ही वास्तवमें दुःखी हुआ हूँ। यह सच है कि विलास बाबूका मिज़ाज उतना अच्छा नहीं है, खामख़्वाह नाराज होकर दूसरेका अपमान कर बैठते हैं,—लेकिन इसीलिए आप भी असहिष्णु बन कर कितनी ही अपमानकी बातें कर बैठे, यह भी तो अच्छा नहीं है। सोच कर तो देखिए भला, बात खुलनेपर भविष्यत्में कितनी बड़ी लज्जा और दुःखका कारण बन जायेगी? मेरा विश्वास कीजिए वास्तवमें यह सुनकर मैं अत्यन्त दुःखित हुआ हूँ। मेरे कारण आप लोगोंमें इस प्रकारकी एक अप्रीतिकर घटना घटित होनेसे—"

इस व्यक्तिके हृदयकी पवित्रतासे विजया मन ही मन मुग्ध हो गई। फिर भी परिहासकी भङ्गीसे उसने कहा, "लेकिन हँसी भी तो रोक नहीं पा रहे हैं!" कहकर वह खुद भी हँस पड़ी।

नरेन्द्रने ज़ोर लगाकर इस बार अत्यन्त गम्भीर होकर कहा, "क्यों आप बार बार यही सोचती हैं? सचमुच ही मैं अत्यन्त दुःखी हुआ हूँ। लेकिन उस समय आप लोगोंके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं जानता था।" थोड़ी देर चुप रहकर फिर उसने कहा, "उस दिन ही नीचे उनके पिताजीने सब हाल सुनाकर कहा कि यह सब ईर्ष्याकी करामात है। दयाल बाबू भी कल यही बोले। सुन कर मैं कह नहीं सकता कि मुझे कितनी लज्जा हुई है। लेकिन मैं यह भी तो नहीं सोच पाता कि इतने लोगोंमेंसे मुझमें ही ईर्षा करनेके लायक क्या है। आप लोग ब्राह्म समाजी हैं, आवश्यकता पड़नेपर सबसे ही बातें करती हैं,—मुझसे भी की हैं। इसमें ऐसा कौन-सा दोष उन्होंने देख पाया है, मैं तो अब भी नहीं खोज पाता। जो भी हो, मुझे आप लोग क्षमा कीजिएगा,—और अपनी भाषामें उसे क्या कहते हैं—अभि—अभिनन्दन! वही अभिनन्दन आप लोगोंका किये जा रहा हूँ, आप लोग सुखी हों!"

विजयाने यह लक्ष्य किया था कि उसने अपने आचरणका उल्लेख करके भी विलासके उस दिनके आचरणके सम्बन्धमें लेशमात्र भी इशारा नहीं किया,

लेकिन उसकी अन्तिम बातसे विजयाकी दोनों आँखें अकस्मात् आँसुओंसे प्लावित हो उठीं। उसने गरदन फिरा कर किसी तरह आँखोंके आँसू सँभाल लिये।

प्रत्युत्तरके लिए प्रतीक्षा किये बिना ही नरेन्द्रने पूछा, "अच्छा, यह तो बताइए कि उस दिन कालीपदके द्वारा सहसा स्टेशनपर माइक्रोस्कोप क्यों भेज दिया था?"

विजयाने अपना रुँधा गला साफ करके कहा, "अपनी चीज़ आपने खुद ही तो वापस ले लेनी चाहिए थी!"

नरेन्द्र बोला, "यह ठीक है, लेकिन कीमतकी बात तो उसके द्वारा आपने कहला नहीं भेजी। ऐसी दशामें तो मेरा—"

विजयाने कहा, "हाँ, नहीं कहला भेजी। बुखारके कारण मुझसे भूल हो गई। लेकिन उस भूलका दण्ड भी तो आपने मुझे कम नहीं दिया!"

नरेन्द्रने लज्जित होकर कहा, "लेकिन कालीपदने तो कहा—"

विजया बाधा देकर बोली, "सो मैंने सुना है। उसने कुछ भी कहा हो, लेकिन आपने इस बातपर किस प्रकार विश्वास कर लिया कि आपको उपहार देनेकी गुस्ताखी मुझसे हो सकती है? और यदि वह सचमुच ही की हो तो दण्ड अपने हाथसे क्यों नहीं दिया? नौकरके द्वारा क्यों अपमान किया? आपका मैंने क्या बिगाड़ा था?" यह कहते कहते ही उसका गला रुँध गया।

नरेन्द्रने लज्जित और अत्यन्त आश्चर्ययुक्त होकर विजयाके मुँहकी तरफ निहार कर देखा कि वह गरदन फिराकर खिड़कीके बाहर ताक रही है। मुँहपर उसकी दृष्टि नहीं पड़ी, पड़ी सिर्फ उसके गलेकी हीरेकी कण्ठीके थोड़ेसे हिस्सेपर,—दीपकके आलोकमें वह विचित्र रश्मि प्रतिफलित कर रहा था। दोनों ही कुछ क्षण मौन रहे। उसके बाद नरेन्द्रने दुखी स्वरसे धीरे धीरे कहा, "यह मैं उसी समय समझ गया था कि मैंने ठीक नहीं किया, लेकिन गाड़ी उस समय छूट चुकी थी। कालीपदका दोष क्या है, उसपर मेरा नाराज़ होना किसी प्रकार भी उचित नहीं हुआ।" थोड़ा-सा चुप रहकर फिर कहा, "देखिए, मैं अच्छी तरह जान गया हूँ कि यह ईर्ष्या कितनी बुरी चीज़ है। यह सिर्फ़ अपनी ही धुनमें नहीं बढ़ती जाती, छूतकी बीमारीके समान दूसरे लोगोंपर भी आक्रमण करना नहीं छोड़ती। अब तो मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि मेरे प्रति ईर्ष्या करनेके समान भ्रम विलासबाबूको और कुछ हो ही नहीं सकता। उनके पिताजीने भी उसके लिए लज्जा और दुःख प्रकाशित किया था, लेकिन आप

सुनकर शायद आश्चर्य कीजिएगा कि मेरी खुदकी भी उस समय थोड़ी भूल नहीं हुई।"

विजयाने मुँह फिराकर प्रश्न किया, "आपकी भूल कैसी?"

नरेन्द्रने अत्यन्त सहज और स्वाभाविक भावसे उत्तर दिया, "मेरा निरर्थक अपमान करनेके कारण आप सचमुच ही दुखी हुई थीं, और उस समय आपकी बातें सुनकर यह सभीने समझ लिया था। उसके बाद रासबिहारीबाबूने जब नीचे जाकर अपने लड़केकी उस ईर्ष्याकी बात चलाकर मुझे दुःख करनेको मना किया, तब सहसा मेरा दुःख मानो और भी बढ़ गया। मेरे मनमें फिर फिर कर यही आने लगा कि, निश्चय ही कुछ कारण है, नहीं तो यों ही कोई किसीसे ईर्ष्या नहीं करता। आपसे आज मैं ठीक कह रहा हूँ कि उसके बाद आठ-दस दिन तक सम्भवतः चौबीस घण्टोंमेसे तेईस घण्टे केवल आपके विषयमें ही सोचा करता था, केवल आपकी बीमारीकी वे ही बातें याद आती थीं। इसीलिए तो मैंने कहा, कि यह बड़ा भयानक छूतका रोग है। काम-काज चूल्हेमें गया,—दिन-रात आपकी ही बात मनमें चक्कर काटने लगी। भला बताइए तो इसकी क्या आवश्यकता थी? और सिर्फ क्या इतना ही! दो तीन दिन अनर्थक इसी रास्तेसे पैदल चलकर गया-आया केवल आपको देखनेके लिए। इस तरह कितने ही दिनों तक यह पागल भूत मेरी गरदनपर सवार बना रहा!" कहकर वह हँसने लगा।

विजयाने न मुँह फिराकर देखा और न किसी भी बातका जवाब दिया, चुपचाप उठ कर बगलके दरवाजेसे वह कमरेके भीतर चली गई और तब दूसरे व्यक्तिकी हँसी पलक मारते ही लुप्त हो गई। जिस रास्ते वह बाहर चली गई, उसी ओर अँधेरेमें निर्निमेष देखता हुआ नरेन्द्र हतबुद्धि होकर सिर्फ यही सोचने लगा कि बिना जाने यह और किस नये अपराधकी सृष्टि वह कर बैठा!

अतएव बेयराने आकर जब कहा, "आप जाइएगा नहीं, आपकी चाय तैयार हो रही है", तब नरेन्द्र व्यस्त होकर बोल उठा, "मुझे चायकी तो आवश्यकता नहीं है।"

"लेकिन माजीने आपसे बैठनेको कह दिया है।" कहकर बेयरा चला गया। इस बातने भी नरेन्द्रको कम चकित नहीं किया।

प्रायः पन्द्रह मिनटके बाद नौकरके हाथ चाय और अपने हाथ जल-पानकी तश्तरी लेकर विजयाने प्रवेश किया। दीपकके उसे धुँधले आलोकमें शायद किसीकी भी आँखें यह न पकड़ पातीं कि हज़ार यत्न करके भी वह अपने मुँहपरसे

रोनेकी छाया पोंछ कर हटा नहीं पाई है, लेकिन डाक्टरकी अभ्यस्त आँखोंको वह धोखा नहीं दे सकी। लेकिन, उसने अबकी बार सहसा कोई सम्मति प्रकाशित नहीं की। इन थोड़े ही दिनोंमें उसने अनेक विषयोंमें सतर्क होना सीख लिया है। जिस दिन एक तरहसे अपरिचित होनेपर भी उसने अपने भीतरका साधारण-सा कुतूहल और इच्छाकी चञ्चलता दबा न सकनेके कारण हाथसे विजयाकी ठोड़ी पकड़ ली थी, वह दिन अब नहीं रहा था। इसीसे वह चुप बैठा रहा।

नौकर टेबुलपर चाय रखकर चला गया। विजया उसीके पास जल पानकी तश्तरी रखकर अपनी जगहपर जा बैठी। नरेन्द्रने उसी क्षण तश्तरी नज़दीक खींचकर इस प्रकार खानेमें मन लगा दिया जैसे इसीकी वह प्रतीक्षा कर रहा था।

पाँच-छः मिनट चुपचाप कट जानेके बाद विजयाने ही पहले बात की। नीरवताका गोपन भार अधिक न सह सकनेके कारण सहसा जैसे जोर लगाकर ही वह हँसी और बोली, "कहाँ, आपने तो अपने उस पगले भूतकी बात खत्म ही नहीं की?"

नरेन्द्र शायद दूसरी बात सोच रहा था, इसीसे उसने मुँह उठाकर पूछा, "किसकी बात कह रही हैं?"

विजयाने कहा, "वही पगला भूत, जो कुछ दिनोंके पहले आपके कन्धेपर चढ़ बैठा था। अब तो वह उतर गया है न?"

इस बार नरेन्द्र भी हँसकर गरदन हिलाकर बोला, "हाँ, उतर गया है।"

विजयाने कहा, "चलो अच्छा हुआ! कहिए कि आप बच गये! नहीं तो कौन जानता है कितने दिन वह आपको और भी घुड़दौड़ कराता हुआ घूमता।"

नरेन्द्र चायका प्याला मुँहसे लगाकर सिर्फ इतना ही बोला, "हाँ।"

विजयाने यद्यपि फिर कोई अच्छी बात कहनी चाही, लेकिन सहसा और कोई बात ढूँढ़ न पानेके कारण वह गले तक आई हुई लम्बी साँस दबाकर चुप रह गई। दूसरेकी गरदनसे भूत उतर जानेके आनन्दकी अनुवृत्तिको खींच ले चलना अब उसकी शक्तिके बाहर हो गया।

फिर कुछ क्षणों तक सारा कमरा स्तब्ध बना रहा। नरेन्द्रने धीर-स्वस्थ भावसे चायकी प्याली खत्म करके टेबुलके ऊपर रख दी, और तब पाकेटसे घड़ी बाहर

निकाल कर कहा, " अब दस मिनटका ही समय है, मैं चला। "

विजयाने मृदुस्वरसे प्रश्न किया, " कलकत्ता लौट जानेके लिए यही शायद अन्तिम गाड़ी है ? "

नरेन्द्र उठकर खड़ा हो गया और टोपी सिरपर लगाकर बोला, " है तो और भी एक गाडी, लेकिन वह लगभग डेढ़ घण्टेके बाद जायेगी। चला— नमस्कार। " कहकर छड़ी उठाकर कुछ तेज चालसे ही वह कमरेसे बाहर हो गया।

## २१

विलास यथासमय कचहरी आकर और अपना काम समाप्त करके मकान चला जाता था; नितान्त आवश्यकता होनेपर कर्मचारी भेजकर विजयाका मत भी ले लेता था, लेकिन खुद नहीं आता था। विजयाने भी यह समझ लिया था कि बुला भेजे बिना वह खुद अपनी तरफसे उपयाचित होकर नहीं आयेगा, परन्तु उसके आचरणसे अनुताप और आहत अभिमानकी वेदनाके अतिरिक्त क्रोधकी ज्वाला व्यक्त नहीं होती थी, इसलिए विजयाका निजका क्रोध शान्त हो गया था।

बल्कि, अपने व्यवहारमे ही एक नाटकके अभिनयका आभास अनुभव करके उसे बीच बीचमें बड़ी लज्जा होती थी। अकसर ही वह सोचती थी कि न जाने कितने लोग इस बातको लेकर हँसी-मजाक कर रहे हैं। इसके अतिरिक्त जो व्यक्ति अब तक सबकी आँखोंमें सर्वेसर्वा होकर विराजता था, उसे, विशेष करके जमींदारीके बुरे-भले कामोंमें उसने जिन लोगोंपर शासन करके उन्हें अपना शत्रु बना लिया था, उन सबके सामने उसे अकस्मात् इतना छोटा कर देनेके कारण विजया अपने एकान्त हृदयमें सच्ची व्यथा अनुभव कर रही थी। पहलेकी अवस्थाको वापस न लौटाकर सिर्फ इस घटनाके अस्तित्वको ही यदि वह किसी प्रकार मिटा दे सकती तो बच जाती। जिस समय उसके मनकी यह अवस्था थी उसी समय सहसा एक दिन तीसरे पहर कचहरीके बेयराने आकर कहा, " विलासबाबू मिलना चाहते हैं। "

मामला एकदम नया था। विजया चिट्ठी लिख रही थी; मुँह उठाये बिना ही उसने कहा, " आनेको कहो। " उसका मन अज्ञात आशङ्कासे काँपने लगा। लेकिन विलासके प्रवेश करते ही वह उठ खड़ी हुई और शान्त भावसे नमस्कार

करके बोली, " आइए।" विलासने आसन ग्रहण करके कहा, " कामकी अधिकताके कारण आ नहीं सका, तुम्हारा शरीर तो अच्छा है ?"

विजयाने गरदन हिलाकर कहा, " हाँ।"

" वही दवा चल रही है ? "

विजयाने इसका उत्तर नहीं दिया, लेकिन विलासने भी प्रश्न न दुहराकर दूसरी बात छेड़ दी। वह बोला, " कल नये वर्षका नया दिन है। मेरी इच्छा होती है कि सबको इकट्ठा करके कल सबेरे कुछ भगवत् चर्चा की जाय।"

विलासने अपने पहले प्रश्नके उत्तरके लिए जोर नहीं डाला, केवल इससे ही विजयाके मनपरसे एक भार उतर गया। वह खुशी होकर बोल उठी, " यह तो बहुत अच्छी बात है।"

विलास बोला, " लेकिन अनेक कारणोंसे मन्दिरमें जानेका सुभीता मुझे नहीं होगा। यदि तुम्हारी असम्मति न हो तो मैं कहता हूँ कि इसी स्थानपर—"

विजयाने उसी क्षण सम्मत होकर समर्थन किया, यहाँ तक कि वह उत्साहित हो उठी। उसने कहा, " तो फिर घरको फूल-पत्तों और लताओं आदिसे सजा देना ठीक न होगा ? आपके मकानमें तो फूलोंकी कमी नहीं है। यदि मालीको हुक्म देकर कल सबेरे ही—आपकी क्या राय है ? हो सकता है न ?"

विलास विशेष किसी प्रकारके आनन्दका आडम्बर न दिखाकर सहज भावसे ही बोला, " अच्छा, ऐसा ही होगा। मैं सारा बन्दोबस्त कर दूँगा।"

विजया क्षण-भर मौन रहकर बोली, " कल तो वर्षका पहला दिन है,— अच्छा, मैं कहती हूँ कि साथमें थोड़ा-सा खिलाने-पिलानेका भी आयोजन कर दिया जाय—"

विलासने इस प्रस्तावका भी अनुमोदन किया और कहा कि उपासनाके बाद जल-पानका प्रबन्ध अच्छी तरह हो जाय, इसके लिए मैं गुमाश्तेको हुक्म देता जाऊँगा। और भी दो-चार साधारण बातें करके उसके बिदा हो जानेपर बहुत दिनोंके बाद विजयाके अन्तरमें तृप्ति और उल्लासकी दक्षिणी हवा बहने लगी। उस दिनके उस खुले सङ्घर्षके बादसे अव्यक्त ग्लानिके आकारमें जो वस्तु उसे प्रतिक्षण दुःख दे रही थी, उसका भार कितना अधिक था, आज छुटकारा पाकर उसने यह बात जिस प्रकार अनुभव की उस प्रकार, जान पड़ता है, किसी दिन नहीं की थी। इसीलिए आज उसने बड़े कष्टके साथ सोचा कि इन कुछ दिनोंके भीतर ही विलास पहलेकी अपेक्षा जैसे अधिक दुर्बल हो गया है।

अपनी आँखोंके सामने साफ़ साफ़ देख कर कि अपमान और पश्चातापके आघातने उसकी प्रकृतिको बदल दिया है, अनजानेमें ही विजयाकी लम्बी साँस निकल पड़ी और वह वृद्ध रासबिहारीकी उस दिनकी बातोंपर चुपचाप मन ही मन विचार करने लगी। विलासबिहारी उसे अत्यन्त प्रेम करता है, यह बात उसके भावसे, इङ्गितसे, भङ्गीसे, सब प्रकारसे व्यक्त हो चुकी है, फिर भी एक दिनके लिए भी एकान्तमें इस प्रेमकी बातने विजयाके मनमें स्थान नहीं पाया। बल्कि, शामके गहरे अँधेरेमें एकाकी कमरेमें उसके सङ्ग-विहीन प्राण जब व्यथासे व्याकुल हो उठते हैं, तब कल्पनामें निःशब्द पद-सञ्चार करके जो धीरे धीरे उसके बगलमें आ बैठता है, वह विलास नहीं और एक व्यक्ति है। अलस मध्याह्नमे जब पुस्तकमें मन नहीं लगता, सिलाईका काम भी असह्य जान पड़ता है, प्रकाण्ड शून्य गृह सूर्यकी किरणोंसे साँय साँय किया करता है, तब सुदूर भविष्यत्की घर-गिरिस्तीकी जो स्निग्ध छवि इस सूने घरको पूर्ण करके उसके अन्तरमें धीरे धीरे जाग उठती है, उसमें विलासके लिए कहीं थोड़ा-सा भी स्थान नहीं रहता। और मज़ा यह कि जो व्यक्ति हृदयका सारा स्थान घेर कर बैठ जाता है, संसार-यात्राके दुर्गम पथमें सहायक अथवा सहयोगीके हिसाबसे विलासकी अपेक्षा उसका मूल्य बहुत ही कम है। वह जैसा अपदार्थ है, वैसा ही निरुपाय भी। विपत्तिके दिन उससे कोई भी सहायता नहीं मिलेगी। उसी अकर्मण्य मनुष्यके सारे अकार्यका बोझा वह खुद सारे जीवनके लिए माथेपर रख कर चल रही है, यह जानते हुए भी विजयाका समस्त देह-मन अपरिमित आनन्दसे थरथर काँपने लगता है। विलासके चले जानेपर विजयाके इस मनोभावमें आज भी कोई बाधा नहीं पड़ी, लेकिन आज उसने बिना ही प्रार्थनाके विलासके दोषोंके पुनर्विचारका भार अपने हाथमें ले लिया और किसीसे कोई तर्क किये बिना उसने यह बात मान ली कि घटना-चक्रसे उसके स्वभावका जो रूप प्रकट हो गया था उसका वास्तविक स्वभाव उतना हीन नहीं है। यहाँ तक कि अत्यन्त उदारताके साथ आज उसने यह भी अपनेसे नहीं छिपाया कि विलासके समान मानसिक अवस्थामें पड़कर जगतके अधिकाश व्यक्ति शायद ही दूसरे प्रकारका आचरण करते। उसने प्रेम किया है, और प्रेमके अपराधसे ही वह लाछित और दण्डित हुआ है, बार-बार यही स्मरण करके आज उसने करुणा-मिश्रित ममताके साथ उसे क्षमा कर दिया।

सबेरे उठकर विजयाने सुना, विलास बहुत पहले ही नौकर-चाकर लेकर घर

सजानेके काममें लग गया है। वह जल्दी ही तैयार हो गई और नीचे उतर आकर लज्जित भावसे बोली, "मुझे बुला क्यों नहीं भेजा?"

विलास स्नेहमय स्वरमें बोला, "जरूरत क्या थी?"

विजयाने थोड़ा-सा हँसकर प्रसन्न मुखसे उत्तर दिया, "जान पड़ता है, मैं इतनी अकर्मण्य हूँ कि इस काममे भी कोई सहायता नहीं कर सकती? अच्छा, अब बताइए, मैं क्या करूँ?"

अनेक दिनोंके बाद विलास आज हँसा, उसने कहा, "तुम सिर्फ नजर रक्खो कि हम लोगोंके काममें कोई भूल तो नहीं हो रही है।"

"अच्छा" कहकर विजया प्रसन्न मुखसे एक कोचपर जाकर बैठ गई। थोड़ी देरके बाद उसने प्रश्न किया, "और जल-पानका प्रबन्ध?"

विलासने फिर कर देखा और कहा, "सब ठीक हो रहा है, कोई चिन्ता नहीं है।"

"अच्छा, मैं उस तरफ़ ही क्यो न जाऊँ?"

"अच्छा तो है।" कहकर विलास फिर काममें लग गया।

आठ बजेके भीतर ही सब आयोजन पूरा हो गया। इस बीच विजया अनेक बार आ-जाकर अनेक छोटे-मोटे कामोंमें विलासकी सलाह ले गई,—उसे कहीं भी कोई बाधा नहीं मालूम हुई। दोनोंमेंसे शायद किसीने भी यह खयाल नहीं किया कि अनजानमें कब वह सञ्चित विरोधकी ग्लानि मिटकर बात-चीतका रास्ता इतना सहज और सुगम हो गया है।

विजया हँसकर बोली, "एकदम अपदार्थ समझकर आपने मुझे बाद दे दिया है। लेकिन मैंने भी आपकी एक भूल पकड़ी है, वह बताती हूँ।"

विलासने कुछ अचम्भेमें पड़कर पूछा, "अपदार्थ तो मैंने कदापि नहीं समझा, लेकिन भूल कौन-सी पकड़ी है?"

विजया बोली, "हम लोग हैं तो कुल चार पाँच आदमी, लेकिन जल पानका प्रबन्ध हो गया है लगभग बीस आदमियोंका, यह जानते हैं?"

विलासने कहा, "सो तो होना ही चाहिए। बाबूजीने अपने कई बन्धु-बान्धवोंको निमन्त्रण दिया है। पर वे कितने हैं और कौन कौन आयेंगे, यह मैं ठीक ठीक नहीं जानता।"

विजयाने बहुत ही विस्मित होकर कहा, "कहाँ, यह बात तो मुझसे कही नहीं?"

विलासने खुद भी विस्मित होकर, पूछा, "यहाँसे कल मेरे जानेके बाद बाबूजीने तुम्हें चिट्ठी लिखकर नहीं बताया?"

"नहीं।"

"लेकिन उन्होंने तो स्पष्ट कहा था—" विलास रुक गया।

विजयाने प्रश्न किया, "क्या कहा था?"

विलासने क्षण-भर स्थिर रहकर कहा, "शायद मेरे सुननेमें भूल हुई हो, या फिर वे ही चिट्ठी लिखकर सूचित कर देनेकी बात भूल गये हों।"

विजयाने और कोई प्रश्न नहीं किया, लेकिन, उसके मनके भीतरकी ज्योत्स्नाकी प्रसन्नता सहसा मेघसे ढँक गई।

आधे घण्टेके बाद रासबिहारी स्वयं आकर उपस्थित हुए और नौ बजेके भीतर ही उनके निमन्त्रित मित्रोंका दल एक एक करके आने लगा। उनमें सभी ब्राह्मसमाजी नहीं थे, सम्भवतः वे रासबिहारीका साग्रह अनुरोध टाल न सकनेके कारण ही आनेको बाध्य हुए थे।

रासबिहारीने सबका अत्यन्त आदरपूर्वक स्वागत किया और विजयासे जिन लोगोंका साक्षात् परिचय नहीं था, उन्हें परिचित कराते हुए निकट भविष्यमें ही इस लड़कीसे अपने घनिष्ठ सम्बन्धका इशारा कर देनेमें भी भूल नहीं की। विजयाने अस्पष्ट कण्ठसे सादर उनसे आसन ग्रहण करनेका अनुरोध किया। प्रचलित शिष्टाचार-पालनके इन सब कामोंमें जब वह संलग्न थी, तब निकट ही बगीचेके सँकरे रास्तेपर दयाल बाबू दिखाई पड़े। लेकिन, वे अकेले नहीं थे, एक अपरिचिता तरुणी भी उनके साथ थी। लड़की सुरूपा थी, उम्र विजयाकी अपेक्षा सम्भवतः कुछ अधिक थी। दयालने उसका अपनी भानजी कहकर परिचय दिया। नाम नलिनी था। कलकत्ताके कालेजमें बी० ए० में पढ़ती है। अभी तक गरमीकी छुट्टी आरम्भ नहीं हुई है, लेकिन मामीकी बीमारीमें सेवा करनेके लिए कुछ पहले ही दो दिन हुए मामाके पास आई है और स्थिर हुआ है कि ग्रीष्मका अवकाश यहीं काट कर जायेगी।

नलिनीको विजयाने कलकत्तेमें बिल्कुल ही न देखा हो, सो बात नहीं थी, लेकिन दोनोंमें बातचीत नहीं हुई थी। तथापि इतने परिचित और अपरिचित पुरुषोंमें वही एक ऐसी थी जो उसको सबकी अपेक्षा अन्तरङ्ग जान पड़ी। विजयाने दोनों हाथ बढ़ाकर उसे आदरपूर्वक अपने कमरेमें खींच लिया और समीप बिठाल कर उससे प्रेमालाप आरम्भ कर दिया।

उपासना साढ़े नव बजे शुरू करनेकी बात थी। उसमें कुछ देर थी इससे सब लोग बाहरके बरामदेमें खड़े होकर बातें कर रहे थे। उसी समय घरके भीतरसे रासबिहारीका उच्च कण्ठ सुनाई पड़ा। वे अत्यन्त आदरके साथ किसीसे कह रहे थे, "आओ बेटा, आओ। तुम्हारे पास ढेर काम रहता है, इससे मुझे आशा नहीं थी कि तुम समय निकाल कर आ सकोगे।"

यह सम्मानित और कामका व्यक्ति कौन है, यह जाननेके लिए विजयाने मुँह उठाकर सामने ही देखा, नरेन्द्र है। लेकिन असम्भव समझकर हठात् उसने विश्वास नहीं किया। नलिनीने भी उसीके साथ मुँह उठाकर कहा, "नरेन्द्र बाबू!"

उसे रासबिहारीने बुलाया है और वह यह निमन्त्रण स्वीकार करके इस घरमें आया है, यह घटना ऐसी अचिन्तनीय थी कि उससे विजयाकी सारी विचार-शक्ति विपर्यस्त हो गई। वह उस ओर मुँह उठाकर नहीं देख सकी, लेकिन, उसने विलासबिहारीकी सविनय अभ्यर्थना स्पष्ट सुनी और दूसरे ही क्षण रासबिहारी दोनोंको लेकर कमरेके बीच आ खड़े हुए। साथ साथ और भी अनेक व्यक्ति आये। तब वृद्ध शान्त गम्भीर स्वरसे इन दोनों युवकोंको सम्बोधित करके कहने लगे, "अपने अपने पिताके सम्पर्कसे तुम दोनों आपसमें भाई होते हो, यह बात ही आज तुम लोगोंसे मैं विशेष रूपसे कहना चाहता हूँ विलास। बनमाली गये, जगदीश चले गये, मेरी भी पुकार हो रही है। इहजगतमें हम लोगोंका सिर्फ देहके अतिरिक्त और कुछ भिन्न नहीं था, तुम आजकलके लड़के शायद इस बातको समझोगे नहीं,—समझना सम्भव भी नहीं है, मैं समझाना भी नहीं चाहता। केवल आज इस नये वर्षके पुण्य दिनमें तुम दोनोंसे अनुरोध करना चाहता हूँ कि अपने गृह-विच्छेदकी कालिमासे इस बूढ़ेके शेष कुछ दिनोंको अन्धकारपूर्ण मत कर डालो।" उनकी अन्तिम वाणी काँप उठी और मानों रुलाईसे रुँध गई। नरेन्द्र और न सह सका। उसने आगे बढ़कर विलासका एक हाथ अपने दाहने हाथसे खींच कर आवेगके साथ कहा, "विलास बाबू, मेरे सारे अपराध क्षमा कर दीजिए। मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ।"

प्रत्युत्तरमें विलास हाथ छोड़कर नरेन्द्रको बलपूर्वक आलिङ्गन करके बोल उठा, "अपराध मैंने ही किया है नरेन्द्र। मुझे ही क्षमा करो।"

बूढ़े रासबिहारी आँखें मूँदे हुए कम्पित मृदुकण्ठसे बोल उठे, "हे सर्वशक्तिमान् परम पिता परमेश्वर! इस दया, इस करुणाके लिए तुम्हारे श्रीपाद-पद्मोंमें मेरे कोटि कोटि नमस्कार।" यह कहकर उन्होंने दोनों हाथ

जोड़कर माथेसे लगा लिये और चादरके कोनेसे आँखें पोंछकर कहा, "आजके शुभ मुहूर्तमें तुम दोनोंका जीवन सार्थक हो। आप लोग भी यही आशीर्वाद दीजिए।" यह कहकर उन्होंने विस्मय-विह्वल अभ्यागत सज्जनोंके मुँहकी ओर दृष्टिपात किया।

दयालके अतिरिक्त कोई भी कुछ नहीं जानता था, अतएव इस मर्मस्पर्शी करुण अनुष्ठानका यथार्थ तात्पर्य न समझ सकनेके कारण सचमुच ही उन लोगोंके विस्मयकी सीमा नहीं रही। रासबिहारीने पलक मारते ही, इसका अनुभव कर लिया। वे उन सबकी तरफ देखकर स्निग्ध भावसे मुसकिराकर बोले, " नारियाँ जो कहा करती हैं, कि आरी आनेमें काटती है, और जानेमें भी काटती है। सो मेरा भी वही हाल हुआ था। मेरा यह भी लड़का है, वह भी लड़का है", कहकर नरेन्द्र और विलासको आँखके इशारेसे दिखाकर कहा, " मेरे दाहने हाथमें जैसी पीड़ा होती है वैसी ही बाँयें हाथमें भी होती है। लेकिन आप लोगोंकी कृपासे आज मेरा अत्यन्त शुभ दिन है, अत्यन्त आनन्दका दिन है। मैं और क्या कहूँ।"

भीतरका मामला गहराईसे न समझनेपर भी प्रत्युत्तरमें सभीने एक प्रकारकी हर्षसूचक अस्पष्ट ध्वनि की।

रासबिहारी थोड़ी-सी भी गरदन झुकाये बिना, दुपट्टेके छोरसे फिर आँखें पोंछकर निकटवर्ती आसनपर चुपचाप बैठ गये। उस स्निग्ध, गम्भीर मुँहकी तरफ़ देखकर उपस्थित जनोंमेंसे किसीको भी अनुमान करनेको बाकी नहीं रहा कि उनका हृदय अनिर्वचनीय भाव-राशिसे ऐसा भर गया है कि अब और कुछ कहनेके लिए आधे तिल-भर भी स्थान नहीं रहा है। दयाल अपनी पकी दाढ़ीपर हाथ सहलाते सहलाते उठ खड़े हुए और भगवत-उपासनाके आरम्भमें भूमिकाके रूपमें बोले, " जिस स्थानपर विरुद्ध हृदय सम्मिलित होते हैं, वहाँ भगवान्का आसन बिछता है। अतएव आज यहाँ परम पिताके आविर्भावके सम्बन्धमें शङ्का करनेके लिए जगह नहीं है।"

इसके बाद उन्होंने नये वर्षके पहले दिनकी प्रायः पन्द्रह मिनटतक सुन्दर उपासना की। उनके निजके हृदयमें अकपट विश्वास और आन्तरिक भक्ति थी। इससे उन्होंने जो कुछ कहा सब सत्य और मधुर होकर सबके हृदयमें लगा, सबकी आँखोंकी कोरोंपर सजलताका आभास दिख गया। सिर्फ़ रासबिहारी ही उनमें ऐसे थे जिनकी मुँदी आँखोंसे आँसू बहकर झरझर गिरने लगे। उपासना समाप्त हो जानेपर भी वे एक ही भावसे बैठे रहे। वे अचेत थे अथवा सचेत, बहुत देरतक यह भी नहीं समझा जा सका।

और एक व्यक्ति था जिसके मनकी बातका पता नहीं लग सका। वह थी विजया। सारे समय वह झुकी आँखोंसे पत्थरकी मूर्तिके समान स्थिर बैठी रही। उसके बाद जब उसने मुँह उठाया, तब उसकी आकृति पत्थरके समान ही अस्वाभाविक रूपसे सफ़ेद दिखाई पड़ी।

दयालकी भक्ति-गद्गद ध्वनिकी प्रतिध्वनि जिस समय अनेक व्यक्तियोंके हृदयमें झङ्कृत हो रही थी, उसी समय रासबिहारीने आँखें खोलीं और खड़े होकर प्रायः रुलाईभरे स्वरमें कहा, "मुझमें साधनाका वह बल नहीं है, किन्तु आज मैंने जान लिया है कि दयालका महावाक्य कितना बड़ा सत्य है, सम्मिलित हृदयोंके सन्धि-स्थलमें उसी एकमात्र और अद्वितीय निराकार परब्रह्मका आविर्भाव होता है, इसे आज अन्तरमें प्रत्यक्ष देखकर मेरा जीवन चिरदिनके लिए धन्य हो गया।" यह कहकर वे आगे बढ़ गये और दयालको हृदयसे चिपकाकर कम्पित कण्ठसे कह उठे, "दयाल! भाई! यह केवल तुम्हारे ही पुण्य-प्रतापसे, तुम्हारे ही आशीर्वादसे—"

दयालकी आँखें डबडबा आईं, लेकिन कोई बात न कह सकनेके कारण वे चुपचाप ही खड़े रहे।

बगलके कमरेमें ही जल-पानका प्रचुर आयोजन हुआ था। विलासने जब उसकी ओर इशारा किया, तब रासबिहारीने उसे रोककर अभ्यागतोंसे कहा, "आज आप लोगोंसे एक विषयमें और भी आशीर्वादकी भीख माँगता हूँ। बनमाली जीवित होते तो आज अपनी कन्याके विवाहकी बात वे खुद ही आप लोगोंसे कहते, मुझे न कहना पड़ता, लेकिन अब वह भार मेरे ही ऊपर आ पड़ा है। अब मैं ही वर-कन्याका पिता हूँ। मैंने इस महीनेके आखिरी हफ्तेमें पूर्णिमा तिथिको विवाह स्थिर किया है,—आप लोग सर्वान्तःकरणसे आशीर्वाद दीजिए, जिससे यह शुभ कर्म निर्विघ्न पूरा हो," यह कहकर उन्होंने एक जोड़ी सोनेके कड़े जेबसे निकाल कर दयालके हाथमें दे दिये।

दयाल उन दोनोंको लेकर विजयाकी ओर बढ़े और हाथ बढ़ाकर बोले, "मैं इस शुभकर्मकी सूचनामें मन-वचन-कायसे तुम्हारी कल्याण-कामना करता हूँ बेटी, देखूँ भला तुम्हारे दोनों हाथ!"

लेकिन, उस आनतमुखी और मूर्तिके समान बैठी हुई रमणीने लेशमात्र हरकत नहीं की। दयालने फिर अपनी प्रार्थना दुहराई, तथापि वह उसी प्रकार स्थिर बैठी रही। नलिनी समीप ही थी। वह मामाका अवस्था-सङ्कट अनुभव

करके हँसी और उसने विजयाके दोनों हाथ पकड़ लिये। तब दयालने बिना जाने ही अत्याचारकी एक जोड़ी हथकड़ियोंको आशीर्वादका स्वर्ण-वलय मानकर उस मूर्छितप्राय निरुपाय नारीके अशक्त अवश हाथोंमें पहना दिया।

लेकिन, किसीने कुछ नहीं जाना। बल्कि, इसे मधुर लज्जा कल्पना करके स्वाभाविक और सङ्गत मानकर वे लोग प्रफुल्ल हो उठे और क्षण-भरमें शुभकामनाओंकी अस्पष्ट ध्वनिसे वह सारा कमरा मुखरित हो उठा।

खाने पीनेका काम पूरा हो गया। देर हो रही थी, इसलिए सब लोग एक एक करके विदा होने लगे। विजयाने इस समय आत्म-संवरण करके किस प्रकार अतिथियोंके सम्मान और मर्यादाकी रक्षा की, वह अन्तर्यामीके अतिरिक्त और जिस व्यक्तिसे छिपी नहीं रही वे थे रासबिहारी। लेकिन, उन्होंने इसका किसीको आभास तक न होने दिया। जल-पान समाप्त करके, एक लौंग मुँहमें रखकर वे मुसकिराते हुए बोले, " मैं चला। बूढ़ा आदमी ठहरा, धूप बढ़नेपर फिर चल न सकूँगा।" और एक लम्बा आशीर्वाद देकर छाता सिरपर लगाये धीरे धीरे बाहर निकल गये।

सब चले गये, परन्तु विजया और नलिनी उस समय भी बरामदेके एक किनारे खड़ी खड़ी बातचीत कर रही थीं। विजयाने कहा, " आपसे आलाप करके मैं कितनी सुखी हुई, सो बता नहीं सकती। यहाँ आनेके दिनसे मैं एकदम अकेली पड़ गई हूँ। ऐसा कोई नहीं है जिससे दो बातें कर सकूँ। आपकी जब इच्छा हो, जब आप समय पाइए, आ जाया कीजिए।"

नलिनीने खुश होकर सम्मति जता दी। विजयाने कहा, " मैं खुद भी शायद उस पहर आपकी मामीको देखने आऊँगी।" लेकिन फिर धूपकी तरफ देखकर थोड़ा-सा व्यस्त होकर कहा, "दयालबाबू निश्चय ही कचहरीमें आ गये हैं, क्या उन्हें बुला भेजूँ ?" और तब बेयराकी खोजमें पैर बढ़ानेका उद्योग करते ही नलिनी बाधा डालकर बोली, "वे तो इस समय घर जायेंगे नहीं, इकट्ठे शामको लौटेंगे।"

विजया लज्जित होकर बोली, " यह बात मुझसे पहले क्यों नहीं कही ? मैं दरबानको बुला देती हूँ, वह आपको—"

नलिनीने कहा, " नहीं, दरबानकी जरूरत नहीं है। मैं नरेन्द्र बाबूके लिए प्रतीक्षा कर रही हूँ। वे अपने मामासे मिलने गये हैं, अभी आ जायेंगे।"

विजयाने अत्यन्त आश्चर्यमें पड़कर पूछा, " आपसे उनका परिचय है क्या ? कहाँ, मैं तो यह बात नहीं जानती !"

नलिनीने कहा, "परिचय कुछ भी नहीं था। सिर्फ परसों ही मामाकी चिट्ठी पाकर मैंने स्टेशनपर आकर देखा, वे खड़े हैं। उनके साथ ही यहाँ आई हूँ।"

विजया बोली, "ओः, यह बात है!"

नलिनीने कहा, "हाँ, लेकिन कैसे आश्चर्यप्रद आदमी हैं, आपने देखा! दो दिनोंमें ही मानो चिरपरिचित आत्मीय बन गये हैं। तय हुआ है कि इस पहर हमारे घर ही स्नान-भोजन करके कलकत्ता जायँगे। मेरी मामी तो उन्हें ठीक लड़केके समान प्रेम करती हैं।"

विजयाने गरदन हिला कर कहा, "हाँ, आश्चर्यप्रद आदमी हैं।"

नलिनी कहने लगी, "उनका किसीसे कभी मनमुटाव हो सकता है, यह मैं आँखोंसे न देख लेती तो विश्वास ही न कर सकती। मैं बड़ी प्रसन्न हुई हूँ कि आज विलास बाबूसे उनका मेल हो गया। लेकिन उनके पिता भी कैसे आश्चर्यप्रद आदमी हैं! मेरी समझमें तो हमारे समाजमें सबको उनके ही समान होनेका यत्न करना चाहिए। रासविहारी बाबूका आदर्श जिस दिन ब्राह्मसमाजके घर घरमें प्रतिष्ठित होगा, उसी दिन समझूँगी, हमारा ब्राह्मधर्म सफल हुआ, सार्थक हुआ! आप क्या कहती हैं? ठीक नहीं है?"

नजदीक ही दिखाई पड़ा कि, नरेन्द्र टोपी हाथमें लिये तेजीसे उसी तरफ आ रहा है। विजयाने नलिनीके प्रश्नका उत्तर न देकर उसी तरफ उसकी दृष्टि आकर्षित करके कहा, "वह देखिए, वे आ रहे हैं।"

नरेन्द्र निकट आकर विजयाको लक्ष करके बोला, "यह लीजिए, इसी बीच दोनोंमें दिव्य प्रेम भी हो गया! सचमुच, आज वर्षके पहले दिन हमारा परम सुप्रभात हुआ! सबेरा बहुत सुन्दर कटा। इससे आशा होती है, यह वर्ष सम्भवतः अच्छा ही कटेगा। लेकिन, आप ऐसी मलिन कैसी दिखाई पड़ती हैं, बताइए तो?"

विजयाने विरक्तिके स्वरसे कहा, "आप एक दिनके भीतर यह प्रश्न कितनी बार कीजिएगा, बताइए तो?"

नरेन्द्र हँस पड़ा, "क्या और भी एक बार पूछ चुका हूँ? पर यदि पूछ ही लिया तो क्या हुआ? अच्छा, आप इस प्रकार चटसे नाराज़ क्यों हो जाती हैं बोलिए तो? यह तो आपमें भारी दोष है।" कहकर वह फिर हँसने लगा।

विजयाने किसी प्रकार हँसी दबाकर बनावटी गम्भीरताके साथ जवाब दिया, "इस विषयमें क्या सब ही आपके समान निर्दोष हो सकते हैं? फिर भी देखिए,

कालीपदके जैसे और भी बहुतसे निन्दक हैं जो आपके समान साधु व्यक्तिको भी जल्दी गुस्सा होनेवाला कहकर अपवाद लगाते हैं। ”

कालीपदके नामसे नरेन्द्र उच्च कण्ठसे हँस उठा। हँसी रुकनेपर उसने कहा, “ आप बिकट रूठनेवाली हैं, किसी प्रकार किसीका भी दोष क्षमा नहीं कर सकतीं। लेकिन यह तो सुनूँ कि ‘ और भी बहुतसे ’ कौन? कालीपद और आप खुद, इतने ही तो? ”

विजया गरदन हिलाकर बोली “ और स्टेशनपर जिन लोगोंने देखा है, वे भी। ”

नरेन्द्रने कहा, “ और? ”

विजयाने कहा, “ और जिन जिन लोगोंने सुना है वे भी। ”

नरेन्द्रने कहा, “ तो यही क्यों न कहिए कि मेरे सम्बन्धमें सारी दुनियाके लोगोंका यही मत है। ”

विजयाने पहलेकी गम्भीरता स्थिर रखकर ही जवाब दिया, “ हाँ। हम सबका यही मत है। ”

नरेन्द्रने कहा, “ तो फिर धन्यवाद। अब आपके निजके सम्बन्धमें लोगोंका क्या मत है, सो बताइए? ” और वह हँसने लगा।

उसके इशारेसे विजयाका मुँह पल-भरके लिए लाल हो उठा। लेकिन उसने दूसरे ही क्षण हँसकर कहा, “ अपनी तारीफ आप नहीं करना चाहिए, पाप होता है। इसलिए वह आप ही बताइए। लेकिन अभी नहीं, नहाने-खानेके बाद। ” फिर कुछ ठहरकर कहा, “ लेकिन वक्त बहुत हो गया है,—इस काममें यहीं निबट लेना अच्छा न होता? ” कहकर उसने नलिनीके मुँहकी तरफ़ देखा।

नलिनीने कहा, “ लेकिन मामी जो रास्ता देखती रहेंगी! ”

विजयाने कहा, “मैं इसी समय आदमी भेजकर उन्हें ख़बर पहुँचाये देती हूँ।”

नलिनी सकुचा उठी। उसने कहा, “ मुझे जाना ही होगा। मामी रोगी हैं, मकानमें सारी दुपहरी किसीके उनके पास रहे बिना काम नहीं चलेगा। ”

बात सच थी, इसीलिए वह और जिद न कर सकी, लेकिन नलिनी उसके मुँहकी तरफ देखकर न जाने क्या सोचकर तत्काल ही कह उठी, “ लेकिन नरेन्द्र बाबू, न हो तो आप यहीं स्नान-भोजन कर लीजिए, मैं जाकर मामीसे कह दूँगी। सिर्फ जाते समय उनसे मिलते जाइएगा। ”

“ क्या मुझे आपने ऐसा अकृतज्ञ नराधम समझ लिया है कि ऐसी धूपमें

आपको अकेला छोड़ कर चला जाऊँगा ? " कहकर नरेन्द्रने हँसते हुए विजयाके मुँहकी तरफ़ आँखें उठाकर कहा, " आपसे तो एक दिन अच्छा भोजन अदा करना ही है, सो उस दिन बहुत सबेरे आकर इस भोजनको चुकानेका यत्न करूँगा। अच्छा, नमस्कार। " फिर नलिनीसे कहा, " और देरी मत कीजिए, चलिए।" यह कहकर उसने हाथकी टोपी सिरपर लगा ली।

नलिनी उतरकर पास आ गई, लेकिन और एक व्यक्ति जो काठके समान खड़ा रहा और उसकी दोनों आँखें जो शानपर चढ़ी हुई छुरीके समान चमकने लगीं, उनपर दोनोंमेंसे किसीका भी ध्यान न गया। यदि जाता तो, जान पड़ता है, नरेन्द्र दो-एक पैर बढ़ा कर और सहसा लौटकर हँसते हुए यह कहनेका साहस न करता कि " अच्छा, एक काम न किया जाय ? जो वस्तु आरम्भसे ही इतने दुःखोंकी जड़ है, जिसके लिए मैं सारे देशमें बदनाम हुआ, वह मुझे ही क्यों न आजके आनन्दके दिन उपहार दे दीजिए ? वे दो सौ रुपए कल-परसों किसी दिन भेज दूँगा। " यह कहकर उसने और भी एक बार हँसनेका यत्न अवश्य किया, लेकिन उत्साहके अभावमें हँस न सका। बल्कि दूसरे पक्षसे प्रत्युत्तरमें जो कड़ा जवाब आया वह एकदम आशातीत था। विजयाने कहा, "दाम लेकर देनेको मैं उपहार देना नहीं कहती, बिक्री करना कहती हूँ। उस प्रकारका उपहार देकर आप आत्म-प्रसाद प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन हम लोगोंको दूसरे ही प्रकारकी शिक्षा मिली है। इसीलिए मैं आज इस आनन्दके दिन उसे बेचनेकी इच्छा नहीं करती।"

इस आघातकी कठोरतासे नरेन्द्र स्तम्भित हो गया। यों ही तो वह विजयाके मिजाजका प्रायः कोई कूल किनारा नहीं पाता था,—तिसपर आज उसके हृदयके भीतर भूसेकी-सी जो आग जल रही थी, उसका दाह जब अकस्मात् अकारण बाहर निकल पड़ा, तब नरेन्द्र उसे पहचान ही न सका। वह क्षण-भर उसके कठोर मुँहकी तरफ़ निःशब्द देखते रह कर अत्यन्त व्यथाके साथ बोला, " अपनी नितान्त दीन दशा मैं भूला भी नहीं और उसे छिपानेकी भी चेष्टा मैंने नहीं की जो आप मुझे याद दिला रही हैं। "

फिर नलिनीको दिखाकर कहा, " मैंने इनको भी अपना सारा इतिहास बताया है। पिताजी अत्यन्त दैन्य-दुःख पाकर मरे हैं। उनकी मृत्युके बाद मकान घर-द्वार जो कुछ भी यहाँ था, सभी कर्ज चुकता करनेमें बिक गया है, कुछ भी किसीसे मैंने नहीं छिपाया। मैंने उपहार देनेकी बात नहीं कही। अच्छा, कहिए तो, यह सब क्या मैंने आपको बताया नहीं ? "

नलिनीने सलज्ज स्वीकृति देकर कहा, "हाँ, बताया है।" विजयाका मुँह वेदनासे, लज्जासे, क्षोभसे विवर्ण हो उठा—वह केवल विह्वल आच्छन्नकी तरह एक दृष्टिसे दोनोंकी तरफ चुपचाप ताकती रही। उसकी उस सीमाहीन वेदनाको विमथित करके नरेन्द्रने म्लानमुखसे फिर कहा, "मेरी बातसे आप प्रायः अत्यन्त अस्थिर हो उठती हैं। शायद सोचती हैं, अपनी अवस्थाको लाँघकर मैं अपनेको आप लोगोंके समकक्ष प्रकट करना चाहता हूँ। यह हो सकता है कि सब बातोंमें अपना वजन ठीक नहीं रख सकता होऊँ, लेकिन सो अपने अन्यमनस्क स्वभावके दोषसे—लेकिन जाने दीजिए, यदि आपका असम्मान कर बैठा होऊँ, तो मुझे क्षमा कीजिएगा।" कहकर मुँह फिराकर वह चल पड़ा।

## २२

सारे रास्तेमें दोनों व्यक्तियोंमे सिर्फ ये ही बातें हुईं। नलिनीने पूछा, "क्या आपने उपहार देनेकी बात कही थी?"

नरेन्द्रने क्लान्त कण्ठसे कहा, "और किसी दिन यह बात आपको बताऊँगा,—आज नहीं।"

उसी बाँसके पुलके पास आकर नरेन्द्रने सहसा खड़े होकर कहा, "आज मुझे क्षमा करना होगा,—मैं वापस चला।" लेकिन नलिनीको प्रायः अभिभूतसा देखकर वह फिर बोला, "मैं जानता हूँ कि यह भारी अन्याय है, लेकिन तो भी आपको क्षमा करना होगा, अब मैं किसी प्रकार चल नहीं सकता। अपनी मामीसे कह दीजिएगा, मैं और किसी दिन आकर"—

उसके सङ्कल्पके इस आकस्मिक परिवर्तनसे नलिनी जितनी विस्मित हुई थी इस समय उसके कण्ठस्वर और मुँहकी तरफ़ देखकर और भी अधिक विस्मित हो गई। जान पड़ता है, इसीलिए उसने इस विषयमें और अधिक अनुरोध न करके सिर्फ़ यही कहा, "आपका भोजन जो नहीं हुआ! लेकिन, फिर कब आइएगा?"

"परसों आनेकी चेष्टा करूँगा," कहकर नरेन्द्र जिस रास्ते आया था, उसी रास्ते रेलवे स्टेशनकी तरफ तेजीसे चल पड़ा।

मैदान पार होनेमें जब थोड़ी ही देर थी, तब उसने देखा कि कोई लड़का हाथ ऊँचा किये उसीकी तरफ प्राणपणसे दौड़ा आ रहा है। वह उसीके लिए दौड़ा आरहा है और हाथ उठाकर उसको ही ठहरनेका इशारा कर रहा है, यह अनुमान करके नरेन्द्र रुककर खड़ा हो गया। क्षण-भर बाद ही परेशने उपस्थित

होकर हाँफते हाँफते कहा, " माजीने बुला भेजा है तुमको ! चलो । "

" मुझे ? "

" हाँ, चलो न । "

नरेन्द्रने कुछ क्षण निश्चल खड़े रहकर सन्दिग्ध कण्ठसे कहा, " तू समझ नहीं सका रे, मुझे नहीं बुलाया । "

परेशने प्रबल वेगसे सिर हिलाकर कहा, " तुम्हें ही बुलाया है ! तुम्हारे सिरपर साहबका टोप जो लगा है ! चलो । "

नरेन्द्रने और कुछ क्षण मौन रहकर प्रश्न किया, " तेरी माजीने क्या कहा है तुझसे ? "

परेशने कहा, " माजी उस सबसे ऊँची छतसे दौड़ती हुई नीचे आईं और बोलीं, परेश, दौड़ जा—सीधे जाकर बाबूको पकड़ ला । सिरपर साहबका टोप लगाये हैं, जा दौड़ जा—तुझे एक बहुत अच्छी चकरी खरीद दूँगी ।—जल्दी चलो । "

इतनी देर बाद उसकी व्यग्रताका कारण ज्ञात हुआ । चकरीके लोभमें ही वह इस कड़ी धूपमें इजिनके वेगसे दौड़ा आया है । इसलिए किसी प्रकार भी छोड़कर नहीं जायेगा । एक बार तो उसके मनमें आया, कि लड़केको खुद ही एक चकरीकी कीमत देकर इसी स्थानसे विदा कर दे । लेकिन आज ही इस प्रकार बुला भेजनेका क्या कारण है, इस कुतूहलको भी वह किसी प्रकार निवारण न कर सका । लेकिन जाना उचित है या नहीं, यह स्थिर करनेमें उसे और भी कुछ क्षण लग गये, यद्यपि अन्त तक स्थिर कुछ नहीं हुआ, तो भी उसके अनिश्चित पग उसी तरफ़ धीरे धीरे बढ़ने लगे । रास्ते-भर वह बुलानेका कारण मन ही मन खोजकर मरता रहा, लेकिन यह उसकी समझमें न आया, कि बुलाना ही सबकी अपेक्षा बड़ा कारण है । बाहरके कमरेमें पैर रखते ही विजया आकर सामने खड़ी हो गई । उसने अपनी दोनों भीगीं उत्सुक आँखें उसके मुँहपर गड़ाकर तीक्ष्ण कण्ठसे कहा, " आप खूब हैं जो बिना खाये-पीये इस वक्त चले जा रहे हैं । मैं झूठमूठ नाराज हो जाती हूँ, मैं ही बहुत बुरी हूँ,—और आप ? "

नरेन्द्र गहरे विस्मयसे बोला, " इसका मतलब ? किसने कहा, आप बुरी हैं, आपसे किसने कहीं ये सब बातें ? "

विजयाके ओंठ काँपने लगे, उसने कहा, " आपने । नलिनीके सामने क्यों मेरा इस प्रकार अपमान किया ? मेरा ही अपमान किया और मुझे ही दण्ड देनेके

लिए बिना खाये चले जा रहे हैं ? क्या किया है आपका मैंने ?" बोलते बोलते उसकी दोनों ऑखें आँसुओंसे भर आईं। जान पड़ता है, उन्हें ही सँभालनेके लिए वह उसी क्षण दूसरी तरफ देखती हुई पीठ देकर खड़ी हो गई। नरेन्द्र हतबुद्धिके समान वाक्शून्य होकर ताकता रहा। इस अभियोगका क्या जवाब दूँ, वह जिस प्रकार यह खोजकर नहीं पा सका, उसी प्रकार इसका कारण आखिर क्या है, सो भी नहीं सोच सका।

बेयरा कह गया कि स्नानके लिए जल तैयार है। विजयाने लौटकर शान्त-भावसे केवल यही कहा कि "अब और देरी न कीजिए, जाइए।"

स्नानसे निबटकर नरेन्द्र भोजन करने बैठा। विजया एक पङ्खा हाथमें लेकर जब उसके निकट आकर बैठी, तब लज्जाकी ऑधी बहुत ही चुपके चुपके उसके सर्वाङ्गको झकझोर कर बह गई। हवा करनेको उद्यत देखकर नरेन्द्रने सकुचा कर कहा, "मुझे हवा करनेकी आवश्यकता नहीं है, आप पङ्खा रख दीजिए।"

विजयाने मुस्कराकर कहा, "आपको आवश्यकता न हो, फिर भी मुझे आवश्यकता है। बापू कहते थे, 'नारी जातिको कभी खाली हाथ न बैठना चाहिए।'"

नरेन्द्रने पूछा, "आपका भोजन भी तो नहीं हुआ है ?"

विजयाने कहा, "नहीं। पुरुषोंका भोजन हुए बिना हम लोगोंको खाना भी नहीं चाहिए।"

नरेन्द्र खुश होकर बोला, "अच्छा! तब तो ब्राह्म होनेपर भी आप लोगोंका आचार-व्यवहार हम लोगोंके ही जैसा है।"

विजयाने यह नहीं कहा कि अनेक ब्राह्म घरोंमें ऐसा नहीं है, बल्कि इससे ठीक उलटा है। खाली उसके पिता ही ये सब हिन्दू आचार अपने मकानमें चालू रख गये हैं। बल्कि उसने कहा, "इसमें चकित होनेकी तो कोई बात नहीं है। हम लोग न तो विलायतसे आये हैं और न काबुलसे ही हमें अपने आचार-व्यवहारकी आमदनी करनी पड़ी है। ऐसा न होनेपर ही बल्कि आश्चर्यकी बात होती।"

नौकरने दरवाजेके पास आकर कहा, "मा, गुमाश्ताजी हिसाबकी बही लिये नीचे खड़े हैं, इस समय क्या उनसे जानेको कह दूँ ?"

विजयाने गरदन हिलाकर कहा, "हाँ, मुझे समय नहीं मिलेगा, उनसे कल आनेको कह दे।"

नौकरके चले जानेपर नरेन्द्रने विजयाके मुँहकी तरफ आँखें उठाकर कहा, " यह बात मुझे सबसे अधिक आनन्दित करती है।"

" कौन-सी बात ?"

" नौकरोंके मुँहका यह सम्बोधन।" फिर हँसकर कहा, " आप ब्राह्म महिला भी हैं, आलोक-प्राप्त भी हैं, और विशेष रूपसे धनाढय भी हैं। आजकल मुझे ऐसे ही आलोक-प्राप्त घरोंमें चिकित्साके लिए जाना पड़ता है। उनके नौकर-चाकर नारियोंसे कहते हैं 'मेम साहब'। वे जानती हैं कि वास्तविक मेम साहबायें उन्हें किन आँखोंसे देखती हैं, इसीलिए शायद वेतनभोगी नौकरोंसे 'मेमसाहब' कहला कर आत्म-मर्यादा बचाये रखती हैं।" यह कहकर उसने अपने प्रकाण्ड परिहाससे और अट्टहाससे सारा कमरा भर दिया। विजया खुद भी हँस पड़ी। नरेन्द्रकी हँसी रुकनेपर उसने दुबारा कहा, " मानो मकानके दासियों-नौकरोंके मुँहके मातृसम्बोधनकी बनिस्बत 'मेमसाहब' कहलाना ज्यादा इज्जतकी बात है! पहले दिन मैं समझ ही नहीं सका कि बेयरा 'मेमसाहब' कहता किसे है ? वह क्या बोला था, जानती हैं ? बोला, 'मैंने बहुतसे साहबोंके घरोंमें नौकरी की है, असली मेमसाहब क्या हैं, सो मैं खूब जानता हूँ। इस घरका एक नया हिन्दुस्तानी दरबान मालकिनको 'माईजी' कह बैठा, इससे मेम साहबने उसपर एक रुपया जुर्माना ठोक दिया! चाकरी बनी रही, यही उसके भाग्य हैं! ऐसी ही वे क्रुद्ध हुई थीं।' अच्छा, आपने भी जान पड़ता है, ऐसी बहुत-सी देखी होंगी ? न ?"

विजयाने हँसकर गरदन हिलाई।

नरेन्द्रने कहा, " अब मुझे एक दिन देखना है कि, इन सब मेमसाहबोंके लड़के-लड़कियाँ माको मा कहती हैं, या मेमसाहब!" कहकर अपने मजाकके आनन्दसे उसने और एक बार कमरा फाड़ देनेकी तैयारी की।

विजयाने मुसकिराते हुए कहा, 'खा-पीकर सारे दिन पराई चर्चा करके आमोद कीजिएगा, इसमें मुझे आपत्ति नहीं है, लेकिन क्या आज मुझे खाने नहीं दीजिएगा ?"

नरेन्द्रने लज्जित भावसे जल्दी जल्दी दो-चार कौर लीले ही थे कि फिर सब भूल गया। उसने कहा, " मैं भी तो चार-पाँच वर्ष विलायतमें रहा, लेकिन ये देशी साहब लोग—"

विजयाने तर्जनी उठाकर कृत्रिम शासन करनेकी भङ्गीसे कहा, " फिर वही

पराई निन्दा ! ”

“ अच्छा, अब नहीं—” कहकर उसने फिर खानेमें मन लगाकर कहा, “ लेकिन अब और नहीं खा सकता—”

विजयाने व्यस्त होकर कहा, “ वाह ! कुछ भी तो नहीं खाया। नहीं, अभी नहीं उठ पाइएगा। अच्छा, न हो, पराई निन्दा करते करते ही अनमने होकर खाइए, मैं कुछ नहीं बोलूँगी। ”

नरेन्द्र हँसना चाहता था कि अकस्मात् अत्यन्त गम्भीर हो गया। उसने कहा, “ आप इतने पर भी कहती हैं, मैंने खाया नहीं है ? लेकिन मेरा कलकत्तेका रोजका खाना यदि देखिए, तो अवाक् हो जाइएगा। देख नहीं रही हैं कि इन कुछ महीनोंके भीतर ही कितना दुबला हो गया हूँ। हमारे बासेका बाम्हन जैसा पाजी है, नौकर भी वैसा ही बदमाश आ जुटा है। बड़े सबेरे राँध-रूँधकर कहाँ चल देता है, कुछ ठिकाना ही नहीं—मुझे किसी दिन लौटना पड़ता है दो बजे, और किसी किसी दिन तो चार बज जाते हैं। वही ठण्डा सूखा भात—दूध किसी दिन या तो बिल्ली पी जाती है, या किसी दिन खिड़कीमेंसे कौअे घुसकर सब कुछ फैला जाते हैं जिसे देखते ही घृणा होती है। महीनेमें आधे दिन तो बिलकुल खा ही नहीं पाता। ”

गुस्सेसे विजयाका मुँह लाल हो उठा, उसने कहा, “ ऐसे नौकर-चाकरोंको दूर नहीं कर दे सकते ? अपने बासेमें इतने रुपए वेतन पाकर भी यदि इतना कष्ट है, तो चाकरी करनेसे ही आखिर क्या लाभ है ? ”

नरेन्द्रने कहा, “ एक हिसाबसे आपकी बात सच है। एक दिन सन्दूकसे किसीने छः सौ रुपए चोरी करके ले लिये, एक दिन खुद ही कहीं एक सौ रुपएके दो नोट खो बैठा। अन्यमनस्क व्यक्तिके लिए तो पद पदपर विपत्तियाँ हैं। ” फिर थोड़ा-सा ठहरकर उसने कहा, “ तो भी मुझे दुःख-कष्ट बहुत दिनोंसे सहन हो गये हैं न, इसीलिए मनमें ऐसा कुछ जान नहीं पड़ता। हाँ, बहुत भूख लगनेपर खानेका कष्ट अवश्य ही किसी किसी दिन असह्य हो जाता है। ”

विजया मुँह नीचा किये चुप बैठी रही। नरेन्द्र कहने लगा “ सचमुच, चाकरी मुझे अच्छी नहीं लगती, मैं कर भी नहीं पाता। जरूरतें मेरी अत्यन्त साधारण हैं,—आपके समान कोई बड़ा आदमी दोनों वक्त चार कौर खानेको दे देता, और अपने ही काममें मस्त रह पाता, तो मैं और कुछ भी न चाहता,—लेकिन ऐसे बड़े आदमी क्या अब—” कहकर और एक बार उसने

ऊँची हँसीकी तरङ्ग लहरा दी। विजया पहलेके ही समान नीचा मुँह किये चुपचाप बैठी रही। नरेन्द्रने कहा, "लेकिन आपके पिताजी जीवित रहते तो शायद इस समय मेरा बहुत उपकार हो सकता। वे निश्चय ही मुझे इस उञ्छ-वृत्तिसे रिहाई दे देते।"

विजयाने उत्सुक दृष्टिसे देखकर पूछा, "किस प्रकार जाना? उन्हें तो आप पहचानते नहीं थे।"

नरेन्द्रने कहा, "नहीं, मैंने उन्हें कभी नहीं देखा, उन्होंने भी शायद मुझे कभी नहीं देखा। लेकिन तो भी वे मुझे बहुत चाहते थे। किसने मुझे रुपए देकर विलायत भेजा था, जानती हैं? उन्होंने ही। अच्छा, वे हम लोगोंके ऋणके सम्बन्धमें आपसे क्या कभी कुछ कह नहीं गये?"

विजयाने कहा, "कह जाना सम्भव है। लेकिन आप किस बातके लिए यह इशारा कर रहे हैं, उसे बिना समझे तो जवाब दे नहीं सकती।"

नरेन्द्रने क्षण-भर मन ही मन कुछ सोचकर कहा, "जाने दीजिए। इस समय यह चर्चा एकदम निष्प्रयोजन है।"

विजयाने व्यग्र होकर कहा, "नहीं, बोलिए। मैं सुनना चाहती हूँ।"

नरेन्द्र और थोड़ा सोचकर बोला, "जो बात चुक-चुकाकर समाप्त हो गई है, उसे सुनकर अब क्या होगा, बताइए?"

विजयाने जिद करके कहा, "नहीं, यह नहीं होगा। मैं सुनना चाहती हूँ, आप बताइए।"

उसका अतिशय आग्रह देखकर नरेन्द्र हँसा, उसने कहा, "बताना केवल निरर्थक ही नहीं है बल्कि बतानेमें मुझे खुद भी लज्जा होती है। शायद आप मनमें सोचें कि मैं कौशलसे आपके सेण्टिमेण्टपर चोट देकर—"

विजया अधीर होकर बीचमें ही रोककर बोली, "मैं और अधिक खुशामद नहीं कर सकती—आपके पैरों पड़ती हूँ, बोलिए।"

"खाने पीनेके बाद?"

"नहीं, अभी—"

"अच्छा कहता हूँ, कहता हूँ। लेकिन पहले एक बात पूछता हूँ। क्या हमारे मकानके विषयमें आपसे कभी कोई बात उन्होंने नहीं कही?"

विजया अधिकतर असहिष्णु हो उठी, लेकिन उसने कोई उत्तर नहीं दिया। नरेन्द्रने मुसकिराते हुए कहा, "अच्छा, नाराज़ मत होइए, मैं कहता हूँ। जब

मैं विलायत गया था, तब ही मैंने पिताजीसे सुना था कि आपके पिताजी ही मुझे भेज रहे हैं। आज तीन दिन हुए, दयाल बाबूने मुझे चिट्ठियोंका एक बंडल दिया है।"

"जिस कमरेमें बहुत-सा टूटा-फूटा असबाब पड़ा है, उसीके एक टूटे हुए दराज़में चिट्ठियाँ थीं। पिताजीकी वस्तु होनेके कारण दयाल बाबूने उन्हें मेरे ही हाथमें दे दिया। पढ़कर मैंने देखा, उनमें दो चिट्ठियाँ आपके पिताजीके हाथ की लिखी हुई हैं। आपने शायद सुना है कि अन्तिम वयसमें पिताजीने ऋणके मारे जुआ खेलना शुरू कर दिया था। मालूम होता है, वह इशारा ही एक चिट्ठीके आदिमें था और उसके बाद नीचेकी तरफ़ एक स्थानपर उन्होंने उपदेशके छलसे सान्त्वना देकर पिताजीको लिखा था, 'मकानके लिए चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं है। नरेन्द्र मेरा भी तो लड़का है, मकान उसे ही मैंने दहेजमें दिया।'"

विजयाने मुँह उठाकर कहा, "उसके बाद?"

नरेन्द्रने कहा, "उसके बाद और और भी बातें हैं। परन्तु यह पत्र बहुत दिनोंका लिखा हुआ है। बहुत सम्भव है, उनका यह अभिप्राय बादको बदल गया हो और इसीलिए कोई बात आपसे कह जाना उन्होंने आवश्यक नहीं समझा हो।"

पिताकी अन्तिम इच्छाएँ विजयाको अक्षर अक्षर स्मरण हो आईं और उसने एक लम्बी साँस ले ली। कुछ क्षण स्थिर रहकर वह बोली, "तो फिर मकानपर दावा कीजिएगा!" और हँस दी।

नरेन्द्र खुद भी हँसा। इस प्रस्तावको बढ़िया परिहास समझकर उसने कहा, "दावा निश्चय करूँगा, और आपकी ही गवाही दूँगा। आशा करता हूँ, आप सच सच ही बोलिएगा।"

विजयाने गरदन हिलाकर कहा, "निश्चय। लेकिन गवाही क्यों मानिएगा?"

नरेन्द्रने कहा, "नहीं तो प्रमाणित कैसे होगा? मकान सचमुच मेरा है, यह बात तो अदालतमें साबित करनी ही होगी।"

विजया गम्भीर होकर बोली, "दूसरी अदालतकी जरूरत नहीं है। बापूका आदेश ही मेरी अदालत है। वह मकान आपको मैं लौटाल दूँगी।"

उसकी मुखाकृति और कण्ठ-स्वर ठीक रहस्यके समान अवश्य न जान पड़ा, लेकिन इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है, सो भी मनमें स्थान न पा सका। विशेषतः विजयाके परिहासकी भङ्गी इतनी निगूढ़ थी कि मुँह देखकर ज़ोर देकर कुछ कह सकना अत्यन्त कठिन था। इसीलिए नरेन्द्र खुद भी छद्म गम्भीरताके

साथ बोला, "तो फिर उनकी चिट्ठी आँखसे देखे बिना ही, जान पड़ता है, मकान दे दीजिएगा ?"

विजयाने कहा, "नहीं, चिट्ठी मैं देखना चाहती हूँ। लेकिन यदि उसमें यही बात लिखी है, तो, उनका हुक्म मैं किसी प्रकार अमान्य नहीं करूँगी।"

नरेन्द्रने कहा, "इसका ही क्या सुबूत है कि आखिर उनका अभिप्राय अन्ततक यही था ?"

विजयाने उत्तर दिया, "नहीं था, इसका भी तो सुबूत नहीं है ?"

नरेन्द्रने कहा, "लेकिन, मैं यदि न लूँ ? दावा न करूँ ?"

विजयाने कहा, "यह आपकी इच्छा है। लेकिन वैसी हालतमें आपकी बुआके लड़के भी तो हैं। मेरा विश्वास है, अनुरोध करनेपर वे लोग दावा करनेमें असम्मत न होंगे।"

नरेन्द्रने हँसकर कहा, "यह विश्वास मेरा भी है, यहाँ तक कि शपथ खाकर भी कहनेको राजी हूँ।"

विजयाने इस हँसीमें योग नहीं दिया, वह चुप रही।

नरेन्द्रने फिर कहा, "अर्थात् मैं लूँ चाहे न लूँ, आप देंगी ही ?"

विजयाने कहा, "अर्थात् पिताजीकी दान दी हुई वस्तु मैं नहीं हड़पूँगी, यही मेरी प्रतिज्ञा है।"

उसके सङ्कल्पकी दृढता देखकर नरेन्द्र मन ही मन विस्मित और मुग्ध हो गया। लेकिन कुछ क्षण चुप रहकर मधुर कण्ठसे बोला, "वह मकान जब आपने सत्कर्ममें दान कर दिया है, तब मेरे न लेनेपर भी आपको हड़प लेनेका पाप नहीं होगा। इसके सिवा, वापस लेकर मैं करूँगा भी क्या, बताइए? मेरे कोई हैं नहीं जो उसमें रहेंगे और मुझे बाहर कहीं न कहीं काम करना ही होगा। उसकी अपेक्षा जो व्यवस्था हुई है, वही सबसे अधिक अच्छी है। और एक बात यह भी है कि विलास बाबूको किसी प्रकार राजी न कर सकिएगा।"

इस अन्तिम बातसे विजया मन ही मन जल उठी और बोली, "मेरे पास इतना अधिक समय नहीं है कि उसे अपनी चीजके लिए दूसरेको राजी करनेकी चेष्टामें बरबाद करती फिरूँ। लेकिन आप और भी तो एक काम कर सकते हैं। घरकी जब आपको जरूरत नहीं है, तब मुझसे उसका उचित मूल्य ले लीजिए। तब आपको चाकरी भी नहीं करना पड़ेगी, और अपना काम भी स्वच्छन्दतासे कर सकिएगा। आप राजी हो जाइए नरेन्द्र बाबू," इस अत्यन्त अनुनयके स्वरने अकस्मात् नरेन्द्रके

"हाँ।"

## २३

निद्राविहीन रातकी पूरी थकान लिए हुए विजयाने जब सबेरे नीचेकी बैठकमें प्रवेश किया तब देखा कि कचहरीके बही-खाते टेबुलपर तह पर तह सजे रक्खे हैं और बूढ़ा गुमाश्ता पास ही खड़ा प्रतीक्षा कर रहा है। उसने विनयके साथ कहा, "मा, ये सब आज ही वापस मिल जाने चाहिए।"

उससे दो घण्टेके बाद आनेके लिए कहकर विजयाने ऊपरका खाता उठा लिया और वह खिड़कीसे लगे हुए कोचपर जाकर बैठ गई। उसमें मन लगानेकी शक्ति ही नहीं थी। उसकी उद्भ्रान्त दृष्टि बार बार हिसाबके आँकोंको छोड़कर खिड़कीके बाहर यहाँ-वहाँ भाग रही थी। सहसा उसने देखा कि वृद्ध रासबिहारी बगीचेके किनारे एक पेड़के नीचे खड़े हैं, परेशसे न जाने क्या पूछ रहे हैं, और उँगली उठाकर कभी नीचेका कमरा, कभी ऊपरकी छत दिखा रहे हैं। दोनोंमेंसे किसीकी भी कोई भी बात सुने बिना विजयाने पलक मारते ही वृद्धके क्रूर इशारेका मर्म हृदयङ्गम कर लिया।

कुछ ही देर बाद वे लड़केको छोड़कर कचहरीकी तरफ़ चले गये। परेश घरकी तरफ़ आ रहा था, विजयाने खिड़कीसे हाथ हिलाकर उसे बुला लिया और प्रश्न किया, "तुझसे क्या पूछ रहे थे रे ?"

परेशने कहा, "अच्छा माजी, गुमाश्तासे रुपया लेकर मैं पतङ्ग और डोर खरीदने चला गया था न ? डाक्टर बाबूके रोटी खानेके समय क्या मैं घरपर था माजी ?"

विजयाने कहा, "नहीं।"

परेशने कहा, "तब ? बड़े बाबू कहते हैं, क्या बात हुई थी बता साले, नहीं तो तुझे सिपाहीसे बँधवा कर जलबिच्छू लगवाऊँगा। मैं बोला, नये दरबानने तुमसे झूठमूठ चुगली की है। माजी बोलीं, परेश तू दौड़कर डाक्टर बाबूको बुला ला, तुझे अच्छी पतग-डोर खरीद दूँगी—इसीलिए न दौड़ गया था ? लेकिन तुम यह बड़े बाबूसे मत कहना माजी। तुमसे बतानेको उन्होंने मना कर दिया है।"

"नहीं बताऊँगी" कह कर विजयाने परेशको विदा कर दिया और लौट कर वह फिर खाता खोल कर बैठ गई; लेकिन इस बार उसकी दृष्टिके सामने

खातेकी लिखावट एकदम लिप-पुँछकर एकाकार हो गई और रातके जागनेके कारण उसकी लाल हुई आँखें असह्य क्रोधसे आगकी शिखाके समान जलने लगीं। थोड़ी देर बाद ही रासबिहारीने दरवाजेके बाहर छड़ीकी आवाज करके मृदुमन्द गतिसे प्रवेश किया और विजयाकी दृष्टि आकर्षित करनेके लिए धीरेसे थोड़ा-सा खाँस कर वे कुर्सी खींच कर बैठ गये।

विजयाने खातेसे मुँह उठाकर कहा, "आइए। आज इतने सबेरे कैसे ?"

रासबिहारीने उसी क्षण उस प्रश्नका उत्तर न देकर अत्यन्त उद्वेगके साथ पूछा, "तुम्हारी दोनों आँखें बहुत ही लाल दिखाई पड़ रही हैं बेटी! ठण्ड-वण्ड तो नहीं लग गई ?"

विजया गरदन हिलाकर बोली, "नहीं।"

रासबिहारी उसपर ध्यान न देकर चिन्ता व्यक्त करने लगे। बोले, "बिना बताये तो मानूँगा नहीं बेटी, या तो रातको अच्छी नींद नहीं आई, अथवा किसी प्रकारका कुछ—"

'नहीं, मुझे कुछ भी नहीं हुआ।"

"लेकिन इस प्रकार आँखें लाल होनेका कारण तो कुछ न कुछ—"

विजयाको अधिक प्रतिवाद न करके काममें मन लगाते देखकर रासबिहारी रुक गये। थोड़ा मौन रह कर उन्होंने कहा, "धूपके ही डरसे सबेरे सबेरे आना पड़ा बेटी। सारी दस्तावेजें देखना हैं—तुमने सुना नहीं चौधरी लोग घोषपाड़ाकी सीमाके सम्बन्धमें मामला दायर करनेवाले हैं।"

जमींदारीके सम्बन्धकी अत्यन्त आवश्यक दस्तावेजें बनमाली अपने ही पास रखते थे। एक तो उन सबका सदैव प्रयोजन नहीं होता, और फिर अन्यत्र खो जानेकी सम्भावना रहती है, इसलिए वे कभी उन्हें अपने पाससे अलग नहीं करते थे। कलकत्तेसे आते समय विजया उन सबको साथ ले आई थी और अपने सोनेके कमरेकी लोहेकी आलमारीमें उसने बन्द करके रख छोड़ा था। विजयाने मुँह उठाकर कहा," वे लोग मामला दायर करेंगे, यह किसने कहा ?"

रासबिहारीने विज्ञभावसे कुछ हँसकर कहा, "कहा किसीने नहीं बेटी, मैं हवासे खबर पा लेता हूँ। ऐसा न होता तो क्या इतनी बड़ी जमींदारी इतने दिनों चला पाता ?"

विजयाने पूछा, "वे कितनी जमीनका दावा करते हैं ?"

रासबिहारी मन ही मन हिसाब लगा कर बोले, "बहुत कम होनेपर भी

दो बीघेसे क्या कम होगी।"

विजयाने लापरवाहीसे कहा, "बस! तो फिर वे ही ले लें। ज़रा-सी जगहके लिए मामले-मुक़दमेकी जरूरत नहीं है।"

रासबिहारीने अत्यन्त अधिक विस्मयका भान करके क्षोभके साथ कहा, "तुम जैसी लड़कीके मुँहसे ऐसी बात सुननेकी आशा नहीं की थी बेटी। आज बिना बाधाके यदि दो बीघे छोड़ दें तो कल और दो सौ बीघे नहीं छोड़ देनी होगी, यह कौन कह सकता है?"

लेकिन आश्चर्य है, इतने बड़े तिरस्कारपर भी विजया विचलित नहीं हुई। उसने सहज भावसे ही प्रत्युत्तर दिया, "लेकिन, वास्तवमें तो दो सौ बीघे हमें छोड़नी पड़ नहीं रही है। मैं कहती हूँ, मामूली-सी बातपर मामले मुकदमेकी जरूरत नहीं है।"

रासबिहारी मर्माहत हुए। उन्होंने बार बार सिर हिलाकर कहा, "यह किसी प्रकार नहीं हो सकता बेटी, किसी प्रकार नहीं हो सकता। तुम्हारे बापू जब मुझपर सब निर्भर कर गये हैं और मैं जीवित हूँ, तब तक बिना विरोधके दो बीघे क्यों, दो अंगुल जगह छोड़ देना भी घोर अधर्म होगा। इसके अतिरिक्त और भी अनेक कारण हैं जिनके लिए पुरानी दस्तावेजें एक बार अच्छी तरह देख लेना आवश्यक है। जरा कष्ट करके उठो बेटी, सन्दूक ऊपरसे ला दो।"

विजयाने उठनेका कोई लक्षण प्रकाशित नहीं किया। बल्कि पूछा, "और भी कोई कारण है?"

रासबिहारी बोले, "हाँ।"

विजयाने कहा, "कौन सा कारण?"

रासबिहारीने मन ही मन अत्यन्त असन्तुष्ट होनेपर भी आत्म-संवरण करके जवाब दिया, "एक ही कारण तो है नहीं, जो मुँह जबानी उसकी कैफ़ियत तुम्हें दे दूँ, बेटी?"

इसी समय गुमाश्तेने बही-खातोंके लिए धीरे धीरे कमरेमें प्रवेश किया। विजयाने लज्जित भावसे तुरन्त कहा, "इस वक्त तो हो नहीं सका, उस पहर आकर ले जाइएगा।"

गुमाश्ता 'जो आज्ञा' कहकर लौट रहा था, कि विजयाने पुकार कर कहा, "एक काम है लेकिन। कचहरीका वह नया दरबान कितने दिनोंसे नौकरीपर है, जानते हैं?"

गुमाश्तेने कहा, " जान पड़ता है, तीनेक महीने हुए होंगे।"

विजयाने कहा," खैर, जितने भी हुए हों, उसकी अब जरूरत नहीं है। इस समय इस महीनेके प्रायः बीस दिन बाकी हैं, सो इन दिनोंका भी वेतन देकर उसे आज ही जवाब दे दीजिए।"

गुमाश्ता विस्मयापन्न होकर देखने लगा। उसने चाहा कि अपराधकी बात पूछे, लेकिन साहस नहीं हुआ।

विजयाने यह समझकर ही कहा, "नहीं, अपराधके कारण नहीं, वह व्यक्ति मुझे अच्छा नहीं लगता, इसीसे छुड़ा रही हूँ। लेकिन वेतन पूरे महीनेका दीजिए।"

रासबिहारीका मुँह पल-भरके लिए लाल हो उठा, लेकिन पल-भरके भीतर ही अपनेको सँभाल लेकर वे हँसकर बोले, " तो फिर बिना अपराधके किसीका अन्न मारना क्या अच्छा है बेटी ?"

विजया उसका जवाब दिये बिना चुप हो रही, यह देख कर गुमाश्तेने भरोसा पाकर कहना चाहा, " तो फिर उसे—"

"हाँ, विदा कर दीजिए,—आज ही।" यह कहकर विजया बही-खाते देखने लगी। गुमाश्ता फिर भी कुछ आशासे कुछ देर खड़ा रहा। उसके चले जानेपर रासबिहारीने पाँच मिनटके लगभग स्तब्ध भावसे ठहर कर अपनी प्रार्थना दुहराकर कहा, " थोड़ा-सा कष्ट उठाकर ऊपर गये बिना काम नहीं चलेगा बेटी। पुरानी दस्तावेजें एक बार शुरूसे आखिर तक अच्छी तरह पढ डालना जरूरी ही है।"

विजयाने मुँह उठाये बिना कहा, " क्यों ?"

रासबिहारीने गम्भीर होकर कहा, "बताया तो कि विशेष कारण है। बार बार एक ही बात कहनेके लिए तो मेरे पास समय नहीं है।"

विजयाने अपने खातेकी तरफ दृष्टि गड़ाये रखकर ही धीरे धीरे कहा, "सो आप ठीक कहते हैं, लेकिन, ठीक कारण तो आपने एक भी नहीं बताया।"

" बताये बिना क्या तुम उठोगी नहीं ?" कहकर और कुछ क्षण प्रतीक्षा करके वे धैर्य खो बैठे, उन्होंने कहा, "इसका मतलब यह कि तुम मेरा विश्वास नहीं करतीं ?"

विजया निरुत्तर नीचा मुँह किये काम करने लगी, उसने कोई उत्तर नहीं दिया। उसकी इस चुप्पीका अर्थ इतना सुस्पष्ट, इतना तीक्ष्ण था कि रासबिहारीका मुँह क्रोधसे काला हो गया। वे हाथकी छड़ी मेजपर पटक कर बोले, " किसलिए

तुम मेरा इतना बड़ा अपमान करनेका साहस करती हो विजया ? किसलिए तुम मेरा अविश्वास करती हो, सुनूँ ?"

विजयाने शान्त कण्ठसे कहा, "मेरा भी तो आप विश्वास नहीं करते। मेरे पैसेसे मेरे ही ऊपर खुफिया नियुक्त करनेपर मेरे मनका भाव क्या होगा, सो आप निश्चय समझ सकते हैं और फिर मेरी अपनी सम्पत्तिकी मूल दस्तावेजें हस्तगत करनेका तात्पर्य यदि मैं और ही कुछ समझकर सन्देह करूँ, तो क्या वह अस्वाभाविक होगा ? या आपका अपमान करना होगा ?"

रासबिहारी एकदम निर्वाक् स्तम्भित हो गये। उनकी इतनी बड़ी पक्की चाल कलकत्तेकी विलासिताके बीच लाड़-प्यारसे पली हुई एक बालिकाके निकट पकड़ाई दे सकती है, इस सम्भावनाने उनकी पक्की बुद्धिमें स्थान ही नहीं पाया, और यह तो स्वप्नके भी अगोचर था कि ऐसी बातको वह बिना किसी संकोचके मुँहपर कह देगी।

रासबिहारी अनेक क्षणोंतक विमूढ़के समान बैठे रहकर फिर युद्धके लिए कमर कसकर खड़े हो गये और इस प्रकृतिके व्यक्तियोंका जो अन्तिम अस्त्र है, उसे ही तरकससे बाहर निकाल कर उन्होंने इस असहाय बालिकापर निर्ममतासे चलाया। कहा, "बनमालीकी इज्जत रखनेके लिए ही मैंने यह सब किया है। बन्धुका कर्तव्य होनेके कारण ही तुम्हारी चाल-चलनकी तरफ मुझे नजर रखनी पड़ी है। एक बिना जान-पहचानके हतभागेको मैदानसे बुलाकर उसके साथ तुमने कल सारा समय बिता दिया, इसका मतलब क्या मैं समझ नहीं सकता ? सिर्फ इतना ही नहीं, उस दिन आधी राततक उसके साथ हँसी-मजाक गप-शप करके भी तुम्हें सन्तोष नहीं हुआ। वह रातको कलकत्ते नहीं लौट सका, बहाना करके उसे यहीं रह जाना पड़ा। इसमें तुम्हें जरूर शरम नहीं लगती, लेकिन, हम लोगोंका मुँह तो घर-बाहर काला हो गया। समाजमें किसीके भी सामने सिर उठानेकी गुंजाइश नहीं रही।"

बात इतनी अधिक मर्मान्तिक न होती तो शायद विजया अपमान और क्रोधसे उसी क्षण चिल्लाकर प्रतिवाद करती, लेकिन इस आघातने जैसे उसे अवश जड़ कर दिया।

रासबिहारीने छिपी निगाहसे अपने ब्रह्मास्त्रकी प्रचण्ड महिमा विजयाके रक्तहीन मुँहपर अत्यन्त सन्तोषके साथ देख ली। वे क्षण-भर चुप बैठे रहे, और उसके बाद बोले, "तब यह सब क्या अच्छा है, या, इसे निवारण करनेकी चेष्टा करना

मेरा काम नहीं है ?"

विजयाको स्तब्ध बैठी देखकर, उन्होंने फिर जोर देकर कहा, "नहीं, चुप रह जानेसे काम नहीं चलेगा। विजया, तुम्हें जवाब देना होगा।"

तो भी जब विजयाने बात नहीं कही, तब उन्होंने हाथकी छड़ी फिर मेजपर पटककर धमकाते हुए कहा, "नहीं, चुप रह जानेसे काम नहीं चलेगा। ये सब गम्भीर बातें हैं—जवाब देना होगा।"

इतनी देर बाद विजयाने मुँह उठाकर देखा। उसके पाशु ओष्ठाधर एक बार कुछ काँप उठे, उसके बाद धीरे-धीरे कहा, "मामला चाहे जितना गम्भीर हो, झूठ बातका मैं आपको क्या जवाब दे सकती हूँ ?"

रासबिहारीने तेजीके साथ प्रश्न किया, "तो क्या तुम इसे झूठ बात कहकर उड़ा देना चाहती हो ?"

विजयाने और थोड़ा मौन रहकर वैसे ही मृदु कण्ठसे प्रत्युत्तर दिया, "मैं उड़ाना कुछ भी नहीं चाहती काकाजी, सिर्फ यही कहना चाहती हूँ कि यह सरासर झूठ है। इसके साथ यह भी आपको जता देना चाहती हूँ कि आप स्वय ही इस बातको सबसे ज्यादा जानते हैं कि यह मिथ्या है।"

रासबिहारी एकदम सिटपिटा गये। वे पहली बातके लिए अवश्य तैयार थे, लेकिन अन्तिमके लिए बिल्कुल नहीं। विजया किसी भी अवस्थामें उनके ही मुँहपर उन्हें मिथ्यावादी और मिथ्या दुर्नाम-प्रचारकारी कह सकती है, यह उनकी कल्पनासे भी परे था। इस समय उनके निजके शब्द उनके मुँहपर नहीं आये—उन्होंने केवल विजयाकी बातको ही मशीनके पुतलेके समान दुहराकर कहा, "मैं खुद ही सबकी अपेक्षा अधिक जानता हूँ कि यह मिथ्या है ?"

विजया उठकर खड़ी हो गई और बोली, "आप गुरुजन हैं। आपसे इस विषयमें तर्क-वितर्क करनेकी मेरी प्रवृत्ति नहीं होती। दस्तावेजें इस समय रहने दीजिए, जब मामले-मुकदमोंकी आवश्यकता होगी तब आपको बुलवा भेजूँगी," कहकर बगलके दरवाजेसे भीतर चली गई।

## २४

सबसे पहले विजयाके मनमें आया था कि कल सबेरे ही जैसे भी बन सके कलकत्ता भाग कर इस व्याधसे आत्म-रक्षा करनी होगी। लेकिन उत्तेजनाका पहला धक्का जब निकल गया, तब उसने देखा कि इससे सिर्फ जालका फन्दा ही

और न कस जायगा, बल्कि साथ ही साथ अपवादका धुँआ भी उड़ेगा जो वहाँके आकाश तकको गन्दा किये बिना न रहेगा। तब, कलकत्ताके समाजमें ही वह किस प्रकार मुँह दिखायेगी और यहाँ भी तो वह घरसे बाहर नहीं निकल सकी। यद्यपि वह निश्चय समझती थी कि रासबिहारीने उसे परित्याग करनेके लिए नहीं, बल्कि ग्रहण करनेके अभिप्रायसे ही इस बदनामीकी रचना की है, और जब तक वे एकदम निराश न हो जायँगे तबतक किसी भी तरह इस झूठको नहीं बाहर फैलायेंगे, तो भी दो दिनके बाद कचहरीके गुमाश्तेने जब हिसाबमें सही करनेके लिए मिलनेकी प्रार्थना की, तब उसने अस्वस्थताका बहाना करके खाते-बही ऊपर मँगा लिये।—आज अपने कर्मचारीके भी सामने आनेमें उसे लज्जा लगने लगी,—कहीं किसी छिद्रसे यह बात उसके कानमें न पड़ गई हो और उसकी आँखोंमें भी अवज्ञा और उपहासकी दृष्टि न छिपी हो!

एक बातसे वह जैसे डर रही थी, वैसे ही जी जानसे यह कामना भी कर रही थी कि अपने पिताका पत्र लेकर नरेन्द्र खुद ही उपस्थित हो। लेकिन, पाँच-छः दिनोंके बाद चिट्ठीरसाके हाथसे उस बातकी मीमांसा ही हो गई। चिट्ठी अवश्य आई, लेकिन डाकसे आई। नरेन्द्र खुद नहीं आया। आखिर क्यों नहीं आया, यह अनुमान करनेमें उसे एक मुहूर्तकी भी देर नहीं लगी। वह ठीक यही आशङ्का कर रही थी कि बादको रासबिहारी किसी छलसे यह बात नरेन्द्रके कानोंतक पहुँचाकर उसके लिए इस मकानका रास्ता बन्द कर देंगे। चिट्ठी हाथमें लेकर विजया सोचने लगी, लेकिन इतने सहज ही यदि इस तरफका रास्ता उसके लिए बन्द हो जाय, इस तरह अनायास ही वह यदि इस झूठे कलङ्कका टोकरा उसके ही सिरपर रखकर भयके मारे दूर हट जाय, तो फिर इस बदनामीका बोझ —चाहे यह कितना ही असत्य हो—वह लाद कर चलेगी किस अवलम्बनसे? तब तो यह मिथ्या भार ही उसे परम सत्यके समान पलक मारते ही मिट्टीमें मिला देगा!

इस तरह अभिभूतके समान स्थिर होकर बैठे बैठे वह न जाने क्या क्या चिन्ताएँ करने लगी। बार बार आँखें पोंछकर बहुत देरके अनन्तर वह उठ खड़ी हुई और अपने परलोकगत पिताके दोनों हस्तलिखित पत्र मस्तकसे लगाकर फूट फूटकर रोने लगी। उसने दोनों चिट्ठियाँ पढ़नी चाहीं, पर बार बार उसकी दृष्टि आँसुओंसे धुँधली हो गई। अन्तमें बहुत देर बाद, बहुत यत्न करके जब उसने पढ़ना समाप्त किया तब पिताकी आन्तरिक कामना उसे अविदित नहीं रही। यह सत्य उसके

सामने एकदम स्फटिकके समान स्वच्छ हो गया कि उस समय उन्होंने केवल उसीके लिए नरेन्द्रको मनुष्य बना देना चाहा था, और यह भी समझनेको बाकी नहीं रहा कि यह बात और चाहे जिससे अज्ञात हो रासविहारीसे नहीं थी।

और भी पाँच-छः दिन कट गये। एक दिन सबेरे विजयाने नींद खुलनेपर देखा, मकानमें राज मजूर लगे हुए हैं और सारे मकानको चूनेसे पोतनेका उद्योग कर रहे हैं। कारण सोचनेपर अकस्मात् उसका सर्वांङ्ग शिथिल हो आया और उसे याद आ गया कि आगामी पूर्णिमाके आनेमें अब केवल सात दिन बाकी हैं।

सारे दिन तेजीसे काम चलने लगा। परन्तु वह किसीको भी बुलाकर नहीं पूछ सकी कि यह किसके आदेशसे हो रहा है, अथवा क्यों इस विषयमें उसकी सम्मति नहीं ली गई।

आज तीसरे पहर अनेक दिनोंके बाद विजया कन्हैयासिंहको साथ लेकर नदीके किनारे घूमने निकली थी। हठात् दयाल आकर उपस्थित हो गए। उन्होंने कहा, "मैं तुम्हें ही ढूँढ़ता फिर रहा हूँ बेटी!"

विजयाने जब आश्चर्यमें पड़कर कारण पूछा, तब उन्होंने कहा, "बेटी, अब तो देरी नहीं है, निमन्त्रण-पत्र छपाने होंगे, तुम्हारे बन्धु-बान्धवोंको सादर बुलानेकी चेष्टा करनी होगी। इसलिए उन सबके नाम-धाम मालूम हो जायँ तो—"

विजयाने कठोर होकर पूछा, "निमन्त्रणपत्र, जान पड़ता है, मेरे ही नामसे छपाये जायँगे?"

दयाल मन ही मन जानते थे कि यह विवाह सुखका नहीं है, उन्होंने सकुचा कर कहा, "नहीं बेटी, तुम्हारे नामसे क्यों छपेंगे? रासविहारी वर-कन्या दोनोंके ही जब अभिभावक हैं, तब उनके नामसे ही निमन्त्रण देना स्थिर हुआ है।"

विजयाने कहा, "स्थिर क्या उन्होंने ही किया है?"

दयालने गरदन हिलाकर कहा, "हाँ, उन्होंने ही तो किया है।"

विजयाने कहा, "तो यह भी वे ही स्थिर करें। मेरे बन्धु-बान्धव कोई नहीं हैं।"

दयाल इसका कोई उत्तर नहीं दे सके। चलते चलते बातें हो रही थीं कि विजया सहसा प्रश्न कर बैठी, "जो चिट्ठियाँ आपने नरेन्द्र बाबूको दी थीं, उन्हें क्या आपने पढ़ा था?"

दयाल बोले, "नहीं बेटी, दूसरेकी चिट्ठी मैं क्यों पढ़ूँगा? नरेन्द्रके पिताका नाम देखकर ही मैंने समझ लिया कि यह जब उनकी वस्तु है, तब उनके लड़केके

हाथमें ही देना उचित है। एक बार मनमें आया अवश्य था कि तुमसे पूछूँगा, लेकिन—क्यों क्या कोई दोष हो गया बेटी ?"

वृद्धको लज्जित होते देखकर विजयाने मधुर कण्ठसे कहा, "उनके पिताकी वस्तु आपने उन्हें दे दी, यह तो ठीक ही किया है। अच्छा, वे क्या आपसे इस सम्बन्धमें कुछ भी नहीं बोले ?"

दयाल बोले, "नहीं, कुछ भी नहीं। लेकिन कुछ जानना हो तो उनसे पूछ कर मैं कल ही तुम्हें बता सकता हूँ।"

विजयाने विस्मित होकर कहा, "कल ही किस प्रकार बता सकियेगा ?"

दयालने कहा, "जान पड़ता है, बता सकूँगा। आजकल वे रोज ही मेरे यहाँ आते हैं न।"

विजयाने शङ्कित होकर कहा, "आपकी स्त्रीकी बीमारी क्या फिर बढ़ गई है ? यह बात तो आपने मुझे नहीं बताई ?"

दयाल कुछ हँसकर बोले, "नहीं, अब वे बहुत अच्छी हैं। नरेन्द्रकी चिकित्सा और भगवानकी दया।" कहकर उन्होंने हाथ जोड़कर परब्रह्मके उद्देशसे प्रणाम कर लिया।

विजयाके विस्मयकी सीमा नहीं रही। उसने दयालके मुँहकी तरफ़ क्षण-भर देखते रहकर प्रश्न किया, "तो उन्हें प्रतिदिन आना पड़ता है ?"

दयाल प्रसन्नमुखसे कहने लगे, "आवश्यक न होनेपर भी जन्मभूमिकी माया क्या सहज ही कट जाती है बेटी ! इसके सिवा, आजकल नरेन्द्रको काम-काज कम है, वहाँ बन्धु-बान्धव भी कोई नहीं हैं,—इसीलिए वे शामका समय यहीं बिता जाते हैं। विशेष करके, मेरी स्त्री तो उन्हें बिल्कुल लड़केके समान ही चाहती है।—चाहने योग्य लड़का भी तो है। लेकिन, बातों बातोंमें जब इतनी दूर आ गई हो बेटी, तब अपने इस मकान तक भी क्यों न चली चलो ?"

"चलिए" कहकर विजया साथ साथ चलने लगी।

दयाल कहने लगे, "मैंने तो ऐसा निर्मल, ऐसा स्वभावतः सज्जन व्यक्ति अपनी इतनी उम्रमें कभी नहीं देखा। नलिनीकी इच्छा है कि वह बी० ए० पास करके डाक्टरी पढ़े। इस विषयमें वे उसे कितना उत्साहित करते हैं, कितनी सहायता देते हैं, इसकी कोई हद नहीं।"

विजया चौंक उठी। कलकत्तेसे प्रतिदिन इतनी दूर आकर शाम बितानेका

यह सन्देह ही अब तक उसके हृदयके भीतर विषके समान फेनिल होता जा रहा था। दयालने फिर कर देखकर स्नेहार्द्र कण्ठसे कहा, "तो अब जानेका काम नहीं है बेटी, तुम थक गई हो।"

विजयाने कहा, "नहीं, चलिए।"

उसकी गतिकी शिथिलता लक्ष्य करके ही दयालने थकानकी बात उठाई थी, लेकिन यदि वे उसके मुँहकी आकृति देख पाते तो वह बात मुँहपर भी न ला सकते।

उस समय प्रत्येक पदक्षेपपर विजयाके नीचेसे जो कठिन पृथ्वी सरकती जा रही थी, उसका अनुमान करना दयालके लिए असम्भव था। इसीलिए वे फिर भी अपने मनसे ही कहते गये, "नरेन्द्रकी सहायतासे इतने ही दिनोंमें नलिनीने अनेक पुस्तकें पूरी कर डाली हैं। लिखने-पढ़नेमें दोनोंका बड़ा अनुराग है।"

अनेक क्षण निःशब्द चलनेके पश्चात् विजयाने प्राणपण प्रयत्नसे अपनेको संयत करके धीरेसे पूछा "आप क्या और कुछ सन्देह नहीं करते?"

दयालने कोई विशेष विस्मय प्रकट नहीं किया। सहज भावसे ही पूछा, "काहेका सन्देह बेटी?"

इस प्रश्नका जवाब विजया उसी क्षण नहीं दे सकी। उसका हृदय जैसे फटने लगा। कुछ क्षणोंमें यह व्यथा सवरण कर लेनेपर उसने कहा, "मुझे लगता है, नलिनीके सम्बन्धमें उनके मनका भाव स्पष्ट रूपसे जान लेना उचित है।"

दयालने अनुमोदन करते हुए कहा, "ठीक बात है। लेकिन उसका अवसर तो अब भी नहीं बीता है बेटी, बल्कि मुझे तो ऐसा लगता है कि दोनों व्यक्तियोंका परिचय जब तक और थोड़ा घनिष्ठ न हो जाय तब तक सहसा कुछ न करना ही उचित है।"

विजयाने समझ लिया कि यह प्रश्न दूसरेके मनमें भी उदय हुआ है। क्षण-भर मौन रहकर उसने कहा, "लेकिन नलिनीके पक्षमें तो क्षतिकर हो सकता है। उनका मन स्थिर करनेमें शायद समय लग सकता है, लेकिन इस बीचमें नलिनीके—"

सङ्कोच और वेदनाके मारे आगेकी बात उसके मुँहसे बाहर नहीं निकल सकी। लेकिन दयालने, जान पड़ता है, समस्याकी इस दिशाको उतना विचार कर नहीं देखा। वे सन्दिग्ध स्वरमें बोले, "सच बात है। लेकिन जहाँतक मैंने

अपनी स्त्रीसे सुना है, उससे—लेकिन, तुमसे तो कह चुका हूँ, नरेन्द्रका हम लोग ख़ूब विश्वास करते हैं। उनके द्वारा किसीकी भी कोई हानि हो सकती है, वे भूलकर भी किसीके प्रति अन्याय कर सकते हैं, यह मैं कल्पना भी नहीं कर सकता।"

वे कल्पना भले ही न कर सकें, लेकिन तो भी ठीक उसी समय अन्याय कहाँ और कितनी दूरतक पहुँच रहा था, यह केवल अन्तर्यामी ही जानते थे।

दोनोंने जब दयालकी बैठकके कमरेमें प्रवेश किया, तब शामकी छाया घनी हो आई थी। एक टेबुलके दोनों तरफ दो कुर्सियोंपर नरेन्द्र और नलिनी बैठे हुए थे। सामनेकी खुली पुस्तकके सम्बन्धमें ही सम्भवत. अक्षर अस्पष्ट हो आनेके कारण पढ़ना छोड़कर धीरे धीरे दोनोंने आलोचना शुरू कर दी थी। नलिनीकी नजर इसी ओर थी। उसने ही पहले कल-कण्ठसे सवर्द्धना की। लेकिन विजयाका मुँह वेदनासे विवर्ण हो गया, यह सन्ध्याके म्लान आलोकमें वह न देख सकी। नरेन्द्र तुरन्त कुर्सी छोड़कर उठ बैठा और उसने नमस्कार करके पूछा, "अच्छी हैं?"

विजयाने न तो प्रतिनमस्कार किया और न प्रश्नका ही उत्तर दिया। मानो वह देख ही न सकी हो, ऐसे भावसे उसकी तरफ़ बिलकुल पीठ करके उसने नलिनीसे कहा, "क्यों, आप तो फिर एक दिन भी नहीं आईं?"

नरेन्द्रने सामने आकर हँसमुख होकर कहा, "और मुझे शायद पहचान भी न सकीं?"

विजयाने शान्त अवज्ञाके सहित जवाब दिया, "पहचान सकनेसे ही क्या पहचानना जरूरी हो जाता है?"

फिर नलिनीसे कहा, "चलिए, आपकी मामीसे बातचीत कर आऊँ।"

कहकर केवल पल-भर इस तरफ और एक बार दृष्टिपात करके वह उसे एक प्रकारसे खींचते हुए ही ऊपर चली गई। नलिनीने कुछ सीढ़ियाँ ऊपर पहुँच जानेपर पुकार कर कहा, "लेकिन, चाय पिये बिना कहीं भाग न जाइएगा, नरेन्द्रबाबू।"

नरेन्द्र इसका जवाब नहीं दे सका, विस्मयसे-अपमानसे एकदम काठ होकर खड़ा रहा और वृद्ध दयाल भी उसकी इस अप्रत्याशित लज्जाका अंश बँटानेके लिए विरस मुँहसे उसी स्थानपर चुपचाप खड़े रहे। लेकिन, तो भी न जाने कैसे उन्हें रह रहकर सन्देह होने लगा, कि जो बाहर प्रकट हुआ है, यह ठीक

वही वस्तु नहीं है, —इस अकारण अपमानके आवरणके नीचे, जो दृष्टिकी आड़में रह गया है, वह और चाहे जो हो उपेक्षा—अवहेलनाका भाव तो नहीं ही है।

कुछ देर बाद चायके लिए पुकार हुई, पर आज नरेन्द्र दयालका अनुरोध टालकर नीचे ही रह गया। लेकिन, उसे अकेला छोड़कर दयाल ऊपर नहीं जा रहे हैं, यह देखकर उसी क्षण उसने हँसते हुए कहा, "मैं घरका आदमी हूँ, मेरी बात मत सोचिए दयाल बाबू। आपको अपने मान्य अतिथिका सम्मान रखना आवश्यक है। आप जल्दी जाइए।"

दयालने दुःखित और लज्जित भावसे ऊपर जानेका उपक्रम करते हुए कहा, "तो फिर तुम क्या कुछ देर बैठोगे?"

नौकर दीपक रख गया था। नरेन्द्र खुली पुस्तकको नज़दीक खींचकर गरदन हिलाकर बोला, "जी हाँ, जरूर बैठूँगा।"

प्रायः आध घण्टेके बाद फिर तीनों व्यक्ति नीचे उतर आये। नरेन्द्र पुस्तक रखकर खड़ा हो गया। आज उसके चले जानेपर ही शायद ये लोग आराम अनुभव करते, क्योंकि, उसके इस प्रकार अकेले प्रतीक्षा करते रहनेने सबको एक साथ मानो लज्जा और सङ्कोचका कोड़ा-सा मार दिया।

नलिनीने सलज्ज मृदु कण्ठसे कहा, "आपकी चाय नीचे लानेको कह दिया है,—अभी ही आई जाती है नरेन्द्र बाबू!"

लेकिन विजया उससे किसी प्रकारका सम्भाषण किये बिना, यहाँतक कि उसकी ओर दृष्टिपात तक किये बिना ही, धीरे धीरे बाहर निकल गई। कन्हैयासिंह दरवाजेके पास बैठा था, वह हाथमें लाठी लेकर उठ खड़ा हुआ। विजयाने बाहर आकर देखा, आकाशमें मेघोंका आभास तक नहीं है,—नवमीका चन्द्रमा ठीक सामने ही स्थिर हो रहा है। उसके मनमें आने लगा, उसके पैरोंके नीचेकी दूबसे आरम्भ करके निकट दूर जो कुछ दिखाई पड़ता है : आकाश, मैदान, गाँवके अन्तकी वन-रेखा, नदी-जल,—सब ही जैसे इस निःशब्द ज्योत्स्नामें खड़े होकर अवसन्नसे हो रहे हैं। किसीके साथ किसीका सम्बन्ध नहीं है,—किसीका परिचय नहीं है। कोई नींदमें ही स्वतन्त्र जगत्से तोड़ लाकर इन्हें जहाँ तहाँ फेंक गया है, अब तन्द्रा टूटनेपर ये परस्परके अनजाने मुँहकी तरफ अवाक् होकर ताक रहे हैं। चलते चलते उसकी आँखोंसे अविरल आँसू गिरने लगे और उन्हें पोंछते हुए वह बार बार कहने लगी, "अब और नहीं सह सकती, अब और बरदाश्त नहीं कर सकती।"

घर आते ही ख़बर मिली कि रासबिहारी न जाने किस लिये शामसे ही बाहरकी बैठकमें बैठे अपेक्षा करते रहे हैं। सुनते ही उसका चित्त कड़ुआ हो गया और कोई बात न कहकर पासकी सीढ़ीसे वह अपने ऊपरके कमेरेमें चली गई। लेकिन यह भी उसे अविदित नहीं था कि हजार देर होनेपर भी इस परम सहिष्णु व्यक्तिकी धैर्य-च्युति नहीं होगी। वे जब प्रतीक्षा किये बैठे हैं, तब, रात चाहे जितनी हो जाय, मिले बिना किसी प्रकार नहीं टलेंगे।

थोड़ी देरके भीतर ही दरवाजेपर खड़े होकर परेशने जताया कि बड़े बाबू आ रहे हैं और प्रायः साथ ही साथ उनकी चट्टियों और छड़ीका शब्द सुनाई पड़ा।

विजयाने कहा, "आइए।"

कमेरेमें प्रवेश करके रासबिहारी कुर्सीपर बैठ गये और बोले, "मैं इसीसे अब तक इन लोगोंसे कह रहा था कि इतने नौकर-चाकरोंमेंसे यह होश किसीको नहीं हुआ कि मकानसे लालटेन ले जायँ! दयालको भी यह भय होना उचित था कि मैदानमें केवल चाँदनीके प्रकाशपर निर्भर न रहकर साथमें लालटेन भेज देना चाहिए! इसीलिए, सोचता हूँ, भगवान्! इस संसारमें अपने-परायेका तुमने कितना प्रभेद कर रक्खा है!" फिर उन्होंने एक लम्बी साँस ले ली। लेकिन, जब विजयाने कुछ भी नहीं कहा, तब रासबिहारी खाँसकर, कुछ इधर-उधर करके, जेबसे एक कागज बाहर निकालकर बोले, "जो कुछ करना चाहिए मैंने सब ही कर रक्खा है; केवल तुम्हें अपना नाम लिख देना होगा बेटी, इसे अब कल ही भेज देना चाहिए।" और वह कागज़ उन्होंने विजयाके हाथमें दे दिया। विजयाने देखते ही समझ लिया, यह उनके ब्राह्मविवाहकी कानूनके अनुसार रजिस्ट्री करानेकी दस्तावेज़ है। छापे और हाथकी लिखावटको आदिसे अन्ततक दो-तीन बार पढ़कर अन्तमें उसने मुँह उठाया। अधिक समय नहीं बीता था, लेकिन, इतनेमें ही उसके मनमें एक अद्भुत व्यापार घटित हो गया। उसकी अब तककी इतनी बड़ी वेदना अकस्मात् न जाने कैसे एक प्रकारकी कठिन उदासीनता और निदारुण वितृष्णामें रूपान्तरित हो गई। उसने सोचा कि जगत्के सभी पुरुष एक ही साँचेमें ढले हुए हैं। रासबिहारी, दयाल, विलास, नरेन्द्र—असलमें किसीके साथ किसीका कोई प्रभेद नहीं है। बुद्धि और अवस्थाके तारतम्यसे जो कुछ बाहर दिखलाई देता है, केवल वही प्रभेद है। नहीं तो अपने सुख और सुभीतेके लिए नीचतामें, कृतघ्नतामें, निर्मम निष्ठुरतामें नारीके लिए ये सभी

समान हैं। आज दयालका आचरण ही उसे सबकी अपेक्षा अधिक खटका था। क्योंकि न जाने कैसे उसे निःसशय विश्वास हो गया था कि उसके हृदयकी एकान्त कामनाकी वस्तुको ये जानते हैं और इसीलिए इन्हीं दयालके लिए उसने क्या क्या नहीं किया है? सारे प्राणोंसे श्रद्धा की है, चाहा है, बिलकुल अपना समझा है। लेकिन अपनी भानजीके कल्याणके मुकाबिले सब कुछ जान-सुनकर भी उन्होंने इस विश्वासकी कोई मर्यादा नहीं रक्खी। उनकी आँखोंके नीचे ही जब दिन-पर दिन एक अनात्मीया रमणीके मर्मान्तिक दुःखका पथ प्रस्तुत हो रहा था, तब कितनी द्विधा, कितनी करुणा उनके मनमें जागी थी! फिर रासबिहारीके साथ मूलतः उनका भेद किस स्थानपर और कितना है? नरेन्द्रकी बात उसने पहलेसे ही विचारसे बाहर ठेल रक्खी थी। इस समय भी उसके विषयमें विचार करनेका भान उसने नहीं किया। केवल यह बात ही इस समय वह अपने आप बार बार कहने लगी कि जब सब ही समान हैं, तब विलासको ही आखिर विद्वेषकी आँखोंसे देखनेका उसे क्या अधिकार है? बल्कि, वह ही तो सबकी अपेक्षा निर्दोष है! उसने ही तो सबकी अपेक्षा कम अपराध किया है! वास्तवमें केवल उसके ही तो वाक्य और व्यवहारमें मेल दिखाई पड़ा है! उसका जो कुछ अपराध है, वह केवल उसके ही लिए है। कुछ स्थिर रहकर विजयाने अपने आपको दुबारा समझाया कि विलासका प्रेम सत्य और सजीव है, इसीलिए तो वह चुप-चाप सहन नहीं कर सका और विरुद्ध शक्तिको रोकनेके लिए पूरी तरहसे हथियार बाँधकर खड़ा हो गया,—'जाओ' कहते ही सस्ती भलमनसाहतकी रक्षा करके रूठकर चला नहीं जा सका। यदि यही अपराध है, तो उसे दंड देनेका अधिकार और चाहे जिसे हो, उसे तो नहीं है। उसे और एक बात याद आई इस कठिन वास्तविक ससारकी। उस दिशामें विचार करके देखनेसे तो इस विलासकी योग्यता ही सबकी अपेक्षा बड़ी दिखाई पड़ती है! उस अपदार्थकी तुलनामें तो इसे किसी प्रकार भी उपेक्षाकी वस्तु कहना शोभा नहीं देता!

लेकिन, रासबिहारी उसके गम्भीर निर्वाक् मुँहकी तरफ़ देखकर अत्यन्त आशंकित होकर रह गये। उन्होंने कहा, "तो फिर बेटी, इस कमरेमें दावात-कलम है, या नीचेसे लानेको कह दूँ?—"

विजयाने चौंककर देखा। अतीतकी कुत्सित, कदाकार स्मृतिपर उसकी विचारोंकी डोरीने धीरे धीरे एक सूक्ष्म जाल बुनना आरम्भ ही किया था कि इस स्वार्थान्ध वृद्धकी निष्ठुर व्यग्रताने छुरीके समान पड़कर उसे निमेष-भरमें छिन्न-भिन्न

करके आदिसे अन्ततक अनावृत्त कर दिया और दूसरे ही क्षण विजया एकदम मरनेके लिए प्रस्तुतके समान निर्दय हो उठी। उसने कहा, " अच्छा, मैं पूछती हूँ काकाजी, आपका क्या यही मत है कि पाप चाहे जितना ही बड़ा क्यों न हो, वह रुपयोंके नीचे दब जाता है ? "

रासबिहारीने प्रश्नका तात्पर्य ठीकसे न समझ पाकर सिटपिटाकर कहा, " क्यों, क्यों बेटी ? "

विजया अविचलित दृढ़ स्वरसे बोली, " नहीं तो मेरे इतने बड़े पापकी भी उपेक्षा करके क्या आप मुझे ग्रहण करना चाहते ? "

रासबिहारी लज्जासे व्याकुल हो उठे। वे हतबुद्धि होकर बोले, " वह तो झूठ बात है। बहुत बड़ा शत्रु भी तो तुम्हें वह अपवाद नहीं लगा सकता बेटी। "

विजयाने कहा, " शत्रु शायद नहीं लगा सकता। लेकिन मैं पूछती हूँ, विलासबाबू क्या मुझे श्रद्धाकी आँखोंसे देख सकते हैं ? "

रासबिहारीने कहा, " श्रद्धाकी आखँोंसे नहीं देख सकेगा ? तुम्हें ? विलास ? अच्छा—" कहकर वे ऊँचे स्वरसे पुकारने लगे, " विलास ! विलास ! "

विलास कहीं नज़दीक ही प्रतीक्षा कर रहा था, भीतर आकर खड़ा हो गया। रासबिहारी बोल उठे, " सुनो विलास ! हमारी विजया बेटी कह रही हैं कि तुम क्या उन्हें श्रद्धाकी आँखोंसे देख सकोगे ? सुनो जरा—"

लेकिन, विलास सहसा कोई उत्तर नहीं दे सका। प्रश्न जैसे समझ ही नहीं सका हो, ऐसे भावसे केवल देखता रह गया।

विजयाने कहा, " उस दिन काकाजी मकानके नौकर-चाकरोंसे पूछताछ करके मुझसे बोले थे कि मैं बहुत रात बीते तक एकान्तमें नरेन्द्र बाबूसे आमोद-प्रमोद करके भी तृप्त नहीं हुई, अन्तमें वे ट्रेन न पानेके बहाने रात यहीं काटकर सबेरे गये। ऐसी अवस्थामें—"

बात रासबिहारीके उच्च-कण्ठकी आवाज़के नीचे दब गई। वे बार बार कहने लगे, " कभी नहीं। कभी नहीं। यह असम्भव है ! यह घोर मिथ्या है !—यह बिल्कुल ही—" इत्यादि इत्यादि।

विलासका मुँह काला पड़ गया। उसने कहा, " नहीं, मैंने नहीं सुना। "

रासबिहारी फिर चिल्लाने लगे, " तुम कैसे सुनोगे विलास ? यह भयानक असत्य है ! यह दारुण—इसीलिए मैं साले दरबानको—तुम देखो तो, और उस परेश छोकरेको भी कैसा दण्ड देता हूँ !—मैं—"

विलासने कहा, "सारी पृथ्वीके लोग यदि इस बातकी गवाही देते, तो भी मैं विश्वास न करता।"

विजयाने कठिन होकर प्रश्न किया, "न करते? क्या मेरी सम्पत्तिके कारण?"

रासबिहारीने इस बातका सूत्र पकड़कर फिर बकना शुरू कर दिया था, लेकिन, लड़केके मुँहकी तरफ़ देखकर वे सहसा रुक गये।

विलासकी दोनों आँखें चमक उठीं, लेकिन उसके कण्ठ-स्वरसे लेशमात्र उच्छ्वास अथवा उग्रता प्रकट नहीं हुई। उसने केवल शान्त, स्थिर स्वरसे जवाब दिया, "नहीं। तुम्हारी सम्पत्तिका मुझे जरा भी लोभ नहीं है।"

सारा कमरा निस्तब्ध हो गया, और इस नीरवताके भीतरसे ही इतनी देर बाद जैसे एक ही साथ सारे व्यापारकी कदर्य श्रीहीनता सबकी नजरमें आ गई। यह मानो बाजारमें कोई ख़रीद-बिक्रीकी चीज़को लेकर दोनों तरफसे तीव्र कठोर मोल-भाव चल रहा था जिसमें लज्जा, शर्म, श्री, शोभाकी रत्ती-भर भी गुंजाइश नहीं थी,—केवल दो मनुष्य एक नङ्गे स्वार्थको मजबूत मुट्ठीसे पकड़कर एक दूसरेसे छीन लेनेके लिए प्राणपणसे खींच-तान कर रहे थे।

रासबिहारी अपनी अत्यन्त क्लेशसे अर्जित परिणत वयकी प्रशान्त गम्भीरताको विसर्जित करके जिस प्रकार एक नीचकी तरह शोर-गुल, चीख और पुकार मचा रहे थे, विलासकी भाषा और संयमके सामने वह त्रुटि स्वयं उन्हें जितनी खटकी, विजया भी अपनी नितान्त लज्जाहीन प्रगल्भताके कारण उतनी ही गड़ गड़ गई। विपत्ति चाहे जितनी गम्भीर हो, कोई भी भद्र महिला इतनी अधिक आत्म-विस्मृत होकर अपने चरित्रको मीमांसाका विषय बनाकर पुरुषके साथ इस प्रकार मर्यादा-हीन वाक्‌वितण्डामें प्रवृत्त हो सकती है, उसे क्षण-भरके लिए यह जैसे असम्भव व्यापार-सा लगा। उसे ऐसा लगा कि दाम्पत्य-जीवनका जितना माधुर्य,—जितनी पवित्रता है, सब जैसे उसके लिए एकदम उघड़कर धूलमें मिल गई है।

कमरेकी नीरव निस्तब्धताको भङ्ग करके विलासने ही फिरसे बात की। वह बोला, "विजया, बाबूजी कुछ भी करें, कुछ भी बोलें, हम लोग उन्हें समझ सकें या न समझ सकें,—लेकिन, यह बात हमें किसी प्रकार भूलना उचित नहीं है कि जिन्होंने ब्रह्म-पदमें आत्म-समर्पण किया है, वे कभी अन्याय नहीं कर सकते। मैं कहता हूँ कि तुम्हें छोड़कर तुम्हारी सम्पत्तिकी हम लोगोंको लेशमात्र इच्छा नहीं है।"

विजयाने अपने पाण्डुवर्ण मुँह और दोनों मलिन आँखोंको विलासके मुँहपर जमाकर पूछा, "सच बोलते हैं ?"

विलासने आगे बढ़कर विजयाका दाहना हाथ अपने हाथमें खींच लिया और कहा, "हमारे भीतर यदि कोई सत्य है विजया, तो आज मैं तुमसे सत्य बात ही बोल रहा हूँ।"

केवल मुहूर्त्त भर दोनोंके इसी प्रकार खड़े रहनेके बाद विजयाने धीरे धीरे अपना हाथ छुड़ा लिया और टेबुलके पास आकर कलम उठा ली। फिर पल-भरके लिए शायद उसने सन्देह किया, शायद नहीं किया,—कुछ भी निश्चयपूर्वक कहा नहीं जा सकता,—लेकिन, दूसरे ही क्षण बड़े बड़े अक्षरोंमें अपने नामकी सही करके काग़ज़को रासबिहारीके हाथमें दे दिया और कहा, "यह लीजिए।"

रासबिहारीने दस्तावेज़को मोड़कर जेबमें रक्खा और खड़े होकर बनमालीके शोकमें बहुत-से आँसू बहाकर निराकार परब्रह्मकी असीम करुणाका विशद गुण-गान करके कहा, "रात हो रही है" और वे चले गये।

पितृदेवके चले जानेपर विलासने और एक बार गम्भीर और काठके समान कड़े होकर कहा, "मैं जानता हूँ, तुम मुझे प्रेम नहीं करतीं। लेकिन यदि साधारण व्यक्तिकी तरह मैं भी इस प्रेमको ही सबसे ऊँचा स्थान देता, तो आज मुक्तकण्ठसे कह जाता, विजया, कि तुमने जिसे प्रेम किया है, उसे ही वरण करो। मुझमें वह शक्ति, वह उदारता, वह त्याग है!—पिताजीसे अबतक मैंने झूठी शिक्षा नहीं पाई है।"

मुहूर्त्त-भर स्तब्ध रह कर वह फिर कहने लगा, "लेकिन यह सकाम रूपतृष्णा, जिसे प्रेम समझकर मनुष्य भूल किया करता है, क्या ब्राह्म कुमार-कुमारीके विवाहका चरम लक्ष्य है?—नहीं, वह किसी प्रकार नहीं है, किसी प्रकार हो नहीं सकता। इसका विराट् उद्देश है सत्य! मुक्ति! परब्रह्मके पैरोंमें दो आत्माओंका एकान्त आत्म-समर्पण! मैं तुमसे कहता हूँ, कि एक न एक दिन मेरे निकट यह सत्य तुम अवश्य समझोगी! यह नरेन्द्र जब नहीं आया था, जरा उस समयकी बातें तो स्मरण करके देखो विजया!"

कोई बात कहनेके लिए विजयाने मुँह उठाया, लेकिन उसके ओष्ठाधर काँप उठे और प्रबल श्वासोच्छ्वाससे वाणी रुक गई,—मुँहसे कोई बात ही बाहर नहीं निकली। वह दोनों हाथ कपालपर रखकर नमस्कार करके ही बगलके दरवाजेसे तेजीसे भाग गई।

## २५

निदारुण संशयकी आगके घेरेमें विजयाका चित्त कितना अधिक पीड़ित और उद्भ्रान्त हो उठा था, यह वह तब तक ठीक तरहसे नहीं समझ सकी जब तक कि उसने अपनेको निश्चित रूपसे समर्पित न कर दिया। आज सबेरे नींद खुलते ही जान पड़ा कि उसका मन अत्यन्त शान्त हो गया है, क्योंकि, अपने मनमें चञ्चलताका आभास तक उसे ढूँढ़े नहीं मिला। बाहर देखनेपर उसे खयाल आया कि आकाश श्रावण-प्रभातके समान धूसर मेघोंके भारसे पृथ्वीके ऊपर घुटनोंके बल पड़ा है। ऐसे समयमें शय्या त्याग करना–न करना उसे एक-सा जान पड़ा। आज वह यह बात सोच ही नहीं सकी कि और दिनों सबेरे नींद खुलनेमें साधारण-सी देर होनेपर भी अन्तःकरण क्यों व्यथित लज्जित हो उठता था, और क्यों ऐसा लगने लगता था कि बहुत-सा समय नष्ट हो गया है। भला उसे ऐसा कौन-सा काम है। जो एक-दो घटे बिछौनेपर पड़े रहनेसे चलेगा नहीं। घरमें दास-दासी भरे हैं, बड़ी भारी जमींदारी सुनियमित रूपसे चल ही रही है। उसका सारा भविष्यत्-जीवन यदि ऐसे ही आरामसे,—ऐसी ही शान्तिसे कट जाय तो इसकी अपेक्षा और भली बात क्या है? उसने खिड़कीसे बाहर दृष्टि फैलाकर देखा, वृक्ष-लताओंका हरा रङ्ग तक बदल कर आज न जाने कैसा हो गया है, और उनके पत्ते तक स्थिर-गम्भीर हो उठे हैं। अब विश्व-ब्रह्माण्डमें कलह-विवाद, तर्क-वितर्क, अशान्ति-उपद्रव कहीं भी कुछ नहीं रह गया है,— एक रातके भीतर ही मानो वह बिलकुल ऋषि-मुनियोंका तपोवन बन गया है।

हृदयमें भरे हुए इस चरम अवसादको शान्ति समझ कर विजया लकवेसे जकड़े व्यक्तिकी तरह शायद और भी बहुत देरतक बिछौनेपर पड़ी रहती, लेकिन परेशकी माने आकर शान्ति भङ्ग कर दी। जो व्यक्ति बड़े सबेरे ही उठ बैठता है वह इतनी देरतक क्यों नहीं उठा, यह जाननेके लिए उसने आशंकित चित्तसे बार बार पुकारा और जब कमरेके कपाट खुलवा लिये तब छोड़ा।

हाथ-मुँह धोकर, कपड़े बदलकर, विजया नीचे उतर रही थी कि उसने सुना, आज खुद रासबिहारी ही मजूरोंके कामकी देख-भाल कर रहे हैं। केवल दो दिन और बाकी हैं, इतने थोड़े समयमें ही सारे घरको लीप-पोतकर बिल्कुल नया कर देना होगा।

विजयाने कुछ पहलेसे सोचा था कि पिछली रातको जिस दुरूह समस्याकी समाप्ति और चरम निष्पत्ति हो गई है, अब किसी भी कारणसे और किसीके भी द्वारा उसके विपरीत नहीं हो सकता, इसलिए उसके न्याय-अन्याय या भले-बुरेको लेकर अब वह कोई तर्क-वितर्क नहीं करेगी। मङ्गलमयकी इच्छासे यह सब मङ्गलके लिए ही हुआ है, इस विश्वासमें सन्देहकी छाया तक नहीं पड़ने देगी। लेकिन, सहसा उसने देखा कि यह सम्भव नहीं है। यह मनमें आते ही कि रासबिहारी नीचे है,—उतरते ही आमने-सामने भेंट हो जायेगी, उसका सर्वाङ्ग विमुख हो गया। वह अपने आप ही सीढ़ीसे लौट आई। बहुत देर तक बरामदेमें टहलते रहने पर भी जब समय नहीं कट सका, तब अकस्मात उसे अपने बाल्य बन्धु स्मरण हो आये। बहुत दिनोंसे किसीसे भेंट-मुलाकात नहीं हुई, चिट्ठी-पत्री भी बन्द है, आज उन्हें ही स्मरण करके वह अपने लिखने-पढ़नेके कमरेमें चिट्ठियाँ लिखनेके लिए आकर बैठ गई। उसके मनमें न जाने कितनी वेदना सञ्चित हो गई थी। चिट्ठियोंके द्वारा उसे ही मुक्ति देनेका यत्न करते हुए वह बिल्कुल मग्न हो गई। किस प्रकार उसने समय काटा, कितने आँसू उसके बह गये, इसका ध्यान ही उसे नहीं रहा। इतनेमें परेशकी माने दरवाजेके पास आकर कहा, "एक बज गया दीदी, खाओगी नहीं?"

घड़ीकी तरफ़ देखकर वह फिर लिखनेमें मन लगाने जा रही थी कि इतनेमें परेशकी माने सलज्ज मृदु कण्ठसे कहा, "अरी मैया, डाक्टर बाबू आ रहे हैं।" और वह तुरन्त ही जल्दीसे खिसक गई। विजयाने चौंक कर मुँह फिराकर देखा, बरामदेके ठीक सामने दूसरी ओरसे परेशके पीछे नरेन्द्र आ रहा है।

इसके पहले और भी कई बार वह ऊपर आया है, पर अपनी इच्छासे इस तरह सवाद दिये बिना भी ऊपर चढ़ आ सकता है, विजया यह कल्पना भी न कर सकती थी। उसका मुँह सूखा हुआ था और बड़े बड़े रूखे बाल अस्त-व्यस्त हो रहे थे। लेकिन कमरेमें पैर रखते ही जब वह बोल उठा, "कहिए तो, उस दिन आपने मुझे पहचानना क्यों नहीं चाहा था?" और एक कुर्सी लेकर बैठ गया, उस समय उसके कण्ठ-स्वरसे और उसकी सारी देहसे हृदयकी भाराक्रान्त क्लान्तिने इस तरह आत्म-प्रकाश किया कि विजया उत्तर तो क्या देती, दुःसह वेदनासे एकदम चौंक उठी। उसने व्याकुल व्यग्रतासे उठकर पूछा, "आपको क्या हुआ है नरेन्द्र बाबू? तबीयत तो कुछ खराब नहीं हो गई है?"

नरेन्द्रने गरदन हिलाकर कहा, "नहीं, तबीयत अब ठीक है। बहुत मामूली-

सा बुखार आया था, लेकिन उसने ही सहसा इतना दुर्बल कर दिया कि इससे पहले आ ही नहीं सका—लेकिन उस दिन मैंने क्या अपराध किया था, सो तो आज बतला दीजिए।"

परेश खड़ा था। विजयाने उससे कहा, "अपनी मासे जल्दीसे कुछ जल-पान लानेको कह दे परेश!" फिर नरेन्द्रसे कहा, "जान पड़ता है, सबेरेसे आपने कुछ खाया नहीं है।"

"लेकिन, मैं उसके लिए व्याकुल नहीं हूँ।"

"लेकिन मैं तो व्याकुल हूँ," कहकर विजया परेशके पीछे पीछे खुद भी नीचे चली गई।

कुछ क्षणोंके बाद ही वह जल-पानके थालपर एक कटोरा गरम दूध लाकर उपस्थित हो गई और उसने उसे चुपचाप अतिथिके सामने रख दिया। नरेन्द्रने आहारमें मन लगाकर हँसते हुए कहा, "आप एक अद्भुत व्यक्ति हैं। दूसरेके मकानमें पहचानना भी नहीं चाहतीं और अपने मकानमें इतना अधिक पहचानती हैं कि आश्चर्य होता है। उस दिनकी घटना देखकर मैंने सोचा कि सूचना देनेपर शायद आप मिलेंगी भी नहीं, इसीलिए सवाद दिये बिना ही परेशके साथ आकर आपको आ पकड़ा है। अब देखता हूँ कि ठगाया नहीं गया।"

विजयाने कोई बात नहीं कही। नरेन्द्र खुद भी कुछ समय मौन रहकर कहने लगा, "बहुत मामूली-सा बुखार था, लेकिन उसने इतना निर्जीव कर डाला है कि मैं स्वतः आश्चर्यमें पड़ गया हूँ। आप लोगोंसे फिर शीघ्र भेंट होनेकी सम्भावना होती, तो शायद आज भी न आता। इस रास्तेसे आनेमें मुझे सचमुच ही बहुत कष्ट हुआ है।" विजया वैसी ही निःशब्द रही, जान पड़ता है, वह बातको ठीक तौरसे समझ भी नहीं सकी। नरेन्द्रने दूधका कटोरा खाली करके रख दिया और कहा, "आप लोगोंने शायद सुना नहीं है कि मैंने यहाँकी नौकरी छोड़ दी है। आज इतनी जल्दी आनेमें यह भी एक बड़ा कारण है," फिर जेबसे एक लाल रङ्गकी चिट्ठी बाहर निकाल कर कहा, "आपके विवाहका निमन्त्रण-पत्र मैंने पा लिया है। लेकिन, विवाह देखकर जानेका सौभाग्य मुझे नहीं मिलेगा। उसी दिन सबेरे हमारा जहाज कराचीसे चल देगा।"

विजया डरकर बोली, "कराचीसे? आप कहाँ जा रहे हैं?"

नरेन्द्रने कहा, "साउथ अफरीका। पंजाबकी तरफ भी एक नौकरी जुटती थी, लेकिन नौकरी जब करनी है, तब बड़ी देखकर करना ही अच्छा है। मेरे लिए जैसा पञ्जाब वैसा केप-कालोनी। क्या कहती हैं? अब शायद हम लोगोंकी

और कभी भेंट नहीं होगी।"

अन्तिम बातें, जान पड़ता है, विजयाके कानमें नहीं पड़ीं। वह अत्यन्त उद्विग्न कण्ठसे प्रश्नपर प्रश्न करने लगी, "नलिनी क्या राजी हो गई हैं? मैं नहीं समझ सकती कि यदि हो भी गई हों, तो आप इतनी जल्दी कैसे जा सकेंगे? क्या उनसे आपने सब कुछ खोलकर कह दिया है? और इतनी दूर जानेकी आखिर उन्होंने सम्मति ही कैसे दे दी?"

नरेन्द्रने हँसमुख होकर कहा, "ठहरिए, ठहरिए। अभीतक किसीसे सब बातें तो अवश्य नहीं कही गई हैं, लेकिन—"

बात समाप्त हो जाने देनेका धैर्य भी विजयामें नहीं रहा। वह बीचमें ही आग-बबूला होकर बोल उठी, "यह किसी प्रकार नहीं हो सकता। आप लोग क्या हम लोगोंको सन्दूक-बिछौनेके समान समझते हैं कि इच्छा हो या न हो, रस्सीसे बाँधकर गाड़ीमें डाल देते ही हमें जाना ही होगा? यह किसी प्रकार भी न होगा। उनकी असम्मतिसे किसी प्रकार भी उन्हें इतनी दूर नहीं ले जा सकिएगा।"

नरेन्द्रका मुँह मलिन हो गया। वह विह्वल-सा कुछ क्षण स्तब्ध रहकर बोला, "मामला क्या है, मुझे समझाकर तो बताइए? यहाँ आनेके पहले दयाल बाबूसे भेंट हुई थी; वे भी सुनकर सहसा चौंक उठे और उन्होंने भी इसी प्रकारकी कोई आपत्ति उठाई जिसे मैं समझ ही न सका। इतने लोगोंके बीच नलिनीके ही मत-अमतपर आखिर मेरा जाना न जाना कैसे निर्भर करता है, और वे ही आखिर किस कारण बाधा डालेंगी,—मेरे लिए यह सब एक पहेली-सी बन गई है। बात क्या है, मुझे खोलकर तो बताइए?"

विजयाने स्थिर दृष्टिसे क्षण-भर उसके मुँहकी तरफ देखते रहकर धीरेसे कहा, "उनके साथ क्या आपने विवाहका प्रस्ताव नहीं किया है?"

नरेन्द्र एकदम जैसे आकाशसे गिर पड़ा। उसने कहा, "नहीं, किसी दिन नहीं।"

सहसा खूनकी एक आभाने विजयाके सारे मुँहको लाल कर दिया। लेकिन, पलक मारते ही उसने अपनेको सवरण करके कहा, "नहीं किया, पर करना क्या उचित न था? आपका मनोभाव तो किसीसे छिपा नहीं है।"

नरेन्द्र अनेक क्षण स्तम्भित-सा बैठा रहकर बोला, "मैं सोच रहा हूँ कि आखिर यह अनिष्ट किसके द्वारा हुआ? उनके निजके द्वारा तो कदापि नहीं हुआ,

क्योंकि, वे पहलेसे ही जानती थीं कि यह असम्भव है। लेकिन—"

विजयाने पूछा, " असम्भव क्यों ? "

नरेन्द्रने कहा, " सो रहने दीजिए। पर एक कारण यह है कि मैं हिन्दू हूँ और वे ब्राह्म। इसके सिवा हम लोगोंकी जाति भी एक नहीं है। "

विजयाने मलिन होकर कहा, " आप क्या जाति मानते हैं ? "

नरेन्द्रने कहा, " मानता क्यों नहीं। हिन्दू-समाजमें जाति भेद है, एकके साथ दूसरेका विवाह नहीं होता,—यह क्या आप भी नहीं मानतीं ? "

विजयाने कहा, " मानती हूँ, लेकिन अच्छा समझ कर नहीं मानती। आप शिक्षित होकर इसे अच्छा कैसे मानते हैं ? "

नरेन्द्र हँसने लगा। उसने कहा, " डाक्टरकी बुद्धि कुछ मटमैली-सी होती है, खास करके मेरे जैसे लोगोंकी जो माइक्रोस्कोपके द्वारा जीवाणुकी तरह तुच्छ वस्तु लेकर ही समय बिताते हैं। इसीलिए इस मामलेमें मुझे न हो माफ ही क्यों न कर दीजिए ? "

विजयाने समझा, नरेन्द्र जाति-भेदके भले बुरेका प्रश्न कौशलसे टाल गया। इसीलिए सूखे मुँहसे बोली, "अच्छा, दूसरी जातिकी बात जाने दीजिए। लेकिन जहाँ जाति एक है, वहाँ भी क्या केवल अलग धर्म-मतके कारण आप विवाहको असम्भव कहना चाहते हैं ? आप काहेके हिन्दू हैं ? आप तो बहिष्कृत हैं। क्या आप समझते हैं कि आपके लिए भी कोई ब्राह्म कुमारी विवाह योग्य नहीं है ? इतना अहङ्कार आपको किस लिए है ? और यही यदि आपका सच्चा मत है, तो यह बात आपने पहलेसे ही क्यों नहीं कह दी ? "

बोलते बोलते ही उसकी दोनों आँखें आँसुओंसे भर गईं, और उन्हें ही छिपानेके लिए उसने तुरन्त मुँह फिरा लिया। लेकिन वह नरेन्द्रकी दृष्टिको धोखा नहीं दे सकी। उसने कुछ आश्चर्यमें पड़कर ही पूछा, " लेकिन इस समय आप जो कह रही हैं, वह तो मेरा मत नहीं है। "

विजया मुँह फिराये बिना ही रुँधे गलेसे बोली, " निश्चय यही आपका सच्चा मत है। "

नरेन्द्रने कहा, " नहीं। यदि आप मेरी परीक्षा करतीं तो जान जातीं कि यह मेरा सच्चा क्यों, झूठा मत भी नहीं है। इसके सिवाय, नलिनीकी बात लेकर आप क्यों व्यर्थ ही कष्ट पा रही हैं ? मैं जानता हूँ कि उनका मन कहाँ बँधा है, और यह वे भी ठीक समझ लेंगीं कि मैं क्यों पृथ्वीके दूसरे छोरको भाग रहा हूँ।

इसलिए मेरे जानेका प्रश्न लेकर आप निरर्थक उद्विग्न न हों।"

विजयाने बिजलीकी बत्तीसे फिर कर कहा, "क्या आप समझते हैं कि उनका अमत न होनेसे ही आप जहाँ खुशी हो; वहाँ जा सकते हैं?"

नरेन्द्रके हृदयमे ये बातें बिजलीकी रेखाके समान काँप उठीं; लेकिन साथ साथ उसकी दृष्टि भी टेबुलके उस लाल रङ्गके निमन्त्रण-पत्रके ऊपर जा पड़ी। वह एक मुहूर्त स्थिर रह कर धीरेसे बोला, "यह ठीक है कि मैं आपका भी अमत होनेसे कुछ नहीं कर सकता। लेकिन आप तो मेरी सभी बातें जानती हैं, मेरे जीवनकी साध भी आपसे अज्ञात नहीं है। विदेशमें वह साध शायद एक दिन पूरी भी हो सकती है; लेकिन इस देशमें इतने बड़े निष्कर्मा दीन-दरिद्रके रहने न रहनेसे कुछ भी क्षति-वृद्धि नहीं होगी। मेरे जानेमें बाधा मत डालिएगा।"

विजया झुके हुए मुँहसे क्षण-भर निर्वाक् रहकर धीरेसे बोली, "आप दीन-दरिद्र नहीं हैं। आपके सब कुछ है, इच्छा करते ही सब वापिस ले सकते हैं।"

नरेन्द्रने कहा, "इच्छा करते ही तो नहीं ले सकता, लेकिन यह मुझे याद है और हमेशा याद रहेगा कि आपने वह देना चाहा था। लेकिन देखिए, लेनेका भी अधिकार होना चाहिए,—वह अधिकार मुझे नहीं है।"

विजयाने उसी प्रकार अधोमुख रहकर ही प्रत्युत्तर दिया, "अधिकार क्यों नहीं है? सम्पत्ति मेरी नहीं है, पिताजीकी है। नहीं तो उस दिन उसपर दावा करनेकी बात आप परिहासके छलसे भी मुँहपर न ला सकते। यदि मैं होती तो यहींपर न ठहर जाती। वे जो कुछ दे गये हैं, उस सबपर जबर्दस्ती दखल कर लेती, उसमेंसे एक तिल-भर भी न छोड़ती।"

नरेन्द्रने कोई बात नहीं कही। विजया भी और कुछ बोले बिना आँखें झुकाए चुपचाप बैठी रही। लगभग दो मिनट इसी प्रकारकी नीरवतामें कट गये। उसके बाद अकस्मात् एक गहरी लम्बी साँसकी आवाज़से चौंककर विजयाने मुँह उठाते ही देखा, नरेन्द्रका सारा चेहरा न जाने कैसा हो गया है। दोनोंकी चार नजरें होते ही वह हठात् बोल उठा, "नलिनीने ठीक ही समझा था विजया, लेकिन मैंने विश्वास नहीं किया। मेरे समान इतने अकर्मण्य-अपदार्थ आदमीकी भी किसीको कोई आवश्यकता हो सकती है, यह मैंने असम्भव समझा था और हँसकर उड़ा दिया था। लेकिन, सचमुच ही यदि यह असङ्गत खयाल तुम्हारे मनमें आया था, तो तुमने केवल हुक्म ही क्यों न कर दिया? मेरे लिए

तो इसका स्वप्न देखना भी पागलपन था विजया !

आज इतने दिनोंके बाद उसके मुँहसे अपना नाम सुनकर विजया सिरसे पैरतक काँप उठी, वह मुँहपर जोरसे अञ्चल दबाकर उच्छ्वसित रुलाईको रोकने लगी।

नरेन्द्रने पैरोंकी आहट सुनकर पीछेकी ओर मुँह फेरते ही देखा, दयाल कमरेमें आ रहे हैं।

दयालने दरवाजेपर खड़े होकर क्षण-भर चुपचाप दोनोंकी तरफ देखा, उसके बाद वे धीरे धीरे विजयाके पास जाकर उसके सोफ़ेके एक किनारे बैठ गये और माथेपर दाहना हाथ रखकर मधुर कण्ठसे बोले " मा। "

उसने उनका आगमन अनुभव कर लिया था, और वह प्राणपणसे इस लज्जाकर रुलाईको रोकनेका यत्न कर रही थी, लेकिन उनके करुण सुरके मातृ-सम्बोधनका फल बिल्कुल उलटा हुआ। क्या पता, अपने मृत पिताका स्मरण आ जानेके कारण ही शायद उसका धैर्य छूट गया हो। वह पलक मारते ही वृद्धकी दोनों जाँघोंपर औंधी होकर गिर पड़ी और उनकी गोदमें मुँह छिपाकर रो पड़ी।

दयालकी आँखोंसे आँसू झर पड़े। इस संसारमें एकमात्र वे ही इस मर्मान्तिक रोदनका आदिसे अन्त तकका इतिहास जानते थे। विजयाके सिरपर धीरे धीरे हाथ फेरते फेरते ही वे कहने लगे, "केवल मेरी ही गलतीसे यह बड़ा भारी अन्याय हुआ है मा, केवल मैंने ही यह दुर्घटना घटाई। नलिनीके साथ अभी तक मेरी यही बात हो रही थी,—वह सब कुछ जानती थी। लेकिन, कौन जानता था कि नरेन्द्र मन ही मन केवल तुम्हें ही—लेकिन, निर्बोध मैं सब कुछ गलत समझकर और तुम्हें उल्टी खबर देकर इस दुःखको घर बुला लाया। अब शायद इसका और कोई प्रतीकार—"

दीवालकी घड़ीमें तीन बजे गये। तीनों आदमी स्तब्ध हो रहे। उनकी गोदमें विजयाके दुर्जय दुःखका वेग क्रमशः शान्त होता आ रहा है, यह अनुभव करके, दयाल बहुत देर बाद धीरे धीरे उसकी पीठपर हाथकी थपकी देते देते बोले, " इसका क्या और कोई उपाय नहीं हो सकता बेटी ? "

विजया उसी प्रकार मुँह लुकाये रखकर ही भग्न कण्ठसे बोल उठी, " नहीं नहीं, मरणके अतिरिक्त मेरे लिए और कोई मार्ग नहीं है। "

दयाल कह उठे, " छिः, बेटी, लेकिन—"

विजयाने प्रब[illegible] सिर हिलाते हुए कहा, " नहीं नहीं, इसमें अब ' लेकिन ' को कोई स्थान नहीं है। मैंने वचन दिया है। जीते जी उसे मैं नहीं तोड सकती दयाल बाबू ! मेर बिना—"

बोलते बोलते ही फिर उसका गला रुँध गया। दयालके गलेसे भी कोई बात नहीं निकल सकी। वे चुपचाप धीरे धीरे उसके बालोंमें हाथ फेरने लगे।

परेशकी माने बाहरसे लड़केके द्वारा कहलाया, " माजी, तीन बजे गये हैं। "

सवाद सुनकर दयाल अत्यन्त व्यस्त हो उठे, और स्नान-आहारके लिए स्नेहपूर्वक बार बार अनुरोध करके उसका मुँह ऊपर उठानेका यत्न करने लगे।

परेशने फिर कहा, " तुम्हारे कारण कोई खा-पी नहीं सकता माजी। "

तब आँखें पोंछकर विजया उठ बैठी और किसीकी तरफ देखे बिना ही धीमी चालसे कमरेसे बाहर चली गई।

दयालने कहा, "नरेन्द्र, तुम्हारा भी तो स्नान-भोजन अब तक नहीं हुआ है ?"

नरेन्द्र अन्यमनस्क होकर न जाने क्या सोच रहा था, उसने मुँह उठाकर कहा, " नहीं। "

" तो मेरे साथ घर चलो। "

" चलिए," कहकर बात दुहराये बिना ही वह उठ खड़ा हुआ और दयालके साथ कमरेसे बाहर हो गया।

## २६

उसी दिन शामको आसन्न विवाहोत्सवके उपलक्षमें कई आवश्यक बातें कहनेके बाद पिता-पुत्र रासबिहारी और विलासबिहारी चले गये। इसके बाद विजया अपने पढ़नेके कमरेमें प्रवेश करते ही आश्चर्यमें पड़ गई। दयाल ऐसे तन्मय होकर बैठे थे कि किसीके आनेकी ओर उन्होंने ध्यान तक नहीं दिया। विजया नहीं जानती थी कि वे कब आये और कबसे बैठे हैं, लेकिन उनका वह तल्लीन भाव देखकर ध्यान भङ्ग करके कुतूहल निवृत्त करनेकी प्रवृत्ति उस नहीं हुई, वह जैसे आई थी, वैसे ही निःशब्द चली गई। लेकिन प्रायः घण्टे-भरके बाद फिर आकर भी जब देखा कि वे एक ही भावसे बैठे हैं, तब वह धीरे धीरे सामने आकर खड़ी हो गई।

दयालने चकित होकर कहा, " तुम्हारे लिए ही प्रतीक्षा कर रहा हूँ मा। "

विजया मधुर कण्ठसे बोली, " तो फिर बुलाया क्यों नहीं ? "

दयालने कहा, " तुम लोग बातें कर रहे थे, इससे मैंने दिक करना ठीक नहीं समझा। कल दोपहरको हमारे यहाँ तुम्हारा निमन्त्रण है बेटी।—न, यह किसी प्रकार न होगा। कहीं 'न' कहकर विदा न कर दो, इसी भयसे मैं खुद इतना मार्ग पैदल चलकर आया हूँ। लेकिन, यह कहे देता हूँ कि दोपहरकी धूपमें पैदल नहीं जा सकोगी, मैंने पालकी-कहार ठीक कर रक्खे हैं, वे आकर तुम्हें ठीक समयपर ले जायेंगे।"

वृद्धकी सकरुण बातोंसे विजयाकी आँखें छलछला आईं, उसने कहा, "एक चिट्ठी लिखकर भेज देनेसे भी तो मैं 'नहीं' न करती। फिर खुद आप क्यों निरर्थक दौड़ कर आये?"

दयाल उठकर विजयाके निकट गये और उसका एक हाथ दबाकर बोले, " याद रहे। देखो, बूढे लड़केको वचन दे रही हो मा। न आई तो मुझे दुबारा पैदल आना होगा, किसी प्रकार भी नहीं छोड़ूँगा।"

विजया गरदन हिलाकर बोली, " अच्छा।"

लेकिन आग्रहकी इस अधिकतासे वह मन ही मन विस्मित हो गई। एक तो इसके पहले किसी दिन भी उन्होंने निमन्त्रण नहीं दिया, तिसपर शामके भोजनके बदले दोपहरके भोजनकी व्यवस्था और वचन-पालन करनेके लिए बार बार इस प्रकार अनुरोध! यह ठीक सहज और साधारण नहीं है। उसे सन्देह हुआ। यह निश्चित है कि आज दूसरे पहर तक इस अकारण निमन्त्रणका सङ्कल्प उनके मनमें नहीं था, फिर भी इतने समयके भीतर ही पालकी कहारका प्रबन्ध तक करके आनेमें उन्होंने अवहेलना नहीं की है!

मनकी अशान्ति छिपाकर विजयाने थोड़ा-सा हँसकर पूछा, " कारण क्या सुन नहीं सकूँगी?"

दयालने लेशमात्र इधर-उधर न करके उत्तर दिया, " नहीं बेटी, यह तुम्हें भोजनके पहले नहीं बता सकूँगा।"

विजयाने कहा, " वह न बताइए, निमन्त्रितोंके नाम तो बता दीजिए?"

दयालने कहा, " तुम तो सबको पहचानोगी नहीं बेटी। वे मेरे इस मुहल्लेके ही मित्र हैं। जिन्हें तुम पहचानोगी, उनमेंसे एक व्यक्तिका नाम रासबिहारी है और दूसरेका नरेन्द्र।"

दयालके चले जानेपर विजया बहुत देरतक स्थिर होकर बैठी रही और मन ही मन इसका कारण ढूँढ़ने लगी, लेकिन जितना ही सोचने लगी उतना ही किसी

एक अशुभ संशयसे उसके मनका अन्धकार निरन्तर बढ़ता ही चला गया।

लेकिन दूसरे दिन बारह बजे तक जब पालकी नहीं पहुँची और विजया तैयार होकर राह देखती रही, तब एक ओर जिस प्रकार उसके विस्मयकी सीमा नहीं रही, दूसरी ओर उसी प्रकार वह कुछ आराम भी अनुभव करने लगी। यह तय हुआ था कि परेशकी मा साथ जायेगी, इसलिए उसने सम्भवतः इस बारको मिलाकर कोई दस बार कुछ खा पी लेनेके लिए विजयासे कहा-सुना है और पूछा है कि कहीं बूढ़े दयाल सठिया तो नहीं गये, निमन्त्रणकी बात कहीं भूल तो नहीं गये? उधर आदमी भेजकर पता लगानेमें भी विजयाको सङ्कोच हो रहा था, क्योंकि, उसने सोचा कि सचमुच ही यदि किसी अचिन्तनीय कारणसे वे निमन्त्रण देनेकी बात भूल गये हों, तब तो इस प्रकार उन्हें असीम लज्जामें डालना होगा। इस अभूतपूर्व अवस्था-सङ्कटमें उसका द्विधा-ग्रस्त मन क्या करेगा, वह जब कुछ भी निश्चय नहीं कर पा रही थी, तब परेशने हाँफते हाँफते आकर खबर दी कि पालकी आ रही है।

विजयाने जब यात्रा की, तब प्रायः तीसरे पहरका समय था। रासविहारी अपने मजूरोंको लेकर अत्यन्त व्यस्त थे, जल्दी जल्दी पालकीकी बगलमें आकर हँसते हुए बोले, "समझमें नहीं आता कि दयालको यह लोगोंके खिलाने-पिलानेका शौक एकाएक कैसे हो गया। वे विशेष रूपसे कह गये हैं कि शामके बाद मुझे भी आना होगा, लेकिन यह बता देना बेटी, कि यदि पालकी भेजनेमें रात हो गई तो मैं नहीं आ सकूँगा।"

दयालके घरके द्वारपर आमके पत्तोंका बन्दनवार शोभित था, दोनों किनारे जलसे भरे कलश रक्खे थे। विजया विस्मित हो गई। दयाल गाँवके कुछ भले आदमियोंसे बातें कर रहे थे। उसके भीतर पैर रखते ही वे लपक कर आये और उन्होंने 'मा' कहकर उसका हाथ पकड़ लिया।

सीढ़ीपर चढ़ते चढ़ते विजयाने रुष्ट अभिमानके सुरमें कहा, "भूखके मारे मेरे प्राण निकल गये, यही शायद आपके मध्याह्न भोजनका निमन्त्रण है?"

दयाल मधुर कण्ठसे बोले, "आज तुम लोगोंको खाना नहीं है मा। नरेन्द्र तो निर्जीव-सा होकर पड़ा है। कमसे कम आज एक दिनके लिए तो काने भट्टाचार्यका शासन मानना ही होगा।"

दुतल्लेके सामनेके हालमें विवाहका सारा आयोजन प्रस्तुत था। यह सब क्या है, ठीक ठीक न समझकर भी विजया हृदयके भीतर काँप उठी,—उसने मुँह खोलकर पूछने तकका साहस नहीं किया।

दयाल अत्यन्त सहज भावसे समझाकर बोले, "शामके बाद ही लग्न है,—आज तुम्हारा विवाह है विजया। भाग्यवश आज शुभ मुहूर्त भी मिल गया है। न मिलता तो भी आज ही करना पड़ता, किसी प्रकार टाला नहीं जा सकता था। सब ठीक ठाक मिल गया है। इसीलिए तो काने भट्टाचार्यने हँसकर कहा है कि पञ्चाङ्गमें तुम लोगोंके लिए ही आजके दिनकी सृष्टि हुई है!"

विजयाका मुँह फक पड़ गया। उसने कहा, "आप क्या मेरा हिन्दू-विवाह करेंगे?"

दयालने कहा, "हिन्दू-विवाह क्या विवाह नहीं है बेटी? साम्प्रदायिक मत मनुष्यको ऐसा बेवकूफ बना देता है कि मैं कल सारे दिन सोच-सोचकर भी इस तुच्छ बातका कोई कूल-किनारा नहीं पा सका, लेकिन नलिनीने मुझे बातकी बातमें समझा दिया। बोली, 'मामा, उनके पिता जिनके हाथोंमें सौंप गये हैं, तुम उनके हाथमें ही उन्हें दो। नहीं तो ब्राह्म-विवाहका छल करके यदि अपात्रको दान करोगे, तो अधर्मकी सीमा नहीं रहेगी। और मनका मिलन ही तो सच्चा विवाह है। नहीं तो विवाहके मन्तर चाहे भाषामें पढ़े जायँ, चाहे संस्कृतमें, भट्टाचार्य महाशय पढ़ें चाहे आचार्य महाशय पढ़ें, इससे क्या होता जाता है मामा?' इतनी बड़ी जटिल समस्या जैसे बातकी बातमें पानी हो गई विजया। मैं मन ही मन बोला, 'भगवान्, तुमसे तो कुछ छिपा नहीं है। इन लोगोंका विवाह मैं किसी भी मतसे क्यों न कराऊँ, तुम्हारे निकट अपराधी नहीं होऊँगा, यह निश्चय जानता हूँ।' तो भी मैं बोला, 'लेकिन एक बात है नलिनी। विजयाने उन्हें वचन दे दिया है। वे लोग उसीपर निर्भर करके निश्चिन्त बैठे हैं। वह वचन तोड़ा किस प्रकार जायगा?' नलिनी बोली, 'मामा, तुम तो जानते हो, विजयाके अन्तर्यामीने इसका समर्थन नहीं किया है। तब उनकी अपेक्षा क्या विजयाका बोलना ही बड़ा हो जायगा? उसके हृदयके सत्यको लाँघकर मुँहकी बातको ही बड़ा मानना होगा?" मैं आश्चर्यमें पड़कर बोला, 'तू ने यह सब सीखा कहाँ बेटी?" नलिनी बोली, "मैंने नरेन्द्र बाबूसे ही सीखा है। वे बार बार कहा करते हैं कि सत्यका स्थान हृदयमें है, मुँहमें नहीं। केवल मुँहसे निकलनेके कारण ही कोई बात सत्य नहीं बन जाती। तो भी उसे ही जो लोग सबसे आगे,—सबसे ऊपर स्थापित करना चाहते हैं वे सत्यसे प्रेम करनेके कारण नहीं, बल्कि सत्य-भाषणके दम्भसे प्रेम करनेके कारण ही ऐसा कहते हैं।'"

ज़रा-सा चुप रहकर वे बोले, " तुम नरेन्द्रको जानतीं नहीं बेटी, वह तुम्हें कितना प्रेम करता है, यह भी शायद ठीक नहीं जानतीं। वह ऐसा लड़का है कि असत्यका बोझा तुम्हारे सिरपर लादकर तुम्हें ग्रहण करनेको भी किसी प्रकार राजी न होता। तुम एक बार आदिसे अन्ततक उसके कामोंको स्मरण करके तो देखो विजया।"

विजयाने कुछ भी नहीं कहा, वह चुपचाप नीचा मुँह किये काठके समान खड़ी रही।

नलिनी भीतर काम-काजमें व्यस्त थी। खबर पाकर दौड़ आई और उसने विजयाको जकड़कर पकड़ लिया। फिर उसने कानमें कहा, " तुम्हें सजानेका भार आज नरेन्द्र बाबूने मुझे दिया है, चलो।" यह कहकर वह एक प्रकारसे ज़बर्दस्ती ही उसे खींच ले गई।

दो घंटेके बाद नलिनीने उसे फूल और चन्दनसे सज्जित करके, वधूके आसन-पर बिठाल दिया। सामनेकी खिड़की खोल दी गई। तब उसके लज्जित मुँहपर दक्षिणकी वायु और आकाशकी चाँदनी एक ही साथ उसके स्वर्गगत माता-पिताके आशीर्वादके समान आ पड़ी।

जो महिला कन्या-दान करने बैठीं, सुना गया कि वे किसी एक बहुत दूरके सम्बन्धसे विजयाकी बुआ हैं। एकचक्षु भट्टाचार्य महाशयने मन्त्र पढ़ाते पढ़ाते दावा किया कि दो-तीन पुश्त पहले वे लोग ही जमींदार-घरके कुल-पुरोहित थे।

विवाहका अनुष्ठान पूरा हो गया था और वर-वधूको उठानेका आयोजन हो रहा था कि रासबिहारी आकर विवाह-सभामें उपस्थित हो गये। दयालने ससम्मान अभ्यर्थना करके दोनों हाथ जोड़कर कहा, " आओ। शुभकर्म निर्विघ्न सम्पूर्ण हो गया है,—आजके दिन अब कोई ग्लानि मत रक्खो भाई, और इन लोगोंको आशीर्वाद दे दो।"

रासबिहारीने क्षण-भर स्तब्ध रहकर सहज वाणीसे कहा, " वनमालीकी कन्याका विवाह क्या अन्तमें हिन्दू मतसे ही तुमने कर दिया दयाल ? मुझे जरा बता देते तो इसकी आवश्यकता न होती।"

दयालने सिटपिटाकर कहा, " विवाह तो सभी एक हैं, भाई।"

रासबिहारीने कठोर स्वरसे कहा, " नहीं। लेकिन वनमालीकी कन्याने क्या अपने बापके गाँवसे आजीवन निर्वासित होनेके दण्डको भी एक बार विचार कर नहीं देखा ?"

नलिनी पास ही खड़ी थी, उसने कहा, "उनकी कन्याने अपने स्वर्गीय पिताकी सच्ची आज्ञाका ही पालन किया है। अनुष्ठानकी बात सोचनेका समय उसे नहीं मिला। आप खुद भी तो बनमाली बाबूकी यथार्थ इच्छा जानते थे। उसमें तो कोई त्रुटि हुई नहीं।"

रासबिहारी इस दुर्मुख लड़कीकी ओर एक क्रूर दृष्टि गड़ाकर सिर्फ 'हूँ' कहकर रह गये। वे लौटनेको उद्यत हो रहे थे कि नलिनीने दुलारके सुरमें कहा, "वाह! आप शायद विवाहके घरसे खाली खाली चले जाइएगा? यह नहीं होगा, आपको भोजन करके जाना होगा। मैंने मामाके द्वारा कितने कष्टसे आपको निमन्त्रित करके बुलवाया है।"

रासबिहारी मुँहसे कुछ नहीं बोले, उसकी ओर एक बार और भी अग्नि-दृष्टि निक्षेप कर धीरे धीरे बाहर निकल गये।